

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176185

UNIVERSAL
LIBRARY

राजस्थानी साहित्य

की
रूपरेखा

[राजस्थानी भाषा, साहित्य तथा कवियों का विवेचनात्मक परिचय]



लेखक—

पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०



प्रकाशक—

छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग ।

प्रथम संस्करण १०००] अगस्त १९३९

[मू० ३॥]

प्रकाशक—

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग ।

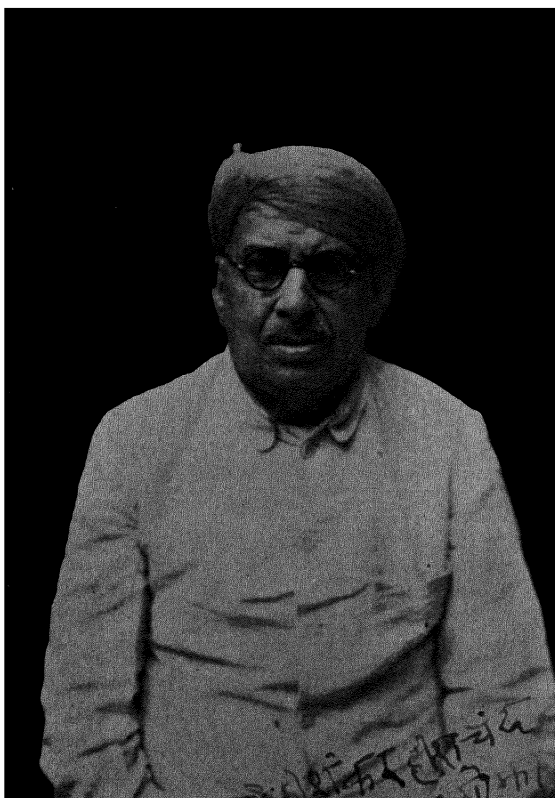


मुद्रक—

श्री रघुनाथ प्रसाद वर्मा

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग ।



डाक्टर गौरीशङ्कर-हीराचंद ओम्का

समर्पण-पत्र

राजस्थानी भाषा, राजस्थानी साहित्य
और राजस्थानी संस्कृति

के

अनन्य उपासक

तथा

इतिहास एवं पुरातत्व

के

प्रकांड विद्वान्

महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति

पंडित गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा, डी० लिट०

के

कर-कमलों

में—

सादर समर्पित

—मोतीलाल मेनारिया

भूमिका

इस पुस्तक का उद्देश्य राजस्थान की काव्य-धारा तथा यहाँ के प्रधान प्रधान साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय, उनकी रचनाओं और जीवनीयों सहित, हिन्दी भाषा भाषियों से कराना है। राजस्थान का प्राचीन साहित्य विशेषतः डिंगल साहित्य बहुत विस्तृत है, जो कविता एवं इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ साथ भाषा-विज्ञान के विचार से भी परम उपयोगी है। पर दुख है कि हिन्दी के विद्वानों ने इसे अभी तक उपेक्षा के भाव से देखा है। अवधी, बुंदेलखंडी आदि भाषाओं को तो हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखक हिन्दी के अंतर्गत मानते हैं पर डिंगल को यह गौरव नहीं देते। इसका मूल कारण क्या है, यह तो ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता। परन्तु इस संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण उनकी बहुत हानि और हँसी हुई है, इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है। यदि हिन्दी के विद्वानों ने विवेक और सद्भावना के साथ राजस्थानी साहित्य का अध्ययन किया होता तो राजस्थान के प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज को साधारण श्रेणी का कवि तथा वृन्द को केवल मात्र सूक्तिकार वे न बतलाते और भूषण को वीररस का सर्वोत्कृष्ट कवि मानने की भयंकर भूल भी उनसे न हुई होती। एक बहुत बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जब हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखकों को वीरगाथा-काल कायम करने की ज़रूरत महसूस हुई तब तो उन्होंने डिंगल के कवियों के नाम हिन्दी के कवियों में गिना कर अपना काम निकाल लिया, अपना सिद्धान्त स्थापित कर लिया। पर बाद में लिख दिया कि 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में हम पिंगल भाषा में लिखे हुए ग्रन्थों का ही विचार कर सकते हैं।' क्यों? इस जगह प्रश्न हो सकता है कि हिन्दी साहित्य के वीर गाथा काल में से यदि डिंगल के कवियों को निकाल लिया जाय तो फिर बचता क्या है? तब तो वीरगाथा-काल का अस्तित्व ही शायद न रहेगा। फिर हिन्दी साहित्य के इतिहास में जब पिंगल (ब्रजभाषा) के ग्रन्थों का ही समावेश हो सकता है तब कोई कारण नहीं दीखता कि पद्मावत, रामचरित मानस आदि ग्रंथ,

जो अवधी भाषा में लिखे हुए हैं, हिन्दी के माने जायें । एक बात और है । इसे कविवर बिहारीलाल के शब्दों में सुनिये :—

सीतलता डरू सुगंध की, महिमा घटी न मूर ।

पीनस वारे जो तज्यौ, सोरा जानि कपूर ॥

परन्तु, जमाने के साथ साथ यह भेद-भाव अब बदल रहा है और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के सुयोगों से यह उपेक्षित साहित्य प्रकाश में आने लगा है और बहुत कुछ आया भी है ।

राजस्थान में चारण-भाटों के सैकड़ों गाँव हैं । इसमें से प्रत्येक गाँव में से एक एक कवि भी यदि चुना जाय और उसका पूरा विवरण दिया जाय तो कई हजार पृष्ठों का एक बहुत बड़ा ग्रंथ तैयार हो सकता है जो एक आदमी के बूते का काम नहीं है । अतएव मैंने राजस्थान के, डिंगल और पिंगल दोनों के, बहुत प्रसिद्ध २ कवियों को चुना है और इस चुनाव में अपनी रुचि से काम लिया है । कुछ का काव्यात्कर्ष की दृष्टि से, कुछ का भाषा-शास्त्र की दृष्टि से और कुछ को इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझ कर इस पुस्तक में स्थान दिया गया है । इस सम्बन्ध में मत-भेद हो सकता है । किसी देश की भौगोलिक परिस्थिति और उसके राजनैतिक इतिहास का वहाँ के साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है । इसलिए ग्रन्थ के प्रारम्भ में मैंने भी राजस्थान का संक्षिप्त राजनैतिक इतिहास और भौगोलिक वर्णन जोड़ दिया है । इससे पाठकों को यहाँ के साहित्य की आन्तरिक भावना और विचार धारा को समझने में सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है । राजस्थान के वर्तमान कवियों और गद्य लेखकों की संख्या भी बहुत बड़ी है । पर मैंने सिर्फ उन्हीं को चुना है जिनके ग्रंथों की सार्थकता सिद्ध हो चुकी है और जिनमें मौलिकता के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं । कवियों और गद्य-लेखकों में बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने साहित्य क्षेत्र के सिवा राजनैतिक आदि इतर क्षेत्रों में भी बड़ा नाम पाया है । पर पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से मैंने उनके साहित्यिक जीवन को ही प्रधानता दी है और उनके दूसरे कार्यों की ओर केवल संकेत मात्र कर के छोड़ दिया है । यथा संभव मैंने इस बात की कांशिश की है कि राजस्थान के सभी प्रसिद्ध

प्रसिद्ध साहित्यकारों का विवरण इसमें आ जाय । फिर भी मेरी अनभिज्ञता तथा पुस्तक को छोटे से छोटे रूप में प्रस्तुत करने की धुन में यदि किसी ख्यातनामा साहित्यकार को छोड़ दिया हो तो उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ ।

इस पुस्तक के लिये सामग्री आदि जुटाने में जिन सज्जनों ने मेरी सहायता की है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ । श्रीयुत पुरोहित हरिनारायण जी, बी० ए० (जयपुर) ने बहुत से दादू पंथी संतों की कविताओं के नमूने भेजने की कृपा की तथा श्रीयुत कविवर घनश्याम जी (किशनगढ़) और श्रीयुत ठाकुर सत्यदेव जी आढ़ा एम० ए०, एल-एल० बी० (जोधपुर) ने क्रमशः वृन्द कवि और दुरसा जी की जीवनियों के लिए सामग्री प्रदान की, इसके लिये इन तीनों सज्जनों का मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ । दुरसा जी के जीवन चरित्र सम्बन्धी यह सामग्री श्रीयुत ठाकुर सत्यदेव जी के स्वर्गीय पिता शङ्करदान जी ने बड़े परिश्रम से इकट्ठी की थी । इस समस्त सामग्री का उपयोग मैं इस पुस्तक में नहीं कर सका हूँ । डिङ्गल काव्य पर एक दूसरा ग्रन्थ लिखने का मेरा इरादा है । उसमें दुरसाजी का पूरा इतिवृत्त दूँगा । साहित्य रत्न पं० उमाशङ्कर जी द्विवेदी (मेवाड़) ने अपना सारा पुस्तकालय मेरे भरोसे पर छोड़ दिया और बहुत सी कविताएँ आदि देकर मेरा साहस बढ़ाया । इस सौजन्य के लिये मैं पंडित जी को धन्यवाद देना चाहता हूँ । पर क्योंकि वे मुझे अपना समझते हैं और धन्यवाद की आशा भी मुझसे नहीं रखते इसलिये ज़बरदस्ती 'धन्यवाद' का बोझ उनपर लाद कर उनको रुष्ट करना मैं नहीं चाहता । जिन लेखकों के ग्रन्थों से इस पुस्तक के प्रणयन में सहायता ली गई है, उनका आभार भी मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ ।

राजस्थानी साहित्य के इतिहास को इस प्रकार क्रमबद्ध रूप में लिखने का यह पहला प्रयत्न है और इसलिये इसमें यदि त्रुटियाँ बहुत रह गई हों तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है । पर पुस्तक ऐसे स्थान पर बैठ कर लिखी गई है जहाँ साहित्य बाज़ार की वस्तु और साहित्यकार निठल्ले समझे जाते हैं और जहाँ का वातावरण इस तरह के कार्यों के लिये बिल्कुल अनुपयुक्त है, यह सोचकर पाठक मुझे क्षमा करेंगे इसका मुझे पूरा विश्वास है । यदि इस

पुस्तक से हिन्दी भाषा भाषियों की थोड़ी सी भी रुचि राजस्थानी साहित्य की ओर हुई तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा ।

अन्त में अपने मित्र पं० गणपति लाल जी तथा भानजी सौभाग्यवती नाथी देवी मेनारिया को धन्यवाद देना भी मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने प्रेस-कापी तैयार करने में मेरी बड़ी सहायता की है । श्रीयुत गणेश पांडेय जी का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने बड़े प्रेम के साथ पुस्तक के मुद्रण और प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया है ।

उदयपुर (मेवाड़)

ता० १-७-३९

—मोतीलाल मेनारिया

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

पृ० १—२६

राजस्थान-गौरव १—२, भौगोलिक वर्णन २—५, इतिहास ५—१५, राजस्थानी भाषा १५—२२, ढिंगल कविता २२—२६

दूसरा अध्याय (प्राचीन काल)

पृ० २७—४४

दलपत विजय, साईदान, अकरम फैज़, नरपति नाल्ह २६—३१, चन्द-बरदाई ३१—३६, जल्हण ३६—४१, नल्लसिंह भाट ४१—४२, सिवदास ४२—४३, सूजी मगराजोत ४३—४४

तीसरा अध्याय (मध्यकाल)

पृ० ४५—६७

मीराबाई ४५—५०, अग्रदास ५०—५२, नाभादास ५२—५३, दुरसाजी ५३—५७, वीर कवि पृथ्वीराज ५७—६४, दयालदास ६५—६७

चौथा अध्याय (सन्त कवि)

पृ० ६८—६०

सन्त काव्य की विशेषताएँ ६८—६९, दादू पंथ ६६, दादू दयाल ७०—७१, रवजय जी ७२—७३, सुन्दरदास ७३—७८, गरीबदास ७८, जनगोपाल ७८—७९, राघवदास ७९, बानीदजी ७९—८०, मंगलराम ८०, रामरुनेही पंथ ८०—८२, रामचरणजी ८२—८३, हरिरामदास ८३, रामदास ८३—८४, दयालदास ८४—८५, दरियावजी ८५—८६, चरणदासी पंथ ८६—८७, चरणदास ८७, दयाबाई ८८, सहजोबाई ८८—८९, निरंजनी पंथ ८९, हरिदास ८९—९०

पाँचवाँ अध्याय (उत्तर काल)

पृ० ९१—१४१

उत्तरकाल की विशेषताएँ ९१—९२, महाराजा जसवंतसिंह ९२—९४, बिहारीलाल ९४—९७, नरहरिदास ९७—९९, कविवर वृन्द ९९—१०६, कुलपति मिश्र १०६—१०७, मानकवि १०७—१०८, जोधराज १०८—११०, भक्तवर नागरीदास १११—११६, सोमनाथ ११६—११७, दलपतिराय और बंसीधर ११७—११८, करणीदान ११८—१२०, स्वामी श्रीहित वृन्दावनदास

१२०—१२१, सूदन १२२—१२४, सुन्दर कुँवरिबाई १२४—१२५, महाराजा प्रतापसिंह १२६—१२८, मंछाराम १२८, महाराजा मानसिंह १२८—१३०, कविराज बांकीदास १३०—१३३, किशनजी आढ़ा १३३—१३५, महाराजराजा विष्णुसिंह १३५—१३६, गोस्वामी कृष्णलाल १३६, महाराणा जवानसिंह १३६—१३७, राजिया १३७—१३६, दीनदरवेश १३६—१४१

छठवाँ अध्याय (आधुनिककाल : पद्य)

पृ० १४२—१७८

आधुनिक काल की विशेषताएँ १४२—१४३, कविराजा सूर्यमल १४३—१५४, बाबा स्वरूपदास १५४—१५६, जीवनलाल १५६, प्रताप कुँवरिबाई १५६—१५८, गणेशपुरी १५८—१६०, कविराज बख्तावरजी १६१—१६२, राव गुलाबजी १६२—१६४, ऊमरदान १६४—१६६, बिड़दसिंह १६६—१६७, कविराज मुरारिदास १६७, चन्द्रकलाबाई १६७—१६८, कविराजा मुरारिदान १६८—१७०, महाराज चतुरसिंह १७०—१७४, केसरीसिंहजी बारहठ १७४—१७६, पं० उमाशंकर द्विवेदी १७६—१७७, कुमारी दिनेशनंदिनी चोरडिया १७७—१७८

सातवाँ अध्याय (आधुनिक काल: गद्य)

पृष्ठ १७९—२१५

गद्य का विकास १७८—१८३, कविराजा श्यामलदास १८३—१८६, पं० लज्जाराम मेहता १८६—१८६, मुंशी देवीप्रसाद १८६—१८७, बाबू रामनारायण दूगड़ १८७, पं० रामकर्ण आसोपा १८७—१८८, पं० गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा १८८—१८८, पुरोहित हरिनारायण १८८—२०१, दीवान बहादुर हरबिलास सारडा २०२—२०४, पं० विश्वेश्वरनाथ रेड २०४—२०७, पं० सूर्यकरण पारीक, २०७—२०९, ठाकुर रामसिंह २०६—२१०, नरोत्तम-दास स्वामी २१०—२११, जनार्दन राय नागर २११—२१३, अन्य लेखक २१३—२१५

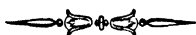
परिशिष्ट

पृ० २२०—२५८

राजस्थानी साहित्य

की रूप-रेखा

पहला अध्याय



There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae, and scarcely a city that has not produced its Leonidas.

—Col. James Tod

इस पुण्यभूमि भारतवर्ष के गौरवशाली इतिहास में राजस्थान का स्थान बहुत ऊँचा है। हिन्दू धर्म, हिन्दू गौरव तथा हिन्दू स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिये जो जो उद्योग यहाँ के वीर एवं वीराङ्गनाओं ने समय समय पर किये वे इतिहास में अमिट अक्षरों में अङ्कित हैं और उनकी कीर्ति-कथा ने राजस्थान तथा भारत के ही इतिहास को नहीं, वरन् समस्त मानव-जाति के इतिहास को प्रकाशमान कर दिया है। राजस्थान का इतिहास भारत की वीरता का इतिहास है, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु साथ ही वह हमें अपने विगत गौरव और भावी कर्तव्य की याद दिलानेवाला स्मृति-चिन्ह भी है। अजमेर के ध्वंसावशेष, चित्तौड़ के जीर्ण-शीर्ण राजमहल और हल्दीघाटी के रणक्षेत्र पर खड़े होकर जब हम हिन्दूपति महाराज पृथ्वीराज, वीरललना महाराणी पद्मिनी और प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के वीरोचित कार्यों

का स्मरण करते हैं तब हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं और मुँह से सहसा निकल पड़ता है—हाय, हम क्या थे और क्या हो गये। समय के साथ साथ हमारी मनोवृत्तियाँ बदल गई हैं और पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा के संस्पर्श ने हमारे दृष्टिकोण को इतना विकृत कर दिया है कि इन वीर पुरुषात्माओं के धर्म-युद्धों को भी नीति-नैपुण्य एवं दूरदर्शिता से शून्य घोषित करते हुए हमें दुःख नहीं होता। परन्तु जो स्वदेशाभिमानि हैं, जातीय संगठन के महत्व को समझते हैं और जिनके हृदय में वीरता एवं पुरुषों के लिये स्थान है वे तो हमारे राष्ट्रीय कवि के सुर में सुर मिलाकर राजस्थान की महत्ता में आज भी यही गाते हैं:—

मोहे विदेशी वीर भी जिस वीरता के गान से ।
जिस पर बने हैं ग्रंथ रासो और राजस्थान से ॥
थी उष्णता वह उस हमारे शेष शोणित की अहा !
जो था महाभारत समर में नष्ट होते बच रहा ॥

(१)

भौगोलिक वर्णन :

स्थिति, सीमा और विस्तार—राजस्थान २३°३' से ३०° १२' उत्तर अक्षांश और ६६° ३०' से ७८° १७' पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है। इसके उत्तर में पञ्जाब, पूर्व में संयुक्त प्रान्त और मध्यभारत, दक्षिण में गुजरात, कच्छ के रण का उत्तरी पूर्वी भाग तथा मालवा और पश्चिम में सिंध प्रान्त है। इसकी सबसे अधिक लंबाई पूर्व से पश्चिम तक ५२० मील, चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक ४८० मील और क्षेत्रफल १३०४६२ वर्गमील के लगभग है।

प्राकृतिक विभाग—अरबली पर्वत श्रेणी ने इस प्रान्त को दो भागों में विभक्त कर दिया है—उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी।

उत्तर-पश्चिमी विभाग में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर और जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश का अंश है। इसमें समस्त प्रान्त का ३ भाग आ गया है। यह विभाग रेतीला एवं अनुपजाऊ है, और यहाँ वर्षा भी बहुत

कम होती है। जोधपुर में वर्षा का औसत १३ इञ्च, बीकानेर में १२ इञ्च तथा जैसलमेर में ७ इञ्च के लगभग है। इस तरफ़ दो रेगिस्तान हैं, और भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यहाँ अकाल भी अधिक पड़ते हैं। शीत-काल में इधर बहुत अधिक सर्दी तथा उष्ण काल में बहुत अधिक गर्मी पड़ती है और लू तथा आंधियाँ भी बहुत चलती हैं। यहाँ विशेषकर एक ही फ़सल ख़रीफ़ (सियालू) की होती है, रबी (उनालू) की बहुत कम। जलवायु शुष्क, किन्तु स्वास्थ्यप्रद है और घोड़े, ऊँट, बैल आदि जानवर बहुत अच्छे होते हैं।

दक्षिण-पूर्वी विभाग में जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, किशनगढ़, टोंक, कोटा, बूँदी, भालावाड़, मेवाड़, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, सिरोही एवं शाहपुरा के राज्य और अजमेर मेरवाड़े का इलाक़ा है। इस विभाग में वर्षा अपेक्षाकृत अच्छी होती है और ज़मीन भी अधिक उपजाऊ है। मेवाड़ में वर्षा का औसत २४ इञ्च, भालावाड़ में ३७ इञ्च और बाँसवाड़ा में ३८ इञ्च के लगभग है। अधिक ऊँचाई के कारण आवू पर वर्ष में ५७-५८ इञ्च के करीब वर्षा होती है। जल की बहुतायत से इस तरफ़ कई घने जंगल हैं, जिनमें इमारती काम की कीमती लकड़ी के अतिरिक्त तरह तरह के फल-फूल भी होते हैं। इस विभाग में फसल भी साधारण रूप से दो होती हैं। परन्तु आवहवा के तर होने से लोगों को मलेरिया तथा कब्ज़ित की शिकायत बहुधा रहती है।

पर्वत—राजस्थान का मुख्य पहाड़ अर्बली है, जो यहाँ आड़ावाला के नाम से प्रसिद्ध है। इसी की शाखायें समस्त प्रान्त में फैली हुई हैं। यह पर्वत इस प्रान्त के ईशानकोण से प्रारंभ होकर नैऋत्य कोण तक चला गया है, और वहाँ से दक्षिण की ओर आगे बढ़ता हुआ सतपुड़ा से जा मिला है। उत्तर में इसकी श्रेणियाँ बहुत चौड़ी नहीं हैं। पर अजमेर से दक्षिण में जाकर वे बहुत चौड़ी होगई हैं। सिरोही, उदयपुर राज्य के दक्षिणी और पश्चिमी भाग तथा डूंगरपुर, बाँसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्य का पश्चिमी भाग इन श्रेणियों से बहुत कुछ ढँका हुआ है। एक दूसरी श्रेणी उदयपुर राज्य के मांडलगढ़ ज़िले से प्रारंभ होकर बूँदी, कोटा व जयपुर राज्य के दक्षिण तथा

भालावाड़ राज्य में होकर पूर्व और दक्षिण मध्य भारत में फैलती हुई सतपुड़ा से जा मिली है। अलवर राज्य के पश्चिमी भाग तथा उससे मिले हुए जयपुर राज्य में कुछ दूर तक एक श्रेणी और चली गई है। जोधपुर राज्य के दक्षिणी भाग में एक अलग श्रेणी आगई है जिसे सूँदा पहाड़ कहते हैं। अर्बली पहाड़ का सबसे ऊँचा हिस्सा सिरोही राज्यान्तर्गत आबू का पर्वत है। इसकी सबसे ऊँची चोटी की ऊँचाई समुद्र की सतह से ५६५० फुट है।

नदियाँ—इस प्रान्त की सबसे बड़ी नदी चंबल है। यह मध्यप्रान्त में मऊ की छावनी से ६ मील दक्षिण पश्चिम से निकलती है, और धौलपुर, करौली, टोंक, कोटा, मेवाड़ और भालावाड़ के निकट बहती हुई संयुक्त प्रान्त में इटावा के पास जमुना में मिल जाती है। इसकी पूरी लंबाई ६५० मील है। लूणी अजमेर के पास पुष्कर से निकलती है और जोधपुर राज्य में बहती हुई कच्छ के रण में मिल जाती है। मही मध्यभारत से निकल कर डूंगरपुर और बाँसवाड़ा राज्यों की सीमा बनाती हुई खंभात की खाड़ी में जा गिरती है। इसकी लंबाई ३५० मील के लगभग है। इनके सिवा बाणगंगा, सरस्वती, वेड़च, सोम आदि और भी बहुत सी नदियाँ हैं, पर वे बहुत छोटी हैं।

भौलें—यहाँ की सबसे बड़ी प्राकृतिक भौल सांभर की है। जब यह पूरी भर जाती है तब इसकी लंबाई २० मील और चौड़ाई २ से ७ मील तक हो जाती है। यह जोधपुर तथा जयपुर राज्यों की सीमा पर है। वर्ष भर में यहाँ पचास लाख मन के लगभग नमक तैयार होता है। इस समय यह अंग्रेजी सरकार के अधिकार में है; और जोधपुर तथा जयपुर राज्यों को इसके बदले में नियत सालाना रकम मिलती है। कृत्रिम भौलें यहाँ कई हैं, जिनमें मेवाड़ की जयसमुद्र नामक भौल संसार भर की कृत्रिम भौलों में सबसे बड़ी है।

भौगोलिक स्थिति का प्रभाव—राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति का प्रभाव उसके इतिहास, उसकी संस्कृति और उसके निवासियों के रहन-सहन पर बहुत पड़ा है। यहाँ के मरुस्थल की गर्म रेत तथा अर्बली की दुर्गम घाटियों

ने यहाँ के रहनेवालों को साहसी तथा कष्टसहिष्णु ही नहीं बनाया, बल्कि इन्होंने बाहरी शत्रुओं के आक्रमणों से देश की रक्षा भी की है। मरुदेश में बाहर से आक्रमण करनेवालों के लिये विजय प्राप्त करना कठिन होता था, इसलिये उत्तर की ओर से आने वाले शत्रुओं ने पंजाब से ठीक दक्षिण की ओर बढ़ना पसंद न किया, और राजस्थान पर आक्रमण करने का विचार छोड़कर वे पूर्व में बंगाल तक के प्रदेशों में ही लूट-पाट मचाते रहे। अलाउद्दीन खिलजी पहला मुसलमान बादशाह था जिसने जमकर राजपूतों से युद्ध किया और दो-एक स्थानों पर उसकी विजय भी हुई। परन्तु उसका आधिपत्य भी अधिक काल तक न रह सका। अतः बाबर के समय तक यह देश एक तरह से स्वतन्त्र रहा। तदनन्तर अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब आदि मुगल शासकों ने दृढ़तापूर्वक इस ओर पाँव बढ़ाया पर समस्त प्रान्त पर स्थायी आधिपत्य स्थापित करने में सफल भूत ये भी न हुए।

(२)

इतिहास—राजस्थान का प्राचीन इतिहास अंधकार में है। इस सम्बन्ध की जो थोड़ी बहुत सामग्री उपलब्ध हुई है उसके आधार पर भी अधिक कुछ नहीं, केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अमुक समय में यहाँ अमुक जाति अथवा राजा का राज्य था। जयपुर राज्य के वैराट नामक नगर से अशोक के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जिनसे मालूम होता है कि राजस्थान का थोड़ा बहुत भाग मौर्यवंशियों के अधीन था। कोटा राज्य के निकटस्थ कण्ठवा गाँव के शिव मंदिर के लेख से भी उपरोक्त अनुमान की पुष्टि होती है। मौर्य साम्राज्य का पतन होने पर वैक्ट्रियन ग्रीक्स उत्तर तथा उत्तर पश्चिम से भारत में आये। उन्होंने चित्तोड़ के किले से ७ मील दूर नगरी नामक स्थान, (मध्यमिका) और उसके आस-पास काली सिंध नदी तक अपना साम्राज्य स्थापित किया था। इनमें दो राजा बहुत प्रसिद्ध हुए—मिनेंडर और एपोलोडोटस। मिनेंडर के समय के तो दो चाँदी के सिक्के

भी उदयपुर में मिले हैं ।* कहा जाता है कि काश्मीर के कुशन वंशी राजा कनिष्क के विशाल राज्य में राजस्थान, गुजरात तथा सिंध भी शामिल थे । दूसरी और चौथी शताब्दी के बीच भारत में क्षत्रपों की शक्ति का डंका बजा । इनमें से रुद्रदामा नामक राजा के समय का एक शिलालेख गिरनार में मिला है । इससे प्रगट होता है कि उसने आकरावन्ती, अनूप, मरु (मारवाड़), आनर्त, सौराष्ट्र, सिंध-सौवीर आदि देश जीते थे । क्षत्रपों के पश्चात् गुप्तवंशियों का प्रताप फैला । इनके राज्य में मालवे के साथ साथ राजस्थान का भी थोड़ा बहुत भाग था । सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सम्राट् हर्षवर्धन हुए । इन्होंने काश्मीर से आसास, और नेपाल से नर्मदा तक अपना राज्य स्थापित किया, जिसमें राजस्थान का अंश भी था ।† जोधपुर राज्यान्तर्गत डोडवाने के पास कन्नौज के राजा भोजदेव का वि० सं० ६०० (सन् ८४३) का लेख प्राप्त होने से तथा अलवर में कन्नौज के सामन्तों का प्रभुत्व होने से निश्चित है कि दशवीं शताब्दी के अंत तक राजस्थान का एक बहुत बड़ा भाग कन्नौज के अधीन था ।

राजस्थान के वर्तमान राजवंशों के पूर्व पुरुष राजस्थान में कब आये, इस सम्बन्ध में भी निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । कुछ इतिहास-वेत्ताओं का कथन है कि सबसे पहले गहलोतों ने सौराष्ट्र प्रान्त के वल्लभी-पुर से आकर मेवाड़ राज्य की नींव डाला ।‡ इनके बाद पड़िहारों ने मंडोवर पर अपना सिक्का जमाया । चौहानों और भाटियों ने इनका अनुकरण किया और आकर क्रमशः साभर तथा जैसलमेर में बस गये । सबके अन्त में सोलंकी और परमार आये । इन राजवंशों में से अब सिर्फ गहलोत, भाटी और चौहान ऐसे रह गये हैं, जिनके हाथ में राजसत्ता है । इनमें

* The Imperial Gazetteer of India; Vol. XXI, P. 94

† डा० ईश्वरी प्रसाद; भारतवर्ष का इतिहास, पृ० १०२

‡ Col. James Tod; Annals and Antiquities of Rajasthan.

महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचन्द्र जी ओझा का कहना है कि गहलोत सौराष्ट्र की ओर से नहीं, बल्कि अवध की ओर से आये थे, देखिये—राजपूताने का इतिहास, पृ० ३८६

से गहलोत और भाटी तो अपने मूल स्थानों पर अथवा उनके आसपास ही स्थित हैं, पर सांभर अब चौहानों के अधिकार में नहीं रहा। इनके हाथ में अब कोटा, बूंदी और सिरौही के राज्य हैं। यदुवंशी लोगों का निवास करौली के निकट कई वर्षों से था, पर वास करौली पर इनका आधिपत्य ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य से हुआ है। जयपुर के कछवाहों ने बारहवीं शताब्दी में ग्वालियर से, और मारवाड़ के राठोड़ों ने तेरहवीं शताब्दी में कन्नौज से आकर अपने अपने राज्य स्थापित किये हैं। भालावाड़ की रियासत का नामकरण तो हाल ही वि० सं० १८६५ (सन् १९३८) में हुआ है।

उपरोक्त राजवंशों में से बहुतों के पूर्वपुरुष यहाँ आकर पूरी तरह से जम भी न पाये थे कि मुसलमानों के आक्रमण भारतवर्ष पर होने शुरू हो गये थे। अरबों का सबसे पहला जोरदार हमला वि० सं० ७६६ (सन् ७१२) में सिंध पर हुआ। उस समय राजा दाहिर वहाँ राज्य करता था। अरब सेना ने दाहिर को युद्ध में मार डाला और उसके राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। पर अरबों के इस आक्रमण का राजस्थान पर भी कुछ असर पड़ा हो ऐसा इतिहास से प्रतीत नहीं होता। तदनन्तर मुसलमानों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया, जिनमें सबुक्तगीन का धावा सब से पहला था। वि० सं० १०३४ (सन् ९७७) में इसने पंजाब पर चढ़ाई की। वहाँ के राजा जयपाल ने पहले तो इससे युद्ध किया, पर बाद में सधि कर ली। इस सन्धि के कुछ ही वर्ष बाद उसका देहान्त होगया, और उसका पुत्र महमूद उसके राज्य तथा सम्पत्ति का मालिक हुआ। वि० सं० १०६६ (सन् १००६) में जिस समय महमूद और जयपाल के पुत्र अनंदपाल के बीच में युद्ध छिड़ा उस समय उत्तरी भारत के अन्य हिन्दू राजाओं की तरह अजमेर के चौहान भी अनंदपाल की ओर से लड़े थे। शनैः शनैः चौहानों का अभ्युत्थान होना शुरू हुआ। वि० सं० १२४८ (सन् ११६१) में जब महमूद गोरी ने भारत पर पहली बार चढ़ाई की तब दिल्ली और अजमेर पर महाराज पृथ्वीराज की विजय पताका फहराती थी, और लाहौर, कन्नौज आदि दूसरे राजपूत राज्यों के

साथ भी इनका अच्छा हेल मेल था। अतः बड़ी सुगमता से इन्होंने गोरी की सेना को छिन्न भिन्न कर दिया। परन्तु उसके चले जाने के बाद दिल्ली और कन्नौज के राजपूतों में अनबन हो गई, जिसने आगे चलकर बड़ा भयंकर रूप धारण कर लिया और इसी से उनका अधःपतन भी हुआ। अपनी विगत पराजय का प्रतीकार करने की भावना से प्रेरित होकर जब गोरी दूसरी बार वि० सं० १२४६ (सन् ११६२) में फिर भारत पर चढ़ आया और महाराज पृथ्वीराज उसका सामना करने के लिये रणक्षेत्र में उतरे तब किसी ने भी उसका साथ न दिया। परिणाम वही हुआ जिसकी आशा थी। अपने सहधर्मियों की सहायता न मिलने से पृथ्वीराज की सेना तीन तेरह हो गई और वे भी मारे गये। इस विजय से हाँसी, सरस्वती, दिल्ली, अजमेर, कोल आदि देश मुसलमानों के अधीन हो गये।* गोरी ने पृथ्वीराज के पुत्र गोविंदराज को अपनी अधीनता स्वीकार करा के अजमेर की गद्दी पर बिठाया। पर बाद में पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने यह राज उनसे छीन लिया, जिससे वे रणथंभोर चले गये और वहाँ नया राज स्थापित किया कुतुबुद्दीन को हिन्दुस्तान का गवर्नर नियत कर गोरी गज़नी चला गया। परन्तु हिन्दुस्तान पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने के लिये राठोड़ (गहरवार) राज्य कन्नौज को जीतना आवश्यक था। इसलिये दो वर्ष बाद वह वापस आया, और जयचंद को हराकर कन्नौज को भी अपने अधिकार में कर लिया। चौहानों और राठोड़ों का पराभव होते ही दूसरे राजपूत राजाओं ने भी अपने अपने हथियार फेंक दिये। राठोड़ राजपूत मारवाड़ की तरफ चले आये और यहाँ आकर इन्होंने नये राज्य की स्थापना की जिसकी बागडोर अभी तक उनके वंशवालों के हाथ में है।

वि० सं० १३५७ (सन् १३००) में रणथंभोर को अधिकृत कर अलाउद्दीन ने वि० सं० १३६० (सन् १३०३) में चित्तौड़ पर चढ़ाई की। वहाँ के अधिपति रावल रत्नसिंह और उनके साथी राजपूत बड़ी

वीरता से लड़े, परन्तु मुलतान की असंख्य सेना के सामने न टिक सके और अन्त में हार गये। इस समय अगणित राजपूत महिलाओं ने अपनी महाराणी पद्मिनी के साथ धधकती हुई चिता में प्रविष्ट होकर अपने पति-व्रत धर्म की रक्षा की। अलाउद्दीन का यह आक्रमण इतिहास में चित्तोड़ के प्रथम शाके के नाम से प्रसिद्ध है। अपने बेटे खिजर खां को चित्तोड़ का हाकिम नियुक्त कर मुलतान जैसलमेर की तरफ बढ़ा, पर मरुस्थल के कारण उसे इस तरफ सफलता न मिली। चित्तोड़ भी मुसलमानों के अधिकार में अधिक दिनों तक न रहा। जालोर के मालदेव को, जो खिजर खां की अयोग्यता के कारण वहाँ का गवर्नर नियुक्त किया गया था, महाराणा हम्मीर ने ठोक पीट कर वहाँ से निकाल बाहर किया, और दुर्ग पर अपनी विजय-पताका फहरा दी। महाराणा कुम्भा के राजत्व काल में मुसलमानों का आतंक बहुत कम पड़ गया। इन्होंने मुसलमानों के बहुत से थाने राजस्थान से उठा दिये और नागौर, रणथंभोर, आमेर आदि स्थानों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस तरह मुगलों के आगमन के समय तक दिल्ली के मुसलमान बादशाह कभी राजस्थान पर चढ़ाई करके राजपूत राजाओं के अधीनस्थ स्थानों को जीत लेते और कभी करद ठहरा कर जीते हुए राज्यों को वापस उन्हें लौटा देते थे। परन्तु जब भी अनुकूल अवसर देखते राजपूत स्वतन्त्र होकर मुसलमानों का आधिपत्य उठा देते थे।

सोलहवीं शताब्दी में जिस समय महाराणा सांगा मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर सुशोभित थे, राजपूतों ने खूब जोर पकड़ा। राणा जी अपनी वीरता और रण-कौशल के लिये प्रख्यात थे। इन्होंने राजस्थान में पूर्णरूप से अपनी धाक जमा ली और राजपूतों की दिखरी हुई शक्ति को केन्द्रस्थ करने का उद्योग करने लगे। वि० सं० १५८३ (सन् १५२७) में फतहपुरसीकरी के पास खानवा नामक स्थान पर बाबर का मुक़ाबला करने के लिये जो सैन्य-प्रवाह सांगा की ओर से लड़ने के लिये आगे बढ़ा वह उनकी उस समय की शक्ति का द्योतक था। महाराणा की सेना में ५०० हाथी, ८०००० घोड़े

तथा असंख्य पैदल थे और राजस्थान का कोई भी भाग ऐसा न था जहाँ से इन्हें कुछ न कुछ सहायता न मिली हो*। परन्तु कुछ तो भाग्य ने साथ न दिया और कुछ युद्ध-कला संबंधी ऐसी भूलें इनसे हुईं कि जिससे सारी सेना तहस-नहस होगई और इनके कई वर्गों का श्रम धूल में मिल गया। राणा सांगा पराजित हुए, असंख्य योद्धाओं का संहार हुआ तथा राणा जो के हृदय से हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा सदैव के लिये जाती रही; और सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि मुगल राज्य की नींव भारत में दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गई। वि० स० १५६१ (सन् १५३४) में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चित्तोड़ तथा उन भागों को, जो सांगा जी ने मालवा से जीते थे वापस सीसोदियों से ले लिये। इस समय से सीसोदियों की प्रसिद्धि, उनकी शक्ति और उनका गौरव स्थानान्तरित होकर कुछ काल के लिये राठोड़ों के पास चला गया जिनके अग्रणी उस समय जोधपुर के अधिपति मालदेव थे। इन्होंने अपना राज्य आगरा और दिल्ली की सीमा तक पहुँचा दिया था। बाबर की मृत्यु के उपरान्त जिस समय हुमायूँ और शेरशाह के बीच संघर्ष हो रहा था, मालदेव अपना सैन्य और राज्य बढ़ाने में संलग्न थे और इस अर्थ में वे इतने शक्तिष्ठ होगये थे कि हुमायूँ को हराकर जब शेरशाह ने इन पर चढ़ाई की तब इन्होंने ऐसी भीषणता से उसका सामना किया कि यदि वह छल-कपट का आश्रय न लेता तो उसकी पराजय निश्चित थी। शेरशाह की विजय हुई अवश्य, पर अंत में उसे यह कहना पड़ा कि 'मैंने एक मुट्ठी बाजरे के लिये हिन्दुस्तान की सल्तनत खो दी होती'†।

हुमायूँ के बाद अकबर उसकी गद्दी पर बैठा। अकबर एक दूरदर्शी, व्यवहार-कुशल तथा नीति निपुण शासक था और राजपूतों की मनोवृत्ति को वह समझ गया था। उसने तलवार और नीति दोनों से काम लिया। उसने जयपुर के कछवाहे राजा भारमल की बेटी से विवाह कर लिया और

* V. A. Smith; Oxford History of India, P. 323, Col.

James Tod; Annals and Antiquities of Rajasthan.

डा० ईश्वरीप्रसाद ; भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २१७

† ओम्हा ; राजपूताने का इतिहास, पृ० २७४

उसके बेटे भगवानदास तथा पोते मानसिंह को ऊँचे ओहदों पर नियुक्त कर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। उन्होंने भी अपूर्वराजभक्ति प्रदर्शित करते हुए आमरण सम्राट की सेवा की। जयपुर की देखा-देखी अन्य राजपूत राजाओं ने भी अकबर की वश्यता स्वीकार कर ली। इनमें बीकानेर के रायसिंह, मारवाड़ के उदयसिंह और बूंदी के राव सुरजन मुख्य थे। अभी तक मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह उसके अधीन नहीं हुए थे। अतः उसने चित्तोड़ पर धावा करने का दृढ़ विचार किया। बहाना भी शीघ्र ही मिल गया। उदयसिंह ने मालवा के स्वामी बाज़बहादुर को, जो अकबर के डर से भाग गया था, शरण दी थी। इसी बहाने से वह वि० सं० १६२४ (सन् १५६७) में मेवाड़ पर चढ़ दौड़ा और आकर चित्तोड़ के चारों ओर घेरा डाल दिया। भयंकर युद्ध के बाद चित्तोड़ का पतन हुआ और राजपूत महिलाओं को जौहर कर अपने सतीत्व तथा मान-मर्यादा की रक्षा करनी पड़ी। इस बार सैकड़ों दुध-मुँहे बच्चे भी अपनी माताओं के साथ अग्नि में स्वाहा हुए थे। चित्तोड़ का क़िला अकबर के हाथ आगया। पर इसीसे उसे सन्तोष न हुआ। वह कई दिनों से ग़ार खाये बैठा था। क़िले पर जाकर उसने क़त्लेआम का हुक्म दे दिया और निर्दोष नगरवासियों के खून से नगर को रंगकर अपने आत्म-सम्मान की तुष्टि की। इतिहास इस बात का साक्षी है।* इतना कर चुकने पर अकबर ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की और उसे भी जीत लिया।

इधर चित्तोड़ जैसे क़िले को खोकर भी सीसोदिये हतोत्साह न हुए। अकबर की अधीनता उन्होंने फिर भी स्वीकार न की। महाराणा उदयसिंह के सुपुत्र प्रताप और पौत्र अमरसिंह बराबर अकबर से लड़ते रहे। अतः में महाराणा अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह ने कुछ सरदारों की राय से अपने पिता की विद्यमानता ही में जहाँगीर के साथ सन्धि करली। इस संधि की कई शर्तें थीं, जिनमें प्रधान शर्त यह थी कि महाराणा कभी भी शाही दरबार में हाज़िर न होंगे।

*Col. James Tod; Annals and Aniquities of Rajasthan.
ओम्भा ; राजपूताने का इतिहास, पृ० ७२६

शाहजहाँ के समय तक मुगलों और राजपूतों में काफी अच्छा हेल-मेल रहा। परन्तु औरंगज़ेब के मुगल सिंहासन पर बैठते ही उनका सख्य टूट गया। औरंगज़ेब ने ज़िज़िया पुनः प्रचलित कर दिया, और हिन्दुओं के सैकड़ों मन्दिर, मठ तथा देवालय तुड़वा डाले, और बहुतों को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया। उसकी इन कार्रवाइयों से राजपूतों के हृदय को भारी चोट लगी और सबके सब उसके विरुद्ध हो गये। मारवाड़ तथा मेवाड़ वालों ने एकता कर ली और जिस समय औरंगज़ेब ने अपने शाहजादे अकबर को इनसे लड़ने के लिये राजस्थान में भेजा, इन्होंने उसकी ऐसी दुर्दशा की कि वह और उसके सेनापति अपना रण-चातुर्य भूल गये। अंत में फिर संधि हुई, पर राजपूतों के दिल साफ़ नहीं हुए थे। मुगल-वंश से उन्हें अब एक प्रकार से घृणा-सी हो गई थी। अतः औरंगज़ेब ने जब दक्षिण पर चढ़ाई की तब उन्होंने उसका साथ न दिया। राजपूतों की देखादेखी दूसरे लोग भी उपद्रव करने लगे। उत्तर में सिक्खों तथा जाटों और दक्षिण में मरहटों का जोर बढ़ने से देश में चारों ओर विद्रोह की आग धधकने लगी और शनैः शनैः मुगल साम्राज्य का अधःपतन होना शुरू हुआ।

औरंगज़ेब की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्रों में राज्य-सिंहासन के लिये संघर्ष हुआ। कोटे के महाराव राजा रामसिंह और जयपुर के सवाई जयसिंह ने आजम का और मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (दूसरे), किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह तथा बूंदी के महाराव राजा बुधसिंह ने मुअज्जम का पक्ष लिया। मारवाड़ के अजीतसिंह तटस्थ रहे। आगरे के पास जाजऊ नामक स्थान पर दोनों भाइयों की सेनाओं में युद्ध हुआ। आजम लड़ाई में परास्त हुआ और मारा गया। अपना पक्ष ग्रहण न करने के कारण मुअज्जम जयपुर और जोधपुर के राजाओं से कट गया था। इसलिये गद्दी पर बैठते ही उसने उक्त रियासतों को खालसे कर लिया और तदनन्तर अपने तीसरे भाई कामबख्श का दमन करने के लिये दक्षिण की ओर चला। राठोड़ दुर्गादास सहित महाराजा अजीतसिंह और सवाई जयसिंह भी अपना अपना राज्य पाने की आशा से उसके साथ हुए। नर्मदा तक तो ये उसके साथ रहे, पर बाद में जब देखा कि राज्य मिलने

की कोई आशा नहीं है, तब खिसक कर मेवाड़ में चले आये। महाराणा ने इनका यथोचित आदर-सम्मान किया और तीनों ने मिल कर प्रतिज्ञा की कि यदि किसी एक पर भी दिल्ली के बादशाह का दबाव पड़ा तो शेष उसकी सहायता करेंगे। इसी समय महाराणा ने अपनी पुत्री का विवाह सवाई जयसिंह के साथ किया; इस विवाह के प्रसंग में इन तीनों राजाओं के बीच एक अहदनामा लिखा गया, जिसकी शर्तें ये थीं—

(१) उदयपुर की राजपुत्री सब राणियों में मुख्य समझी जाय, चाहे वह छोटी ही हो।

(२) उदयपुर की राजपुत्री का पुत्र ही युवराज माना जाय।

(३) यदि उदयपुर की राजकुमारी से कन्या का जन्म हो तो उसका विवाह मुसलमानों के साथ न किया जाय।*

सीसोदियों से सम्बन्ध जोड़ने में गौरव समझने और महाराणा की सहायता प्राप्त करने की इच्छा से उस वक्त तो दोनों ने इस अहदनामे पर हस्ताक्षर कर दिये। पर आगे चलकर उसका पालन न कर सके। इससे इनमें मन-मुटाव हो गया और आपस में भगड़ने लगे। इन घरेलू भगड़ों के कारण इनकी शक्ति दिन-दिन क्षीण होती गई और यहाँ पर मरहटों की छाप बैठ गई, जिन्होंने आगे चलकर ऐसे अमानुषिक अत्याचार किये कि जिनकी कहानियाँ सुनकर आज भी राजस्थान की प्रजा काँप उठती है।

राजपूतों को जब इस बात का ज्ञान हुआ कि उनके अतःकलह के कारण मरहटों का बल उत्तरोत्तर बढ़ रहा है और प्रजा चारों ओर से हाय हाय कर रही है, तब उन्होंने एकता स्थापित की और मरहटों को देश से बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगे। वि० सं० १८४४ (सन् १७८७) में जयपुर, जोधपुर और मेवाड़ के सम्मिलित सैन्य ने मरहटों को लालसोट के मैदान पर बहुत बुरी तरह से परास्त किया, जिससे उनका प्रभाव कुछ दिनों के लिये कम पड़ गया। परंतु इस विजय से भी राजपूतों ने न तो कोई शिक्षा ग्रहण की और न कोई लाभ उठाया। थोड़े ही वर्षों के बाद मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की कन्या कृष्णाकुमारी के पाणिग्रहण के सम्बन्ध में

राठोड़ों और कछुवाहों में फिर भगड़ा हो गया। इससे इनकी रही-सही शक्ति भी नष्ट हो गई। फिर क्या था, मरहटों की खूब ही बन पड़ी। उन्होंने यहाँ के रईसों से खिराज ठहराये। फौज खर्च में उनके शहर व परगने ज़ब्त किये और इस तरह राजस्थान का बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया। प्रजा और जागीरदारों से भी ये लोग रुपया वसूल करते और जो कोई देने में थोड़ी बहुत भी आना-कानी करता उसके नाकों में दम कर देते थे। जसवन्तराय होल्कर ने अमीर खाँ पठान को अपनी नौकरी में रख लिया, जिसने राजस्थान की प्रजा को सताने में अपनी तरफ से कोई कसर न रक्खी। राजस्थान उस समय लुटेरों का लीलाक्षेत्र बना हुआ था। मरहटे, पिंडारी, पठान आदि दिन दहाड़े लोगों को लूटते, उनके घरों को जला देते और उनकी धन-सम्पत्ति को लेकर चले जाते थे। जिस स्थान पर जाकर ये लोग एक घड़ी के लिये भी ठहर जाते, वहाँ देखते ही देखते मरुस्थल का सा सन्नाटा हो जाता था। अपने धन-माल, और आत्मीय जनों की रक्षा करना तो दूर रहा लोगों को अपने प्राणों की पड़ी थी। यात्री मार्ग में, किसान खेत पर और व्यापारी दुकान पर ही अपने प्राण गँवा बैठते थे। कोई भी नहीं कह सकता था कि एक घड़ी के बाद उस पर क्या बीतेगी।

अंततः राजा लोग लुटेरों की इस छापाछापी से तंग आ गये और अंग्रेज़ सरकार का आश्रय लेने की सोचने लगे। देहली के तत्कालीन रेज़िडेण्ट चार्ल्स मॅटर्काफ ने भी राजस्थान के मामलों में हस्तक्षेप करना अनिवार्य समझ कर यहाँ की वास्तविक परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए एक रिपोर्ट गवर्नर जनरल के पास भेजी। उस समय लार्ड मिटो भारत के गवर्नर जनरल के पद पर आसीन थे। वे युद्ध से प्रायः दूर रहते थे और जहाँ तक हो सकता बिना लोहा बजाये शान्ति स्थापित करना चाहते थे। इसलिये इन्होंने मॅटर्काफ की रिपोर्ट पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इनके बाद लार्ड हेस्टिंग्स भारत के गवर्नर जनरल हुए। इन्होंने अपनी नीति बदली और आतताइयों का दमन करने के लिये एक अंग्रेज़ी सेना राजस्थान में भेजना मंजूर किया। वि० सं० १८७४ (सन् १८१७) में कई देशी राज्यों के साथ अहदनामे होकर वे अंग्रेज़ों के अधिकार में आगये।

अंग्रेजी सेना ने मरहटों की शक्ति तोड़ दी; उसके आतंक से पिंडारी तितर-बितर हो गये और अमीर खां ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली। उसे टोक का राज्य दिया गया जो अभी तक उसके वंशजों के अधिकार में है। संक्षेप में यही राजस्थान का इतिहास है।

(३)

राजस्थानी भाषा

उत्तरी भारत को छोड़कर जिस समय राजपूतों ने राजस्थान का आश्रय लिया उस समय वे कौन सी भाषा बोलते थे, और राजस्थान के मेर, जाट, भील आदि मूल-निवासियों में उस समय किस भाषा का प्रचलन था, इस विषय पर प्रकाश डालने के लिये विश्वसनीय सामग्री का अभाव है। फिर भी भाषा-विज्ञान के आधार पर कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि उस समय उत्तरी भारत में शिष्ट समुदाय की भाषा संस्कृत तथा प्राकृत और जनसाधारण की बोलचाल की भाषा अपभ्रंश थी और इसी को लेकर राजपूत राजस्थान में आये थे। पर भाषा-शास्त्र का यह नियम है कि कोई भाषा सदैव एक रूप में स्थिर नहीं रहती। थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन उसमें सदा ही होता रहता है। अतएव दशवीं शताब्दी के अन्त तक तो अपभ्रंश का राजस्थान में ही नहीं, बल्कि समस्त उत्तरी भारत में पश्चिम से लेकर पूर्व में मगध तक और दक्षिण में सौराष्ट्र तक खूब प्रचार रहा। परंतु ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इसका साहित्य में व्यवहार होने लगा और व्याकरणों ने उसे भी अस्वाभाविक नियमों से बाँधना शुरू किया, जिससे इसके दो रूप हो गये। एक रूप तो वह था, जिसमें साहित्य-रचना होती थी और दूसरा वह रूप जिसका सर्वसाधारण में प्रचार था। प्रथम रूप तो व्याकरण के नियमों से बाँध कर स्थिर हो गया। परंतु दूसरा बराबर विकसित होता रहा। आगे चल कर इसके भी कई भेद-उपभेद हो गये।

अपभ्रंश के तीन उपभागों का उल्लेख मिलता है—नागर, उपनागर और ब्राजड़। इनमें भी नागर अपभ्रंश मुख्य था। हेमचन्द्र के मतानुसार इस नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत था*। इसी नागर अथवा

* श्री धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०; हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २०

शौरसेनी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा का विकास हुआ, जिसके साहित्यिक रूप का नाम डिंगल है।

राजस्थानी भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ हैं। इन सबका यदि सूक्ष्म रूप से वर्गीकरण किया जाय तो संख्या सौ से भी ऊपर पहुँच जाय। प्रधान प्रधान बोलियाँ ये हैं :—

(१) मारवाड़ी—जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और शेखावाटी में बोली जाती है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है और साहित्य बहुत विशद। इसके बोलने वाले भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में मिल जाते हैं। यह भाषा बहुत मधुर तो नहीं है, पर साथ ही बहुत रूखी भी नहीं है।

(२) मेवाड़ी—मेवाड़ के मुख्य भाग की भाषा है। इसका साहित्य प्रायः नहीं के बराबर है।

(३) वागड़ी—झुंजरपुर, बाँसवाड़ा, मेवाड़ के दक्षिणी और दक्षिण पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश तथा सिरोंही राज्य के पश्चिमी पहाड़ी विभाग में बोली जाती है।

(४) ढूँढाड़ी—जयपुर राज्य के अधिकतर भाग की भाषा है। इसमें प्राचीन साहित्य बहुत है। दादू और उनके शिष्यों की रचनाएँ इसी भाषा में हैं।

(५) हाड़ोती—बूंदी, शाहपुरा और मेवाड़ के पूर्वी हिस्से में बोली जाती है।

(६) मेवाती—अलवर के मेवात प्रदेश की भाषा है।

(७) ब्रजभाषा—अलवर राज्य के पूर्वी विभाग, भरतपुर, धौलपुर और करौली में बोली जाती है।

(८) मालवी—भालावाड़, कोटा और प्रतापगढ़ में बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या १६००००० के लगभग है।

(९) राँगड़ी—मारवाड़ी और मालवी के मिश्रण से बनी हुई भाषा का नाम राँगड़ी है। इसका राजपूतों में बहुत प्रचार है।

उपरोक्त भाषाओं के अतिरिक्त राजस्थान में हिन्दोस्तानी और उर्दू बोलने वालों की संख्या भी काफी है। लगभग २००० अंग्रेज़ यहाँ निवास करते हैं। इनकी बोलचाल की भाषा अंग्रेज़ी है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, डिंगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा का नाम है। इसका डिंगल नाम कब और क्यों पड़ा, इस सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है, और अपनी अपनी पहुँच तथा बुद्धि के अनुसार लोगों ने भाँति भाँति की कल्पनाएँ की हैं। नीचे हम प्रधान प्रधान मत और उनकी समीक्षाएँ देते हैं।

पहला मत—डिंगल शब्द का असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। ब्रजभाषा परिमार्जित थी और साहित्य शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी। पर डिंगल इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र थी। इसलिये इसका यह नाम पड़ा।*

समीक्षा—यह मत डा० टेसीटरी का है। डिंगल शब्द को गँवारू का द्योतक मान कर इन्होंने अपने मत को पुष्ट करने का प्रयत्न किया है, जो अयुक्त है। कारण, एक तो यह है कि प्रारंभ में डिंगल गँवारों की भाषा नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे चारण-भाटों की भाषा थी, जो बड़े विद्वान और काव्य-मर्मज्ञ होते थे। दूसरे ब्रजभाषा से भी अधिक डिंगल का राज-दरबारों में सम्मान होता था। अतः शिष्ट समुदाय की भाषा गँवारू हर्गिज़ नहीं कही जा सकती। इसके सिवा उनका यह कहना भी, कि डिंगल अनियमित थी अर्थात् साहित्य शास्त्र के नियमों के बंधनों से मुक्त थी, ठीक नहीं है। डिंगल के प्राचीन ग्रन्थों तथा गीतों से स्पष्ट विदित होता है कि व्याकरण की विशुद्धता के साथ साथ छंद, रस, अलंकार आदि का डिंगल की कविता में भी उतना ही खयाल रक्खा जाता था जितना कि ब्रजभाषा की कविता में। हाँ, शब्दों की तोड़-मरोड़ ब्रजभाषा की अपेक्षा डिंगल में अवश्य अधिक पाई जाती है, पर इसलिये उसे गँवारू भाषा ठहराना अनुचित है। सारांश, न तो प्रारंभ में डिंगल का अर्थ गँवारू था और न डिंगल भाषा अनियमित थी जिससे उसका यह नाम पड़ा हो।

दूसरा मत—प्रारंभ में इसका नाम डगल था, पर बाद में पिंगल शब्द के साथ तुक मिलने के लिये उसका डिंगल कर दिया।†

* Journal of the Asiatic Society of Bengal; Vol. X, (1924) p. 176.

† Preliminary Report on the operation in search of Mss. of Bardic Chronicles pp. 14-15.

समीक्षा—यह मत महामहोपाध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री का है। शास्त्री जी ने डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति डगल से बतलाई है और अपने मत के समर्थन में चौदहवीं शताब्दी के एक प्राचीन गीत का अंश भी उद्धृत किया है, जो उन्हें कविराजा मुरारी दान जी से प्राप्त हुआ था। वह अंश यह है:—

दीसे जंगल डगल, जेथ जळ बगळ चाटे ।

अनुहुत गल दियै, गला हुँता गल काटे ॥

कविता के अंश का अर्थ शास्त्री जी ने नहीं दिया। केवल यही कह कर छोड़ दिया है कि इससे यह स्पष्ट है कि जंगल देश अर्थात् मरुदेश की भाषा डिंगल कहलाती थी। इस उद्धृत अंश में तो भाषा का कहीं जिक्र भी नहीं है, फिर न मालूम शास्त्री जी ने यह फैसला कैसे दे दिया। भाषा, रचना-शैली आदि से भी यह कविता चौदहवीं शताब्दी की लिखी हुई प्रतीत नहीं होती। फिर भी थोड़ी देर के लिये यदि मान भी लिया जाय कि यह उसी समय की रचना है तब भी प्रश्न यह उठता है कि प्रारम्भ में डिंगल का डगल नाम पड़ा क्यों? डगल कहते हैं मिट्टी ढेलने को अथवा अनगढ़ पत्थर को और इसी अर्थ में यह उपरोक्त कविता में भी प्रयुक्त हुआ है। यदि डिंगल से तुक मिलाने के लिये डगल का डिंगल बना दिया गया तो पहिले कौन सी ऐसी भाषा थी जिसकी तुलना में यह भाषा डगल के समान अनगढ़ अर्थात् अपरिष्कृत थी। ब्रजभाषा तो हो नहीं सकती। क्योंकि चौदहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा का इतना प्रौढ़ एवं व्यवस्थित रूप न था कि उसके सामने डिंगल ढेलने सी दीख पड़ती। राजस्थानी भी नहीं हो सकती। क्योंकि राजस्थानी उस समय की बोल-चाल की भाषा थी और बोल-चाल की भाषा की अपेक्षा साहित्यिक भाषा अधिक प्रौढ़ और अधिक परिमार्जित होती ही है। इसके सिवा एक बात यह भी है कि प्रारंभ में डिंगल एक तरह से चारण-भाटी की भाषा थी और ये लोग बड़े अनुगम के साथ इस भाषा में काव्य रचना करते थे। उनकी वीररस की कविताएँ तो प्रायः इसी में हुआ करती थीं। अतः हमारे खयाल से कोई भी ऐसा अकृतञ्च, आत्म-सम्मान से शून्य और

विचारहीन पुरुष न होगा जो जिस भाषा में, चाहे वह कितनी ही अनुन्नत तथा अविकसित क्यों न हो, अपने विचार ही प्रकट करता न आया हो, बल्कि जो उसके उदरपूर्ति का भी साधन रही हो, उसे हीनता की दृष्टि से देखे और डगल कह कर उसका अपमान करे ।

तीसरा मत—डिंगल में 'ड' वर्ण बहुत प्रयुक्त होता है । यहाँ तक कि वह डिंगल की एक विशेषता कही जा सकती है । 'ड' वर्ण की इस प्रधानता को ध्यान में रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रखा है । जैसे बिहारी 'लकार' प्रधान भाषा है उसी तरह डिंगल 'डकार' प्रधान भाषा है ।*

समीक्षा—यह मत भी निराधार है । डिंगल की दो-चार कविताओं में 'ड' वर्ण की प्रचुरता देख कर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी बुनियाद पर उसका डिंगल नाम पड़ने की किंलष्ट कल्पना करना सिवा हेत्वाभास के और कुछ नहीं है । भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं; पर अभी तक ऐसा कहीं सुनने में नहीं आया कि अमुक अक्षर की प्रधानता के कारण उसका अमुक नाम पड़ा हो । बिहारी में लकार की प्रधानता है और होगी, पर इससे क्या हुआ । इसका असर उसके नामकरण पर तो कुछ भी नहीं पड़ा । यदि यही बात है तो फिर पिंगल में 'प' वर्ण की अधिकता होनी चाहिये, जो नहीं है । दूसरी आपत्ति इस मत को स्वीकार करने में यह है कि हमें मान लेना पड़ता है कि पिंगल के साम्य पर डिंगल शब्द की उत्पत्ति हुई । पिंगल की अपेक्षा डिंगल अधिक पुरानी भाषा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं । क्या आश्चर्य है, यदि डिंगल के साम्य पर पिंगल शब्द, ब्रजभाषा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा हो ? पृथ्वीराज रासो को तो जाने दीजिये । वह तो जाली समझा जाता है । पर नीचे लिखी कविताओं को देखिये । इनमें 'ड' वर्ण की प्रधानता कहाँ है ?

अलावदी प्रारम्भ, कीध सोनागर ऊपर ।

हुओ समर तलहटी, जुड़े चौहान मछर भर ॥

* ना० प्र० प० ; भाग १४ पृ० १२२-१४२

मुद्रोणत नैणसी की ख्यात ; प्रथम खंड, पृ० १७४

सकतीपुर बेसाम, प्राण सुरताण संकायो ।
 गांजे धड़ गज रूप, चित आलम चमकायो ॥
 राजियो राव कान्हड़ रिणह, कोतक रवि रथ थंभियो ।
 वरमाल कंठ अपछर वरै, साहद विमाणे मालियो ॥१॥

और भी —

जद धर पर जोवती दोठ नागोर धरन्ती ।
 गायत्री संग्रहण देख मन माहि डरन्ती ॥
 सुर कोटी तेतीस आण नीरन्ता चारो ।
 नहि चरंत पीवन्त मनह करती हंकारो ॥

कुंभेण राण हणिया कलम, आजस उर डर उत्तरिय ।
 तिण दीह द्वार शंकर तणै कामधेनु तण्डव करिय ॥२॥

चौथा मत—डिंगल, डिम् + गल से बना है । डिम् का अर्थ है डमरू की ध्वनि, तथा 'गल' का गले से तात्पर्य है । डमरू की ध्वनि रण-चण्डी का आह्वान करती है तथा वह वीरों को उत्साहित करने वाली है । डमरू वीर रस के देवता महादेव का बाजा है । गले से जो कविता निकल कर डिम-डिम की तरह वीरों के हृदयों को उत्साह से भर दे उसे डिंगल कहते हैं । डिंगल भाषा में ऐसी कविता की प्रधानता है; इसलिये वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई ।^{७३}

समीक्षा—महादेव को वीर रस का देवता और डमरू की ध्वनि को उत्साहवर्धक मानकर इस मत का प्रतिपादन किया गया है । पर न तो महादेव वीर रस के देवता हैं और न डमरू की ध्वनि कहीं उत्साह वर्धक मानी गई है । वीर रस के देवता महादेव नहीं,† इन्द्र हैं । शिवजी तो रौद्र रस के अधिष्ठाता हैं; फिर डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साहवर्धक और गले से निकली हुई कविता का गठबंधन तो बिल्कुल ही युक्ति शून्य है । अतः इस मत का निराधार होना स्पष्ट सिद्ध है ।

*देखिये—श्री महाराज प्रतापनारायण सिंह जी अयोध्या-नरेश विरचित रस कुसुमाकर, पृ० १६३

† ना० प्र० प० ; भाग १४, पृ० २२५

इनके सिवा दो एक मत और भी हैं। उदाहरणार्थ, कुछ लोग डिंगल को डिम और गल (बालक + गला) से बना हुआ मानकर इसका अर्थ बालक की भाषा करते हैं और कुछ इसकी उत्पत्ति डिग्गी और गल से बतलाते हैं। परंतु वास्तविक तथ्य तक पहुंचने में सहायता इनसे भी नहीं मिलती और इसलिए इस विषय में अब अधिक कुछ कहना वृथा है।

परन्तु, बात बहुत साधारण है। सभी मानते हैं कि प्रारम्भ में डिंगल चारण भाटों की भाषा थी और अपनी काव्य रचनाएँ ये लोग इसी भाषा में करते थे। साथ ही यह भी सभी पर विदित है कि अपने आश्रय-दाताओं के कार्य कलापों का, उनके शौर्य पराक्रम का ये लोग बहुत बड़ा कर वर्णन किया करते थे। धन के लोभ से कायर को सूर, कुरूप को सुन्दर, मूर्ख को परिणित और मूजी को दानी कह देना इनके लिये साधारण बात थी। सत्यासत्य के वास्तविक निरूपण की अपेक्षा 'हाँ-हज़री' द्वारा अपने स्वामियों को रिक्ताकर उनसे अपना स्वार्थ साधने की ओर इनका ध्यान विशेष रहता था। कारण, कविता उनकी जीविका ही तो ठहरी! फलतः उनके वर्णन अधिकांश में अत्युक्तिपूर्ण हुआ करते थे अर्थात् वे डींग हाँका करते थे। इसलिये जो भाषा इस प्रकार डींग हाँकने के काम में लाई जाती थी, उसका शीतल, श्यामल आदि के अनुकरण पर लोगों ने डींगल (डींग से युक्त) नाम रख दिया, जिसका परिमार्जित रूप कहिये अथवा विकृत रूप आधुनिक शब्द डिंगल है। राजस्थान में वृद्ध चारण लोग आज भी डिंगल न कह कर डींगल ही बोलते हैं। हिन्दी में भी बहुत से ऐसे शब्द हैं, जिनकी उत्पत्ति कुछ कुछ इसी तरह से हुई है—जैसे बोझल, धूमल आदि।

सर्वसाधारण की रोज़मर्रा की भाषा की अपेक्षा यह भाषा (डिंगल) जिसमें कवि लोग रचना करते थे कुछ कठिन होती थी। अतएव अत्युक्ति के भाव के सिवा कठिन्य का भाव भी इस 'डिंगल' शब्द में निहित है, और जिस प्रकार 'प्राकृत' और संस्कृत नामों ही से इन भाषाओं के क्रमशः प्राकृतिक (Natural) और परिमार्जित (Polished) होने का भाव प्रकट होता है, उसी तरह 'डींगल' शब्द से भी अत्युक्ति और कठिनता का बोध होता है।

(४)

डिंगल कविता

डिंगल कविता का इतिहास उस समय से आरंभ होता है जब गहलोत, चौहान आदि राजपूत राजवंशों के राज्य राजस्थान में पूरी तरह से स्थापित हो चुके थे और मुसलमानों के साथ इनका संघर्ष होना शुरू हो गया था। यह एक भीषण हलचल और घोर अशान्ति का युग था और अपने राज्यों की रक्षा के लिये राजा-महाराजाओं को हमेशा कमर कस कर युद्ध के लिये तैयार रहना पड़ता था। इसके लिये सैन्यबल तथा शस्त्रबल के सिवा उन्हें कवियों की भी आवश्यकता रहती थी, जो अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा उन्हें और उनके सैनिकों को प्रोत्साहित करते रहते थे। यह काम उस समय चारण-भाट करते थे, जो बड़े विद्वान होते थे और जिनका राज-दरबारों में बड़ा सम्मान होता था। यदि सौभाग्य से कोई कवि कलम और कृपाण दोनों के चलाने में निपुण हुआ तो उसके प्रति सम्मान की भावना और भी बढ़ जाती थी। राजाश्रय और धन के लोभ से उक्त जातियों के लोग काव्य-कला-कौशल की प्राप्ति के लिये शिक्षा और अभ्यास में बहुत समय बिताते और संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने का उद्योग करते थे। इस परिश्रम का फल भी प्रायः बहुत अच्छा होता था। अपना और अपने पूर्वजों के यश को विस्तारित करने वाले समझ कर राजा-महाराजा लाख पसाव, कंड़ पसाव आदि के रूप में उन्हें अतुल्य धन दान देते थे और कवीश्वर, कविराजा आदि की उपाधियों से

* राजस्थान में चारण-भाटों को जो दान दिया जाता है उसका नाम उन्होंने पसाव रखा है, बड़े दान को जिसमें गाँव भी हों वे अत्युक्ति से लाख पसाव, करोड़ पसाव आदि कहते हैं मारवाड़ में लाख पसाव का व्यौरा इस प्रकार है—(१) पाँच हजार रुपया रोकड़ (२) आभूषणों सहित एक हाथी (३) आभूषणों सहित एक घोड़ा (४) कड़े, मोती, मोतियों की कंठी, सिरपेच आदि आभूषण (५) जामा, दुपट्टा, पगड़ी, दुशाला आदि वस्त्र (६) सोने के तैनाल, मुनाल, सहित एक तलवार और कटार। इन वस्तुओं के सिवा एक लाख रुपयों में जितनी कमी रहती है उसकी पूर्ति के लिए गाँव दिये जाते हैं जो वंश परंपरा के लिये रहते हैं।

विभूषित कर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते थे। प्रसिद्ध है कि अजमेर के गौड़ बल्लुराज ने अरब पसाव, आमेर के राजा मानसिंह ने छः करोड़ पसाव, बीकानेर के रायसिंह ने सवा तीन करोड़ पसाव, सिरोही के राव सुरताण ने एक करोड़ पसाव, मारवाड़ के राजा गजसिंह ने १४ लाख पसाव और मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह (दूसरे) ने एक लाख पसाव दिया था। धन और जागीर देने के सिवा राजा लोग चारण-भाटों का और भी कई तरह से सम्मान करते थे। कहते हैं कि जोधपुर राज्य के मूंधियाड़ ठिकाने का करणीदान नाम का एक चारण जब किसी राजकार्य के लिये मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह से मिलने के लिये उदयपुर आया था, तब महाराणा उसकी पेशवाई के लिये राजमहल से जगदीश के मन्दिर तक 'जिसका फासला ३०० फीट के लगभग है' पैदल आये और उसे बड़े सम्मानपूर्वक अपने साथ लिवा ले गये थे। इसके लिये अभी तक करणीदान का यह दोहा प्रसिद्ध है—

करणा रो जगपत कियो, कीरत काज कुरबब।

मन जिण धोखो ले मुआ, साह दिलीस सरबब ॥

इतना ही नहीं, इन राजा-महाराजाओं की वजह से ये चारण-भाट अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि मुगल बादशाहों के राज-दरबारों में भी पहुँच गये थे, और वहाँ भी इनका बड़ा आदर होता था। इनमें से जाड़ा मेड़, लकवा जी बारहट, पीरजी आसिया, दुरसा जी आढ़ा, रामाजी साँदू, हापाजी आदि को तो उक्त बादशाहों की ओर से बड़े बड़े इनाम और मनसब भी प्राप्त हुए थे।

अपने आश्रयदाताओं के कीर्ति-कथन में इन चारण-भाटों ने सैकड़ों नहीं, बल्कि हज़ारों ग्रंथों की रचना की जिनमें से बहुत से तो काल-कवलित हो चुके और बहुत से विद्यमान हैं। डिंगल के फुटकर गीत, कवित्त, दूहा आदि तो इतनी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं कि उनकी संख्या का अनुमान लगाना ही कठिन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे चारण-भाट जिन राजा-महाराजाओं की प्रशंसा में ग्रंथ लिखते थे प्रायः उनके सम सामयिक होते थे और बहुधा आँखों देखी घटनाओं का वर्णन करते थे। चंद आदि

कुछ कवि तो ऐसे भी हुए, जो युद्ध, आखेट आदि में अपने चरित्र नायकों के साथ रहते और स्वयं इन कार्यों में भाग लेते थे। अतः इतिहास की दृष्टि से इन रचनाओं का मूल्य है, और बहुत है। पर काव्योच्चता के विचार-कोण से उतना नहीं है। कारण स्पष्ट है। बात यह है कि जो कवि धन की इच्छा से, प्रतिष्ठा की आशा से, श्रेताओं को प्रभावित करने के उद्देश्य से तथा अन्य किसी प्रकार के लोभ से कविता करते हैं उनकी कविता में वह रस, वह चमत्कार और वह बल कदापि नहीं आ सकता, जो 'स्वान्तः सुखाय' काव्य-रचना करने वाले कवियों की कृतियों में मिलता है।* यही कारण है कि इन राजाश्रित कवियों की रचनाओं में आत्मानुभूति तथा—आत्म-विस्मृति की वह अक्षय छाप हमें नहीं दीख पड़ती, जिसके दर्शन सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियों की रचनाओं में पग-पग पर होते हैं।

भाषा के सम्बन्ध में भी ये कवि निरंकुश होते थे। जो चारण-भाट बहुत लिखे पढ़े होते वे पांडित्य-प्रदर्शन की लालसा से अपने काव्य ग्रंथों में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फ़ारसी आदि कई भाषाओं के शब्दों का जान बूझ कर प्रयोग करते थे और जो अपेक्षाकृत कम पढ़े लिखे होते वे गीतों की तुक मिलाने के लिये शब्दों को इस बुरी तरह से तोड़ते थे कि वे अपने मूल रूप से बहुत दूर जा पड़ते थे, और आज तो उनके पहिचानने में भी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है जैसे—सीहड़ (श्रीहर्ष), पायाळ (पाताल), सुकळ (शुक्ल), साहण (साधन), जुजठळ (युधिष्ठिर), ढेलड़ी (दिल्ली) आदि। फिर भी भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह प्राचीन डिंगल भाषा बड़े महत्व का स्थान रखती है। क्योंकि शौरसेनी प्राकृत अपभ्रंश और आधुनिक हिन्दी का सम्बन्ध इसी के द्वारा स्थापित होता है।

इन प्राचीन ग्रंथों में व्यवहृत छन्दों के विषय में यहाँ इतना ही कहना काफी होगा कि अपने क्रमबद्ध ग्रंथों में ये चारण-भाट संस्कृत के मन्दाक्रन्ता,

* When a poet turns round and addresses himself to another person, when the expression of his emotions is tinged also by that desire of making an impression upon another mind, then it ceases to be poetry and becomes eloquence.

—John Stuart Mill.

शार्दूल विक्रीडित, मुक्तादाम, भुजंगप्रयात आदि छन्दों का ही अधिक प्रयोग करते थे और भाषा छन्दों में छप्पय, पदरी, दूहा आदि इनके लोकप्रिय छंद थे। चंद वरदाई के छप्पय तो प्रसिद्ध ही हैं। इस छप्पय पद्धति का अनुवर्तन बहुत पीछे तक हुआ और आज भी चारण भाटों के काव्यों में इसका प्रभाव स्पष्ट प्रलक्षित होता है। फुटकर रचनाओं में ये लोग गीत छंद का प्रयोग करते थे, जो डिंगल साहित्य की अपनी चीज़ है। ये गीत भी कई तरह के होते थे—चोटीबंध, त्रवकड़ो, पालवणी, छोटी साणोर, सुपंखड़ो, सावभड़ो, भारवड़ी, त्रकुटवध इत्यादि। इनके लक्षणों का सविस्तर वर्णन रघुनाथ रूपक, रघुवर-जसप्रकाश आदि डिंगल के रीति-ग्रंथों में मिलता है।

अलंकारों में ये कवि उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से करते थे, पर वह भी बड़े संयम के साथ। अलंकारिकता के फेर में पड़कर भाव को भट्ट करने की प्रवृत्ति इनकी रचनाओं से नहीं झलकती। हाँ, एक अलंकार अवश्य ऐसा है जिसका इन कवियों ने बड़ी कट्टरता से पालन किया है और वह है 'वयण सगाई' इसे हम हिन्दी के अनुप्रास अलंकार का एक भेद कह सकते हैं। वयण सगाई का साधारण नियम यह है कि चरण के प्रथम शब्द का आरंभ जिस वर्ण से हो उसके अन्तिम शब्द का आरंभ भी उसी वर्ण से होना चाहिये जैसे—

पातल जो पतसाह, बोले मुख हूँता बयण ।

मिहर पछम दिस माँह, ऊगे कासप राव उत ॥

डिंगल के रीति ग्रंथों में वयण सगाई का निर्वाह न होना कोई दोष नहीं माना है। परंतु प्राचीन कवियों ने और विशेषतः मध्यकालीन कवियों ने इसे इस तरह से अपनाया कि परवर्ती कवियों के लिये यह काव्य-नियम सा बन गया और सभी इसका पालन करते रहे। यदि कोई कवि वयण सगाई का निर्वाह किसी स्थान पर न कर सकता तो वह काव्य-दोष तो नहीं, परन्तु कवि की कवित्व शक्ति की कमज़ोरी का सूचक अवश्य समझा जाता था। वंश-भास्कर का रचयिता सूर्यमल पहला कवि था जिसने इस बात को

महसूस किया कि वयण सगाई का पञ्जा पकड़ने से भाव के स्पष्टीकरण में कठिनता होती है और उसने इस परंपरागत काव्य रीति की उपेक्षा की। परंतु अपने समकालीन कवियों के रोष का भय उसे भी था। अतः अपने रचे वीर सतसई नामक ग्रंथ के प्रारंभ में निम्नांकित दोहा लिखकर उसने अपनी सफाई दी :—

वयण सगाई बाळियों, पेखी जै रस पोस ।

वीर हुताशण बोल में, दीसै हेक न दोस ॥

अर्थात्—वयण सगाई के नियम को जला देने से (हटा देने से) वीर रस का पोषण ही दिखाई देता है। उस हुतासन (अग्नि) के रंग में दोष तो एक भी नहीं दीख पड़ता ।

दूसरा अध्याय



(प्राचीन काल)

राजस्थान का सबसे पहला कवि खुंमाण रासो का रचयिता दलपत विजय नामक कोई भाट कहा जाता है। खुंमाण रासो में मेवाड़ के राजा खुंमाण (दूसरे) के साथ खलीफा अलमामू के युद्ध का वर्णन है। खुंमाण ने वि० सं० ८७० से ९०० तक मेवाड़ पर राज्य किया था। अतः यही समय दलपत विजय का भी सम्भूतना चाहिये। परन्तु खुंमाण रासो की आजकल जो प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें महाराणा प्रतापसिंह तक के राजाओं का वर्णन है, इसलिये इसकी प्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों को कुछ सन्देह सा हो गया है।* संभव है कि खुंमाण के बाद का वृत्तान्त दलपत विजय के वंशवालों ने उसमें जोड़ा हो, पर जब तक इस विषय की पूरी तौर से छान-बीन न हो जाय निश्चय रूप से कुछ कहना कठिन है। दलपत विजय के उपरान्त क्रमशः साईंदान चारण, अकरम फैज़ और नरपति नाल्ह के नाम आते हैं। साईंदान का लिखा हुआ संवत्सार नामक ग्रन्थ का पता हाल ही में लगा है। अकरम फैज़ मारवाड़ राज्यान्तर्गत डीडवाने का रहने वाला था। कहा जाता है, इसने वृत्तरत्नाकर का अनुवाद किया था जो अब अप्राप्य है। (४) नरपति नाल्ह के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई

* दौलत (दलपत) विजय-रचित खुंमाण रासो की एक अपूर्ण प्रति देखने में आई, उसमें महाराणा प्रतापसिंह तक का तो वर्णन है और आगे अपूर्ण है, इस से उसकी रचना का समय वि० सं० की १७ वीं शताब्दी या उसके भी पीछे माना जा सकता है—१० डा० ओम्हा ; राजपूताने का इतिहास, पृ० ४२४

इन्हें राजा, कोई भाट और कोई राजकवि मानते हैं। अपने रचे बीसलदेव रासो में कहीं भी नाल्ह ने अपना वंश-परिचय नहीं दिया, और न तत्कालीन किसी दूसरे कवि का लिखा हुआ कोई ऐसा प्राचीन ग्रंथ मिला है, जिसमें इनका उल्लेख हो, और जिसके आधार पर इनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला जा सके। इनकी रचना प्रणाली से इनका भाट होना अवश्य सूचित होता है। पर यह भी अनुमान ही अनुमान है।

नाल्ह रचित बीसलदेव रासो प्रसिद्ध है। इसकी आज तक दो हस्त-लिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, एक जयपुर से और दूसरी बीकानेर से प्रथम प्रति में ग्रंथ का निर्माण काल सं० १२१२ और दूसरी में सं० १०७३ दिया हुआ है—

बारह सै बहोत्तरा हॉ मँभारि, जेठ बदी नवमी बुधवारि ।

—जयपुर

संवत् सहस्र तिहत्तर जाणि, नाल्ह कवीसर रसीय बखाणि

—बीकानेर

जब तक यह दूसरी प्रति प्राप्त नहीं हुई थी, अधिकांश विद्वान बीसलदेव रासो का रचना काल सं० १२१२ और नाल्ह को बीसलदेव चतुर्थ (सं० १२१०-१२२१) का समकालीन मानते थे। पर इस द्वितीय प्रति के कारण कुछ लोग अब इनका बीसलदेव दूसरे (सं० १०३०-१०५६) के आस-पास होना मानने लगे हैं, और रासो का निर्माण समय वि० सं० १०७३ ठीक बतलाते हैं *। यह विषय विवादग्रस्त है और जब तक दूसरी प्रति प्रकाशित होकर सामने न आ जाय तक तक तथ्यातथ्य का निरूपण असम्भव है।

बीसलदेव रासो एक वर्णात्मक काव्य है। इसमें बीसलदेव का राजमती से विवाह, उनकी उड़ीसा यात्रा, राजमती का विरह, बीसलदेव का पुनः अजमेर आगमन आदि विषयों का संक्षिप्त वर्णन है और २१५ छन्दों में समाप्त हुआ है। भाषा इसकी बोलचाल की राजस्थानी, कविता साधारण तथा इतिवृत्त-अधिकतः अनैतिहासिक है। मालूम होता है कि नाल्ह कोई बहुत पढ़ा-लिखा हुआ कवि नहीं, बल्कि एक साधारण योग्यता का रमता

फिरता भाट था, जो अपनी तुकबंदियों द्वारा जनसाधारण को प्रभावित कर अपनी उदर पूर्ति करता था। जन्मसिद्ध काव्य-प्रतिभा उसमें न थी। अतः रासो में न तो काव्य-चमत्कार है, न अर्थ-गौरव और न छंद-वैचित्र्य। सर्व-साधारण की धोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग उसने किया अवश्य, पर उनका भी ठीक ठीक प्रयोग उससे न हुआ; उनके साथ लिपटे हुए भाव को वह न समझ सका। उदाहरणार्थ, 'चीरी' शब्द ही को लीजिये। यह शब्द शोक का द्योतक है। किसी मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर उसके कुटुम्बी अपने स्वजातियों तथा दूरस्थ सम्बन्धियों को बारहवें अथवा तेरहवें दिन मृत्यु-भोज में, जिसे राजस्थान में क्रियावर कहते हैं, सम्मिलित होने के लिये जो पत्र लिखते हैं, उसे 'चीरी' कहते हैं। विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिये लिखी हुई पत्रिका के लिये यहाँ कंकुपत्री (कुम्कुम् पत्रिका) और साधारण संदेशसूचक पत्र के लिये कागद (कागज़) शब्द प्रचलित हैं। अतः बीसलदेव का पत्र पाकर आनंद में मग्न राजमती के लिये कवि का 'चीरी रही धन हीयड़ऊ लगाई', लिखना असमीचीन है और यही सूचित करता है कि एक शब्द के सुसूक्ष्म अर्थ को तोड़ने की शक्ति उसमें न थी। इसी तरह राजा भोज की कन्या राजमती के लिये उसका विवाह होने के पहले 'ऊनंत पयोहर बाली वेस' लिखना भी कुछ खटकता है।

निष्कर्ष यह है कि साहित्यिक दृष्टि से बीसलदेव रासो का मूल्य प्रायः नगण्य है। पर प्राचीनता उसकी एक ऐसी विशेषता है, जिसके कारण इसका अध्ययन-अध्यापन आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य है। भाषाविद् और हिन्दी-साहित्य के इतिहास के लेखक तो इसके बिना एक पाँव भी आगे नहीं बढ़ सकते। हिन्दी भाषा के आदि स्वरूप और उसकी अविकसित अवस्था का बहुत कुछ आभास हमें इस ग्रंथ द्वारा मिलता है और इसलिये नाल्ह का नाम हिन्दी साहित्य में अमर है और रहेगा। इनकी कविता का नमूना देखिये—

श्रीय तो चालीयो कातिग मास , सुना मंदिर घर कबिलास ॥

सूना चउरा चोखणडी । नयण गमायो पंथि सिर जाई ॥

भूख नहीं त्रीस^१ जल्लूली । उणी-घडां नींद कहा थी होई ॥१॥
 आघण^२ कर दिन छोटा होई । सषी ! संदेशों मोकलोज कोई ॥
 संदेसाहि ववज^३ पड़यो । लांघ्या पर्वत दुर्घट-घाट ॥
 परिदेसां परि-भूमि गयउ । वीरी जणह न चालइ बाट ॥ २ ॥
 देखी सखी हिव लागै छइ पोस । धन मरती मति लावउ हो दोस ॥
 दुख भीनी पंजर हुई । धान^४ नू भावई तिज्या सरिन्हाण ॥
 छाहणी धूप नू आलगई । कवियक भूपड़ा होई मसाण ॥ ३ ॥
 माह मास सी पड़यो अतिसार । जल-थल महीयल ससूकीया छार ॥
 आक दयंता वन दह्यो । चोली माहि थी दाधउ छइ गात ॥
 धयीयन तकां धण ताकजे । तुरीय पलांणि वेगो घरि आव ॥
 जोबन छत्र ऊँचाईया, ईणि कंत ! काया मांहि फेरी छइ आण ॥ ४ ॥
 फागुण फरक्या कंथ्या रूप । चित्त चमकी नींद न भूख ॥
 जूँ जोबन जूहै सखी । मूरिख लोकनू जाणइ संसार ॥
 दिण परवो दिस पाटलइ । सखी बाब फरुकती जाइ संसार ॥
 चैत्र मासां चतुरंगी नारि । प्रीय बिण जीवूँ कवण अधार ? ॥
 चूढे भीजे जण हँसौ । पञ्च सखी मिली वईठी छइ आई ॥
 दंत कवाड्या नह रंग्या । चालउ सखी होली खेलवा जाई ॥५॥
 सूणी सहेली ! कुँ ईक बात । म्हाहरइ फरकइ छइ दांहीणो गात ॥
 आज दीसई ते ईक दिन मांहि । म्हां क्युं होली खेलवा जाई ? ॥
 जल्लोगाणां की गोरड़ी । म्हां की आँगूली देखता गिलजे बाँह ॥६॥
 वैशाखां सखी लहणुजे धान । सीला पाणी पाका पान ॥
 कनक काया घट सींचजै । मूरिख नाह नू जाणे [सं] सार ॥
 हाथि लगामी ताजिणौ । पार कइ सेवइ राज-दुवार ॥ ७ ॥
 देखि जठांयो ! लागो छइ जेठ । मूखी कुंभलाणौ अति सूकई छइ होठ ॥
 सनेहा सारण^५ वहई । धरती पाई न देणउ जाई ॥
 अन बलई दव परजलई । हंस सरोवर छइइ छइ ठाँह ॥ ८ ॥

१ त्रीस—तृषा । २ आघण—अग्रहन । ३ ववज—बाधा । ४ धान—अन्न,
 भोजन । ५—सारण—(सं० सारिणी), छोटी नदी, प्रवाह, धारा ।

धुरि असाढ़ धडुक्क्या मेह । खलहल्या^१ घाव्या वहि गई खेह ॥
 अजी न असाठां बहुइथो । कोईल कुरलइ अंभ की डाल ॥
 मोर टहूकइ सीखर थीं । माता मइगल ज्युं पग देई ॥
 सदी मतवाला ज्युं घलई । तिणी घरी ओलगी काई करेसतो ? ॥६॥
 श्रावण बरसइ छइ छाडोय धार । प्रीय बिण खेलइ कवण आधार ॥
 सखीय तो खेलइ काजली । चीड़ीय कमेडी मंदिय आस ॥
 पपोहो पीऊ ! पीऊ ! करई । सखी असल^२ सलावइ मौ श्रावण मास ॥१०॥
 भादवउ बरसइ छइ मगैहर गंभीर । जल, थल, महीयल सहूभस्या नीर ॥
 जाये सरवर ऊलटइ । एक अंधारी बीचली बाय ॥
 सूनी सेज विदेश पीव । दोइ दुख नाह क्युं सहइयां जाई ॥
 आसोजां धन मंडीय आस । माइया मंदिर घर कबिलास ॥
 मांढ्या चौरा चऊखंडी । मांढ्या सांभरि का रणिवास ॥
 एक बलावै बाहुइया । नाह उत्तरी गयो गंगा के पार ॥१२॥

(५) चंद बरदाई— भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज के अमात्य, मित्र, एवं राजकवि चंद का जन्म वि० सं० १२०५ के लगभग पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध नगर लाहोर में हुआ था ।* ये जाति के भाट थे, जगात इनका गोत्र था । अजमेर के चौहान इनके पूर्वजों के यजमान थे । चंद के पिता का नाम वेण और गुरु का गुरुप्रसाद था । चौहान वंश से परम्परागत संबंध होने से बाल्यावस्था में चंद की पृथ्वीराज से घनिष्ठता होगई थी और बड़े होने पर ये इनके राजकवि एवं गण्य मान्य सामन्त बन गये थे । पृथ्वीराज के समान चन्द भी अश्वारोहण में, शब्द बेधीबाण मारने में, अस्ति संचालन में बड़े सिद्ध हस्त थे । अतएव युद्ध के समय ओजस्विनी कविताओं द्वारा अपने आश्रयदाता तथा सैनिकों को उत्साहित एवं उत्तेजित करने के अतिरिक्त युद्ध-क्षेत्र में अपनी रण-दक्षता का परिचय भी इन्हें पूर्ण रूप से और प्रायः देना पड़ता था अर्थात् ये कवि थे और योद्धा भी ।

१ खलहल्या—खलिहान, २ असल सलावइ—बहुत पीड़ा देता है ।

✽ रामो में पृथ्वीराज का जन्म संवत् १११५ दिया है और लिखा है कि पृथ्वीराज तथा चंद का जन्म और देहान्त एक ही दिन हुआ था, किन्तु पंड्या जी के कथना-नुसार इसमें ९० वर्ष जोड़ देने से यह संवत् १२०५ होता है ।

चंद ने दो विवाह किये थे। इनकी पहिली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। रासो की कथा चन्द ने गौरी से कही है। गौरी प्रश्न करती है, चन्द उसका उत्तर देते हैं। वह शका करती है, चन्द उसका समाधान करते हैं। इन दो स्त्रियों से चन्द के ग्यारह संतति हुई, दस पुत्र और एक कन्या। कन्या का नाम राजवाई था। इन दस पुत्रों में इनका चौथा पुत्र जल्हण सबसे योग्य, प्रतिभा सम्पन्न एवं गुणाढ्य था। वीर एवं साहसी होने के अतिरिक्त चंद पडूभाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंदशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, पुराण, संगीत आदि विद्याओं में भी परम प्रवीण थे। उन्हें भगवती जालंधरी देवी का इष्ट था, जिनकी कृपा से अष्टकाव्य भी ये कर सकते थे। इन गुणों के कारण चन्द जहाँ जाते, वहाँ उन पर सम्मान की वर्षा होती थी। वे राजदरबार के भूषण, वीरों के अग्रणी और कवियों के सिर मौर थे।

चंद की मरण तिथि अनिश्चित है। रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज और चन्द की मृत्यु ४३ वर्ष की आयु (वि० सं० १२४६*) में एक ही दिन गज़नी में हुई थी। परन्तु आधुनिक इतिहासवेत्ता रासोकार के इस कथन को सर्वांशतः सत्य नहीं मानते। पृथ्वीराज का देहान्त काल वि० सं० १२४६ (ई० सं० ११६२) तो वे भी स्वीकार करते हैं, किन्तु साथ ही साथ उनका यह भी कहना है कि पृथ्वीराज ने भारत में मुसलमानों से युद्ध करते समय रणभूमि में प्राण छोड़े थे, गज़नी में नहीं।† इसके सिवा पृथ्वीराज के गज़नी में कैद रहने और शाहबुद्दीन को एक तीर द्वारा धराशायी करने के पश्चात् चंद सहित आत्म-हत्या करने की कथा को भी वे अनैतिहासिक और कवि

* अनंद संवत् के अनुसार।

†. In 1192 the Afghans again sweptdown on the Punjab. Prithiviraja of Delhi and Ajmer was defeated & slain. His heroic princess burned herself on his funeral pile.

—W. W. Hunter.

कल्पना बतलाते हैं।* विद्वानों के उपरोक्त मतभेद के कारण तथा यथेष्ट सामग्री के अभाव से तथ्यातथ्य का निरूपण करना कठिन है। फिर भी यदि इतिहासकारों का यह मत कि 'पृथ्वीराज का स्वर्गवास वि० सं० १२४६ में हुआ था' ठीक है और रासोकार के 'इकदीह उपज, इकदीह समायकम्' आदि शब्दों का यही अर्थ है कि पृथ्वीराज और चन्द एक ही दिन पैदा हुए और दोनों का परलोकवास भी एक ही दिन हुआ। तब तो स्पष्ट ही है कि चन्द की मृत्यु भी वि० सं० १२४९ ही में हुई।

चन्द ने पृथ्वीराज रासो नामक ढाई हजार पृष्ठों का एक बृहद्ग्रंथ बनाया, जिसमें पृथ्वीराज का जीवन चरित्र वर्णित है और ६६ समस्य (सर्ग अथवा अध्याय) में समाप्त हुआ है। कवि ने इसमें छप्पय, दोहा, तोमर, त्रोटक, गाथा आदि प्रायः सभी छंदों का प्रयोग किया है, पर छप्पय की संख्या अधिक और दूसरों की अपेक्षाकृत न्यून है। मीलित वर्णों की बहुलता, छंदोभंग एवं व्याकरण की अव्यवस्था भी रासो में यत्र तत्र दृष्टि-गोचर होती है। चंद की भाषा उस समय की है जब अपभ्रंश का अंत और हिन्दी का विकास हो रहा था। हिन्दी उस समय बाल्यावस्था में थी, नवजात शिशु के रूप में थी। महाकाव्योपेक्षित गूढ़ातिगूढ़ भावों, मनुष्य के अन्तर्भावों के घात-प्रतिघातों, युग की सुसूक्ष्म अनुभूतियों और जीवन के अन्तर्द्वंद्वों को स्पष्टतः अभिव्यक्त करने की ऐसी क्षमता उसमें उस समय न थी जैसी कि आज है, और चन्द का काव्यक्षेत्र-व्यापक था। उन्हें महाकाव्य की रचना अभीष्ट थी। साधन की अपेक्षा उद्देश्य कई गुना अधिक महत् था। अतः उन्हें अन्यान्य भाषाओं का सहारा लेना पड़ा, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज रासो में कन्नौजी शौरसेनी, मागधी, डिंगल, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि शब्दों का विशाल जाल फैला हुआ है। कवि के समय से लगभग सौ वर्ष पहले से पंजाब में मुसलमानों का प्रवेश हो गया था और जीविको-

* A Hindu tale that Prithiviraja was taken to Ghazni, where he shot the Sultan, and was then cut to pieces is false.

पार्जनार्थ वे इधर उधर फैलने भी लग गये थे। अतएव अरबी, फारसी एवं तुर्की के शब्द भी रासों में मिलते हैं। होमर के इलियड, व्यास के महाभारत और तुलसी के मानस की भाँति रासों में भी प्रक्षिप्त अंश जोड़कर लोगों ने इसे भ्रष्ट कर दिया है, पर इससे असली रासो का महत्व कम नहीं होता। चन्द की प्रतिभा फिर भी स्पष्ट ही है। क्योंकि जहाँ भाषा प्राचीन है, चन्द की है, वहाँ रचना-पद्धति अधिक ओजस्विनी, वर्णन अधिक भव्य और कविता अधिक भावपूर्ण है।

चन्द एक महान कवि थे। उनकी कविता वीरोल्लासिनी, सबल एवं काव्यगुण युक्त है। रासों में वीर रस प्रधान तथा शेष रस गौण हैं और जैसा कि महाकाव्य में होना चाहिए संध्या, चन्द्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, वन, ऋतु, संभोग, विप्रलम्भ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश हुआ है। चन्द की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रों का खासा चित्रण रासों में विद्यमान है। कथा का तारतम्य निभाने तथा पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में तो चन्द कुशल थे ही, पर वर्ण्य विषय को साकार रूप दे देने की अद्भुत शक्ति भी उनमें विद्यमान थी। इसलिये जिस विषय को उन्होंने पकड़ा उसका ऐसा साङ्गोपांग, विशद एवं सजीव वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारे सामने आ उपस्थित होता है। वस्तुतः रासों में दृश्य काव्य की सजीवता और महाकाव्य की भव्यता है। एक सर्वोपरि विशेषता जो रासों में देखी जाती है वह है कर्म समारोह की व्यस्तता, पात्रों की क्रियाशीलता। समस्त रासों को पढ़ जाइये उसमें एक भी पात्र ऐसा नहीं मिलेगा जो गनिहीन और अकर्मण्य हो। सभी अपने अपने कार्य में सलग्न हैं। सभी को कुछ और कुछ करना है। अपनी अपनी धुन में मस्त सभी चले जा रहे हैं—कोई सैन्य-शिविर में, कोई रणभूमि में, और कोई राज-दरबार में। यहाँ यदि यह कह दिया जाय कि रासो चन्दकालीन भारत का सवाक् चित्रण है तो भी इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। वास्तव में वह ग्रंथ है ही इस प्रकार का। इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज की विलास-प्रियता, मुसलमानों की धर्मान्धता, बर्बरता एवं अर्थ-लोलुपता रणाङ्गण की हाय-हत्या, राजपूतों की वीरता, उनके उत्कर्ष, उनकी डौल-डोल स्थिति और उनके पतनादि का जैसा मार्मिक, क्षोभपूर्ण, निष्पक्ष एवं

नैसर्गिक वर्णन रासो में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रासो पृथ्वीराज का जीवन चरित्र है। परन्तु वास्तव में है वह हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की अमर कहानी।

चन्द के जीवन चरित्र, उनके पांडित्य, और उनकी काव्य-प्रतिभा का वर्णन ऊपर हो चुका। अब रही रासो के ऐतिहासिक महत्व की बात। इस संबंध में विद्वानों में जो मतभेद है उसका भी थोड़ा सा उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। बात संक्षेप में यह है। कुछ ही वर्षों पहले तक पृथ्वीराज रासो इतिहास की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता था जिसका मुख्य कारण कर्नल टाड थे। इन्होंने अपने इतिहास में रासो की बड़े ऊँचे शब्दों में प्रशंसा की और इसमें वर्णित बहुत सी घटनाओं को सत्य मान कर उन्हें अपने ग्रन्थ में स्थान दिया। * इसी से वह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ समझा जाने लगा और बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने तो उसका थोड़ा थोड़ा अंश अपनी ग्रंथ-माला में भी निकालना शुरू कर दिया। इसी समय उदयपुर के कविराजा श्यामलदान और जोधपुर के कविराजा मुरारीदान ने यह कहकर कि रासो एक जाली ग्रंथ है और संवत् १६४० से १६७० के बीच में इसकी रचना हुई है, संदेह उत्पन्न कर दिया। परन्तु रासो एक अग्रज विद्वान द्वारा प्रशंसित हो चुका था। इसलिये इनके कथन पर किसी ने विशेष ध्यान न दिया। इसी अर्थ में प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डाक्टर बूलर को पृथ्वीराज के समकालीन कवि जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' नामक संस्कृत महाकाव्य की भोजपत्र पर लिखी हुई एक प्राचीन प्रति काश्मीर में मिली। इसका अध्ययन करने पर डा० बूलर को मालूम हुआ कि जयानक सचमुच ही पृथ्वीराज का राजकवि था और उसके रचे महाकाव्य

* The wars of Prithivi Raj, his alliances, his numerous & powerful tributaries, their abodes and pedigrees make the work of Chund invaluable as historic and geographical memoranda, besides being treasures in mythology, manners and the annals of the mind.

—*Annals and Antiquities of Rajasthan.*

में वर्णित घटनाएँ उस समय के शिला-लेख आदि से भी शुद्ध ठहरती हैं। अपने इस खोज की सूचना डा० बूलर ने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी को भी दी जिससे पृथ्वीराज रासो का आगे प्रकाशित होना बंद हो गया।

इधर अपने मत का समर्थन होते देख कविराजा, श्यामलदान का भी साहस बढ़ा और उन्होंने 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' नामक एक छोटी सी पुस्तक लिखी, (सं० १९४३) जिसमें उन्होंने अपने पूर्व कथित मत का विस्तार के साथ मण्डन किया। इसके उत्तर में विष्णुलाल पंड्या ने 'रासो की प्रथम संरक्षा' नाम की एक पुस्तक (सं० १९४४) की रचना की। इसमें उन्होंने रासो की घटनाओं को इतिहास-सम्मत बतलाया और इस बात पर ज़ोर दिया कि उसमें वि० सं० का नहीं, बल्कि एक सवत विशेष अर्नद संवत, का प्रयोग हुआ है और उसमें ६०/६१ वर्ष जोड़ देने से शास्त्रीय विक्रम संवत निकल आता है। साथ ही पंड्याजी ने यह भी कहा कि रासो का रचयिता जाति का भाट था, इसलिये जातीय द्वेष के कारण श्यामलदान जी ने यह भूढ़ा भगड़ा उठाया है। कई वर्षों तक यह दाँता किटकिट होती रही, पर सार कुछ भी न निकला। अंत में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय पंडित गौरीशङ्कर हीराचंद जी ओझा ने इस विषय को अपने हाथों में लिया और जयानक के पृथ्वीराज विजय, शिलालेख आदि द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि न तो रासो, जैसा कि कुछ लोग मान बैठे हैं, इतिहास का खजाना है और न उसकी रचना पृथ्वीराज के राजत्व काल में हुई है। अर्नद विक्रम संवत् की कल्पना को तो आपने बिलकुल ही व्यर्थ और निर्मूल बतलाया।* कविराजा श्यामलदान ने रासो का रचना-काल सं० १६४० से सं० १६७० के बीच में माना था, पर ओझा जी ४० वर्ष आगे बढ़े और यह फ़ैसला दिया कि सं० १५१७ और १६४२ के बीच अर्थात् सं० १६०० के आस-पास इसकी रचना हुई है।† कहना न होगा कि कविराजा श्यामलदान आदि की अपेक्षा ओझा जी के लेख अधिक गवेषणात्मक, उनकी उक्तियाँ अधिक

* ना० प्र० प० ; भाग १, पृ० ३७७-४५४

† ओझा; कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ६२.

सन्तोषजनक तथा उनके प्रमाण अधिक सबल थे । परिणाम यह हुआ कि रासो सम्बन्धी इस वादविवाद में दिलचस्पी लेने वालों के अब मुख्यतः दो दल हो गये हैं । जो लोग इतिहास ही को सत्य की कसौटी समझते हैं, वे ओझा जी के निर्णय को अक्षरशः ठीक मानते हैं, पर जो सेंटिमेंटल हैं और अतीत के अंधकार में मार्ग ढूँढने के लिये इतिहास ही को अपना एक मात्र पथ-प्रदर्शक तथा ज्योति-स्तम्भ नहीं समझते, वे ओझा जी के मत को सन्देहास्पद बतलाते हैं । पंडित जी की दलीलों को काट तो ये लोग नहीं सकते । पर दबी ज़बान से इतना अवश्य कह देते हैं कि रासो में थोड़ा सा अंश चन्द का भी लिखा हुआ है ।

इस प्रसंग में एक बात हमें भी कहनी है । वह यह कि इतिहास की दृष्टि से ओझा जी ने रासो की बहुत अच्छी परीक्षा की, पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से आपने उस पर बहुत कम प्रकाश डाला है । आपका कहना है—“भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रंथ प्राचीन नहीं दीखता । इसकी डिंगल भाषा में जो कहीं कहीं प्राचीनता का आभास होता है वह डिंगल की विशेषता ही है । आज की डिंगल में भी ऐसा आभास मिलता है जिसका २०वीं सदी में बना हुआ वंशभास्कर प्रत्यक्ष उदाहरण है ।”* डिंगल की विशेषता के सम्बन्ध में पण्डित जी का यह कथन ठीक है । वस्तुतः डिंगल भाषा में यह विशेषता पाई जाती है, और आजकल जो ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रचलित है उसके अधिक भाग की भाषा इतनी विकृत तथा रूपान्तरित हो गई है कि उसे देख कर कोई भी समस्त रासो को १३वीं शताब्दी की रचना नहीं कह सकता । पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उसमें ऐसे अंशों का भी सर्वथा अभाव नहीं है जिनकी भाषा पृथ्वीराज के समय की भाषा सिद्ध न हो सके । उदाहरण-स्वरूप नीचे लिखी कविता की भाषा को देखिये । इस को देखकर भी यदि कोई यह कहे कि यह सं० १६०० के आसपास की भाषा का नमूना है तो इसका मतलब यही है कि वह भाषा-विज्ञान के नियमों का गला घोटने को कटिबद्ध है:—

कहै साह हुसेन । सुनौ चहुआन जुझू बत ।
 आज सीस तुम कज्ज । सेन साहब खँडौ खत ॥
 मो कजे साहस । करिग पृथिराज सरन भ्रम ।
 हौं उज डंसू अज्ज । करौं राजन अकथ क्रम ॥
 जंपै सुराज पृथीराज तब । कहा अचिज्ज जंपौ तुमह ।
 अप्पौं सुछत्र गज्जन पुरह । सद्धि सेन साहाब गह ॥

जो हो, सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये आज न महाराज पृथ्वीराज हैं, और न चन्द बरदाई । इसलिये हम जो चाहें कह सकते हैं । इसमें कोई विशेष हानि भी नहीं है । हाँ, यदि दुख है तो केवल इस बात का कि रासो में वर्णित घटनाओं को इतिहास की कसौटी पर कसने के फेर में पड़कर हम अपने मूल पथ से इतने भटक गये हैं कि इसके वास्तविक महत्व को, काव्य सम्बन्धी गुणों को हमने भुला दिया है और यह है चन्द के प्रति हमारा अन्याय !

चन्द की कविता के दो-एक नमूने देखिये :—

मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय ।
 बालब्रेस ससिता समीप, अन्नित रस पिन्निय ॥
 बिगसिकमल म्रिग भ्रमर, बैन खंजन मृग लुट्टिय ।
 हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिख अहि घुट्टिय ॥
 छत्रपति गयंद हरि हंस गति, विह बनाय संचै सचिय ।
 पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु कांम कामिनि रचिय ॥

कुट्टिल केस सुदेश, पौह परचियत पिक्क सद ।
 कमल गंध वय संध, हंस गति चलत मंद मद ॥
 सेत वख सोहै सरीर, नख स्वाति बुंद जस ।
 भमर भँवहि भुल्लहि, सुभाव मकरदं वास रस ॥
 नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सदिन मूरति रचिय ।
 उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥

अरुण किरण परसंत, आइ पहुँच्यौ रयसल्लं ।
 बज्जे वान विहंग, जानि जुट्टा दोइ मल्लं ॥
 संमाही आजान, तेग मानहु हवि दिट्ठिय ।
 जानि लिखर मफि वोज, कंध रैसल्लह बुट्ठिय ॥
 लोहान तनो बज्जे लहरि, कोउ हल्ले कोउ उत्तरै ।
 परनाल रुधिर चल्ले प्रबल, एक घाव एकह मरै ॥

सरसकाव्य रचना रचौ, खल जन सुनि न हसंत ॥
 जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसंत ॥१॥
 पूरन सकल विलास रस, सरस पुत्र फलदान ॥
 अंत होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान ॥२॥
 जस हीनो नागौ गिनहु, ढँक्यो जग जसवान ।
 लंपट हारै लोह छन, त्रिय जीते बिन बान ॥३॥
 पर योपित परमै नहीं, ते जीते जग बीच ।
 परतिय तक्कत रैन दिन, तेहारे जगनीच ॥४॥

(६) जल्हण—पृथ्वीराज रासो के अनुसार ये चंद वरदाई के चतुर्थ पुत्र थे और अपने दस भाइयों में सबसे अधिक गुणवान तथा प्रतिभा-सम्पन्न थे । रासो में चंद ने अपने सभी पुत्रों को 'सुन्दर रूप सुजान' बतलाया है पर जल्हण के लिये 'इक जल्हण गुण बावरो, गुन समंद ससिमान' लिखकर उसकी विशेष रूप से प्रशंसा की है । इससे विदित होता है कि चंद जल्हण की प्रतिभा पर मुग्ध थे, और यही कारण था कि जब वे पृथ्वीराज को शाहबुद्दीन की क़ैद से छुड़ाने के लिये गजनी जाने को उद्यत हुए तब अपूर्ण रासो अपने सबसे बड़े पुत्र सूर को न देकर उन्होंने जल्हण ही को सौंपा था और उसी ने उसे पूरा भी किया । कहा जाता है कि निम्नांकित दोहे के पीछे जो रासो में वणन है वह जल्हण ही का लिखा हुआ है:—

आदि अंत लगि वृत्ति मन, ब्रजि गुनी गुनराज ।

पुस्तक जल्हण हथ्य दै, चले गजजन नृप काज ॥

जिस समय चंद गजनी जाने के लिये घर से रवाना हुए उन्हें यह आशा न थी कि अपने स्वामी को बंधन से मुक्त कराने के प्रयत्न में उन्हें अपने

जीवन से हाथ धोना पड़ेगा और रासो असमाप्त ही रह जायगा। अतः रासो को जल्दहण के हाथ में दे देने के सिवा उस समय चंद ने जल्दहण को कुछ भी नहीं कहा। न जल्दहण ने ही कोई प्रश्न किया। परन्तु जब चन्द और पृथ्वीराज का राजनी में देहापात होगया और दोनों के अंत समय की कथा कहानी जल्दहण ने सुनी, उन्हें मर्मान्तक व्यथा हुई और साथ ही अपने उत्तर-दायित्व का भी खयाल आया। उन्हें अब मालूम हुआ कि रासो को सम्पूर्ण करने का महत्वपूर्ण कार्य उन्हीं के कंधों पर है। अपने रचे हुए अंशों में चन्द क्या, कहाँ और कितना परिवर्तन करना चाहते थे इत्यादि बातों का अत तो उन्हीं के साथ होगया। परन्तु एक अपूर्ण अथवा अप्रकाशित ग्रंथ में हेर-फेर की गुंजाइश रहती है। इसलिये संभव है, कि रासो को समाप्त करने के अतिरिक्त अपने पिता के लिखे हुए अंशों में भी जल्दहण ने अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार न्यूनाधिक परिवर्तन किया हो।

पृथ्वीराज रासो के विवरण को समाप्त तथा संस्कृत करने के सिवा भी जल्दहण ने कुछ लिखा था अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु वे एक सुकवि थे। इसलिये संभावना तो यही है कि उन्होंने दो एक ग्रंथ और भी रचे होंगे, जो या तो अतीत के अतल अंधकार में विनष्ट होगये या चारण-भाटों की गठरियों में बचे हुए अपने भाग्य, रचयिता की लेखनी और संसार की गुणग्राहिता को कोस रहे होंगे। परन्तु जल्दहण लिखित जितना भी अंश प्राप्त हुआ है, उससे स्पष्ट भासित होता है कि वे एक सहृदय कवि थे। उनकी रचना, विद्वत्ता, काव्य दक्षता, एवं साहित्य-मर्मज्ञता से भरपूर है। चंद जैसी प्रौढ़ता और गंभीरता तो उनमें नहीं पाई जाती, पर ओज दोनों में समान है। भाषा चन्द की अपेक्षा जल्दहण की अधिक सरल तथा व्यवस्थित है। इनकी कविता इस तरह की है :—

कहै खान तत्तार, भट्ट करि दूक रज्ज सम ।
मैं द्विग देखत कहि भट्ट, दुष्ट देखिये काल भ्रम ॥
धरौ साहि अब गौरि, बिनै साहाब चरन लागि ।
चंदराज बर घेरि, लोह छुटै न अंग लागि ॥

छुरिका कविन्द जट मभूक्त थी, कटि मट्ट कटि सीस अप ।
 ता पछै चंद बरदायने, दइय राज बरहत्थ त्रप ॥
 मरन चंद बरदाइ, राज पुनि सुनिग साहि हनि ।
 पुहुपंजलि असमान, सीस छोड़ी सुदेवतनि ॥
 मेघ अवद्धित धरनि, धरबि सब तीय सोह सिग ।
 तिनहि तिनहि संजोति, जोति जोति हि संपातिग ॥
 रासो असंभ नव रस सरस, चंद छंद किय अमिय सम ।
 शृङ्गार, वीर, करुना, बिभछ, भय अद्भुत हसंत सम ॥

(७) नल्लसिंह भाट—इनका भी विशेष वृत्त ज्ञात नहीं। इनके रचे विजयपाल रासो से केवल इतना ही सूचित होता है कि ये विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी राजा विजयपाल के आश्रित थे, और उनकी कीर्ति को अनुकरण रखने के अभिप्राय से इन्होंने यह ग्रन्थ लिखा, जिससे खुश होकर उक्त महाराज ने इन्हें सात सौ गाँव, हाथी, घोड़े, रत्नादि पुरस्कार में दिये थे। विजयपाल रासो का थोड़ा सा अंश उपलब्ध हुआ है। इनमें सिद्धराव नामक किसी राजा के साथ विजयपाल की लड़ाई का वर्णन है। इस युद्ध का संवत् कवि ने १०६३ बतलाया है। ग्यारहवीं शताब्दी में करौली पर विजयपाल नाम के एक प्रतापी राजा हुए, जिनका करौली के सिवा उसके आसपास के अलवर, भरतपुर, धौलपुर, मथुरा आदि के कुछ विभागों पर भी आधिपत्य था, यह बात इतिहास से भी सिद्ध होती है।* परंतु मंडोवर, ढूंढाड़, अजमेर, दिल्ली आदि स्थानों पर विजयपाल का एकाच्छन्न राज्य होने की जो बात नल्लसिंह ने लिखी है, वह इतिहास विरुद्ध और अतिरंजना है। मालूम होता है कि विजयपाल रासो बहुत पीछे की रचना है। भाषा, शैली आदि से भी वह इतना प्राचीन प्रतीत नहीं होता। अनुमानतः वि० सं० १३५५ के लगभग इसकी रचना हुई होगी। विजयपाल रासो की भाषा प्राकृत-अपभ्रंश का संमिश्रण है और वीर इस का उसमें अच्छा परिपाक दृष्टिगोचर होता है। इनकी कविता का नमूना देखिये :—

* The ruling Princes, Chiefs, and leading Personages in Rajputana & Ajmer, (Sixth Edition), P. 115.

जुरे जुध यादव पङ्ग मरह, गहोकर तेग चढ़्यो रणमह ॥
 हकाखि जुद्ध दुहं दल शूर, मनौ गिरि शीस जल थरि पूर ॥
 हलौ हिल हांक बजी दल मद्धि, भई दिन ऊगत कूक प्रसिद्धि ।
 परस्पर तोप वहैं विकराल, गजैं सुर भुम्भि सरग पताल ॥
 लगैं वर यन्त्रिय छत्तिय शुद्ध, गिरैं भुवभार अपार विरद्ध ।
 वहैं भुववानं ढप्यो असमान, खयञ्चर खेचर पावै न जान ॥
 वहैं कर मायक यायक जङ्ग, लखैं विप आशिय पासिय अङ्ग ।
 वहैं भिड़ पालक पाल लगन्त, उड़े शिर ढीव धरन्नि पतङ्ग ॥
 वहैं कर संकुल शीस निसार, परैं विकराल वेंवार सुमार ।
 वहन्त गुरज्जग हन्त मरह, भये शिर चून विखून गरह ॥
 मुदगार मार वहैं विकराल, लटक्कत भुम्भि फटन्त कपाल ।
 वहैं कर कत्तिय मत्तिय मार, गिरैं धर मध्य प्रसिद्धि जुभार ॥
 लगैं उर सांगि सुकंगल पार, लटक्कत शूर चटक्क कुठार ।
 लगैं किरवान सुकन्द कुतार, कटै वरह डुजनेनु उतार ॥
 लगैं खपुवा जमडाड सुमार, किधौ खिरकी दिय छुट्टत द्वार ।
 वहैं कर खञ्जर पञ्जर भीर, मनौ मत बात करै मुड चीर ॥
 वहैं कर रञ्जक गञ्जक हाल, निकस्सत वंविथ फोरि सुव्याल ।
 कटक्क कुटन्त गिरन्त कपाल, खटक्कत खागचलैं रत खाल ॥
 गटक्कत गोठिय गिद्धनि गाल, छुटक्कत जुग्गीनि घुण्ड कपाल ।
 नदन्निमि नाचय सांवत नाच, चटक्कत चुरिकि रञ्जत आँच ॥

(८) सिवदास चारण—ये गागरोन गढ़ (कोटा राज्य) के राजा अचलदास खीची के आश्रित थे । इन्होंने 'वचनिका अचलदास खीचीरी' नामक एक ग्रंथ सं० १४७० के आसपास बनाया, जिसकी एक प्रति बीकानेर के राज पुस्तकालय में विद्यमान है ।* इसमें माझ (मालवा) के पातसाह के साथ अचलदास के युद्ध का वर्णन है । अपने आश्रयदाता के शौर्य-वर्णन में कवि ने कहीं कहीं अत्युक्ति से काम लिया है और बहुत सी इतिहास

*Dr. L. P. Tessitori; A. Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Mss. Sec. II, Bardic Poetry Pt. I. Bikaner State. P. 41,

विरुद्ध बातें भी लिख डाली हैं। इसलिये इतिहास की दृष्टि से तो यह ग्रंथ महत्वपूर्ण नहीं ठहरता। परन्तु भाषा और कविता के विचार से यह रचना बहुत सुन्दर और चमत्कारपूर्ण बन पड़ी है। वचनिका की वर्णन शैली रुढ़ि बद्ध और प्राचीन ढंग की अवश्य है, पर भावाभिव्यक्ति फिर भी कहीं-कहीं ऐसी सरल तथा तलस्पर्शिणी हुई है कि पढ़ते ही मन मुग्ध हो जाता है। उदाहरण—

एकड़ वन वसंतड़ा, एवड़ अंतर काय ।
सिंघकवड्डी ना लहै, गयवर लाख बिकाय ॥
गयबर गळे गळथियो, जहँ खँचै तहँ जाय ।
सिंघ गळथण जे सहै, तो दह लाख बिकाय ॥

सातल सोम हमीर, कन्ह जिम जोहर जालिय ।
चढिय खेत चहवांण, आदि कुलवट उजालिय ॥
मुगत चिहुर सिरि मंडि, वपि कंठि तुलसी वासी ।
भोजा उति भुज बलहिं, करिहिं करिमर कालासी ॥
गढ़ि खंडि पड़ंती गागुरणि, दिढ़ दाखे सुरिताण दल ।
संसारि नांव आतम सरगि, अचलि बेवि कीधा अचल ॥

(४) सूजो नगराजोत—ये बीठू खांप के चारण थे। बीकानेर के राव जइतसी के कहने से इन्होंने ‘राउ जइतसी रउ लुंद’ नामक ग्रंथ की रचना सं० १५६१ और १५६८ के बीच में किसी समय की थी। इसमें बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान और राव जइतसी की लड़ाई का वर्णन है। कामरान काबुल और पंजाब का हाकिम था और इस युद्ध में पराजित हुआ था। जइतसी और कामरान के इस संघर्ष का उल्लेख किसी मुसलमान इतिहासकार के ग्रंथ में नहीं मिलता। पर सूजो ने इसका बहुत ही पूर्ण और पुरस्ता वर्णन किया है, जिससे इतिहास की दृष्टि से भी इस ग्रंथ की महत्ता बहुत कुछ बढ़ गई है। ‘राउ जइतसी रउ लुंद’ में कोरा युद्ध वर्णन ही नहीं है, बल्कि जइतसी के पिता लुणकरण और दादा बीकाजी के शौर्य, साहस तथा रण-कौशल आदि पर भी सविस्तर प्रकाश डाला गया है। समस्त ग्रंथ में

कुल मिलाकर ४०१ छन्द हैं, और गाहा, पावड़ी, दूहा और कलस इन चार प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा शुद्ध डिंगल, लेखन शैली सजीव तथा वर्णन ओजपूर्ण है और 'बयण सगाई' का निर्वाह बड़ी कट्टरता से किया गया है।

इनकी कविता का थोड़ा सा अंश यहाँ दिया जाता है :—

रउद्द दल रहच्चइ जइत राउ, होहू कि मेह बाजइ हलाउ ।
 ताइयाँ उरे घइ कूँत तेह, मारुअउ राउ मातउ कि मेह ॥
 धवहइइ दोल धूजइ धरत्ति, पड़ियाळगि वरसइ खेइपत्ति ।
 बीका हर राजा ईँद वग्गि, खाफराँ सिरे खिविया खइग्गि ॥
 पतिसाह फउज फूटन्ति पालि, ब्रह्मंड जइत गाजइ विचाळि ।
 अम्बहर जइत वरसइ अवार, धुइकिया मोर मुहि खग धार ॥

तीसरा अध्याय



(मध्य काल)

आदि काल के कवियों में बहु संख्या चारण-भायों की थी जो कविता द्वारा अपनी उदर-पूर्ति करते थे और अपने आश्रय दाताओं के कीर्ति-कथन को अपनी काव्य-रचना का मुख्य उद्देश्य समझते थे। उनकी रचना में भटैती का प्राधान्य होना था और कविता वास्तविक कवित्व से कोसों दूर थी। परन्तु, कुछ तो राजनैतिक और कुछ धार्मिक कारणों से मध्यकाल में राज-स्थान की इस काव्य धारा के विरुद्ध प्रतिवर्त्तन होना शुरू हुआ जिससे कविता के विषय बदलने लगे और राजाश्रित कवियों के सिवा अन्य जातियों के लोगों ने भी कविता करना शुरू किया। इनमें मीराबाई, अग्रदास तथा पृथ्वीराज मुख्य थे।

(१) मीराबाई—मीराबाई मेड़ते के राठोड़ राव दूदा जी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थी। रत्नसिंह के निर्वाह के लिये दूदा जी ने उन्हें बाजोली आदि बारह गाँव दिये थे, जिनमें से कुड़की भी एक था। इसी कुड़की नामक गाँव में मीरा का जन्म वि० सं० १५५५ (ई० सं० १४६८) के आसपास हुआ।* इनके माता-पिता के और कोई भी संतान न थी। इसलिये वे अपनी इकलौती कन्या मीरा का बड़े प्रेम से लालन पालन करते थे। मीरा की माता धार्मिक

विचारों की एक भक्त महिला थी। मूर्ति-पूजा और पूजापाठ पर उनका अटल विश्वास था। माता की धार्मिक वृत्तियों का प्रभाव बालिका मीरां पर भी पड़ा, और ऐसा पड़ा कि वह जन्म भर दूर न हुआ। मीरां की बाल्यावस्था के सम्बन्ध में कई जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि एक दिन इनके घर पर एक साधु आया। उसके पास भगवान की एक सुन्दर मूर्ति थी। दो चार दिन के बाद जब वह साधु जाने लगा, तब मीरां ने वह मूर्ति उससे लेनी चाही। मूर्ति बहुत सुन्दर थी और साधु बहुत दूर से उसे अपने साथ लाया था, इसलिये वह उसे देना नहीं चाहता था। साधु की इच्छा मूर्ति देने की न देख मीरां ने रोना-भगड़ना शुरू किया, जिससे विवश हो वह मूर्ति उसे दे देनी पड़ी। मूर्ति देते समय साधु ने मीरां से कहा—“ये भगवान हैं, गिरिधरलाल हैं; तू प्रतिदिन इनकी पूजा किये करना”। इस समय मीरां की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। उसी दिन से खेल-कूद और सखी-सहेलियों को छोड़कर वह सच्चे मन से भगवान की सेवा में लग गई। अब से उसका अधिक समय भगवान की मूर्ति के नहलाने, उस पर चन्दन-पुष्प चढ़ाने और सजाने में व्यतीत होने लगा। माता से ईश्वर भक्ति के दो एक पद मीरां ने इस समय तक सीख लिये थे। उन्हीं को गा गा कर वह गिरिधरलाल को रिझाने लगी।

अपना सुनहला शैशव-काल भी जननी की पवित्र गोद में पूरी तरह से न बिता पाई थी कि मीरां की माता इस असार संसार से चल बसी। अतः एव राव दूदाजी ने इन्हें कुड़की से अपने पास मेड़ते में बुला लिया, और वहीं इनका पालन-पोषण हुआ। परन्तु दूदाजी भी अधिक दिन तक जीवित न रहे। वि० सं० १५७२ (सन् १५१५) में इनका स्वर्गवास हो गया। * दूदाजी के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव मेड़ते के स्वामी हुए। उन्होंने मीरा का विवाह राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ कर अपनी ज़िम्मेदारी से छुट्टी ली। पर दैव से यह भी ठण्डे दिल से न देखा गया। प्राख्य ने फिर ठोकर मार दी। विवाह के कुछ ही वर्ष बाद भोजराज का भी देहावसान होगया। इधर इनके पिता रत्नसिंह राणा

सांगा की ओर से लड़ते हुए खानवा के युद्ध में काम आये। अब मीरां के लिये न कोई पीहर में था, न ससुराल में। सुनसान जंगल में बैठी हुई एक निराश्रय हरिणी की तरह वह अकेली राजमहलों में अपने दिन काटने लगी। चारों ओर संकट ही संकट देख मीरा ने भगवान की शरण ली; बचपन के साथी गिरिधरलाल का आश्रय लिया। मीरां की ईश्वर-भक्ति की धारा जो इतने दिनों तक सूदम एवं संकुचित रूप से बह रही थी, अब कुछ चौड़ी, कुछ वेगशील होकर प्रवाहित होने लगी। एक बंद कमरे में बैठ वह गिरिधरलाल की मूर्ति की पूजा करती और ईश्वर भक्ति में लीन होकर अपने आप को भूल जाती थी। ध्यानावस्था में कभी कभी उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती और शरीर पर पुलकावलि छा जाती थी। प्रेमोन्मत्त हो वह कभी हँसती, कभी नाचती और कभी मधुर, ऊँची एवं दर्द भरी तानमें गाने लगती थी। उसे न खाने पीने का ध्यान रहता और न सोने-ओढ़ने का। कभी-कभी तो तीन चार दिन बिना अन्न-जल के व्यतीत हो जाते थे।

मीरां की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई ईश्वर भक्ति की चर्चा शनैः शनैः चारों ओर फैल गई और चित्तौड़ देखने के बहाने से साधु-सन्त और यात्री मीरां के दर्शन के लिये आने लगे। महाराणा सांगा का गोलोकवास इस समय तक हो चुका था और मेवाड़ के सिंहासन पर विक्रमादित्य विद्यमान थे। मीरां का साधु-समागम और भजन-कीर्तन उन्हें पसंद न आया, और भाँति-भाँति की यातनाएँ देने लगे। इन कष्टों के सहने में मीरां ने भी अपनी असीम सहनशीलता और अनुपम भगवद्भक्ति का परिचय दिया। कहते हैं कि राणा ने विप का प्रयोग भी किया था* परंतु मीरां की भगवद्भक्ति का अन्त फिर भी न हुआ। मीरां के साथ किये गये दुर्व्यवहारों की खबर जब वीरम देव के पास मेड़ते पहुँची, तो उन्होंने उसे अपने पास बुला लिया। पर मीरां के भाग्य में सुख कहाँ था? वह मुश्किल से दो चार दिन वहाँ रही होगी कि जोधपुर के अधिपति राव मालदेव और वीरमदेव के बीच भगड़े उठ खड़े हुए और एक दिन के लिए भी वह आराम से मेड़ते में न रह सकी। जैसे जैसे मीरां ने दो चार महीने मेड़ते में व्यतीत किये। परंतु बाद में जब

* ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ० ६७२

राव मलदेव ने वीरसदेव को हरा कर मेड़ता छीन लिया, तब वह तीर्थ यात्रा के लिये निकल पड़ी और मथुरा बृन्दावन आदि तीर्थ स्थानों में होती हुई द्वारकापुरी में जाकर रहने लगी। यहीं वि० सं० १६०३ में इनका स्वर्गवास हुआ। १ भक्तों में प्रसिद्ध है कि अंत समय में मीरां ने यह पद गाया था २:—

साजन सुध ज्यूं जाने त्यूं लीजे हो ॥ १ ॥

तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे हो ॥ २ ॥

दिवस न भूख रैन नहिं निद्रा यूँ तन पल पल छीजे हो ॥ ३ ॥

मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर मिल बिछुरन नहिं कीजे हो ॥ ४ ॥

मीरां केवल भक्त ही न थी, वह कवि भी थी। फुटकर पदों के अतिरिक्त इनके रचे तीन ग्रन्थ भी बताये जाते हैं। नरसी जी रो माहेरो, राग गोविन्द और गीत गोविन्द की टीका। अन्तिम दो ग्रंथों का तो पता नहीं, पर नरसी जी रो माहेरो हाल ही में उपलब्ध हुआ है। यह ग्रन्थ पदों में है और मीरां की मिथुला नामक सखी को संबोधित करके लिखा गया है। ३ मीरां के पदों का भारतवर्ष में पुष्कल प्रचार है, विशेषतः राजस्थान, गुजरात और बंगाल में। परंतु आजकल मीरां के नाम से जो पद प्रचलित हैं उनमें बहुत से प्रक्षिप्त हैं और यही कारण है कि हमें कहीं भाषा-भिन्नता, कहीं विचार भिन्नता और कहीं भाव भिन्नता दीख पड़ती है। भाषा मीरां की राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है, जिसमें गुजराती की विशेषताओं के साथ साथ पंजाबी, खड़ी बोली और पूरबी का रंग भी यत्र तत्र लगा हुआ है।

मीरां की कविता में भक्ति भाव का अन्तर्पट है और उसके प्रधान गुण हैं—सरलता, लालित्य एवं तल्लीनता। साहित्यिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो मीरां की कविता कोई बहुत ऊँची नहीं है। परन्तु सरल, सरस, स्वाभाविक, भक्ति एवं भावपूर्ण होने से एक भक्त हृदय को सुग्ध करने में

१ हरबिलास सारङ्गा, महाराणा साँगा, पृ० ६६

२ मुंशी देवीप्रसाद, मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृ० २९

३ नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०; मीरां मंदाकिनी, पृ० १० (प्रस्तावना)

वह फिर भी अप्रतिम है। कृष्ण भक्ति में हिन्दी के होमर, अंधे कवि सुरदास की तुलना किसी दूसरे से नहीं हो सकती। सूर सचमुच ही हिन्दी साहित्याम्बर के सूर हैं। सूरसागर में प्रेमरस की एक तरह से बाढ़ आगई है और गोपियों तथा यशोदा के मुख से जो पद सूर ने कहलाये हैं उनमें उन्होंने नारी हृदय का ऐसा मधुर, मनोवैज्ञानिक तथा कलापूर्ण विश्लेषण किया है कि सुख ही हो जाना पड़ता है। सख्या भी सूर के पदों की कम नहीं—सवालाख है। पर इतना होते हुए भी मीरा के पदों में जो रस है, मीठा सा दर्द है, वह उनमें भी नहीं आ पाया है। कविता क्या की है, कवयित्री ने हृदय हाँ बाहर निकाल कर रख दिया है :—

“जाओ हरि निरमोहद्वारे, जाणी थॉरी प्रीत”
 “म्हारो जनम, मरण रो साथी, थॉने नहिं बिसरूँ दिनराती”
 “म्हाँरे सिर पर सालिंग राम, राणा जी म्हारो काई करसी”
 “राणा जी म्हाने या बदनामी लागे मीठी”
 “आवत मोरि गलियन में गिरधारी, में तो छुपगई लाजकी मारी”
 क्या करूँ मैं बन मैं गई, घर होती तो श्याम कुं मनाई लेती”

मीरा की उपासना दम्पति-भाव की थी। अतएव इनकी कविता में भक्ति और शृङ्गार दोनों का सम्मिलन स्वाभाविक है। परन्तु मीरा का शृङ्गार लौकिक नहीं, अलौकिक है। उसमें न तो विद्यापति की सी अश्लीलता है, न सूर की सी उच्छृङ्खलता और न बिहारी की सी मादकता। मीरा का शृङ्गार पवित्र है और पवित्रता के साथ साथ उसमें अनन्त, शाश्वत तथा निर्मल प्रेम की अनोखी भाँकी है। सभी सम्प्रदाय, सभी धर्म एवं सभी मनोवृत्तियों के पाठकों से मीरा की कविता समान रूप से आहत है। इस-लिए नहीं कि मीरा स्त्री थी। इसलिए भी नहीं कि मीरा का जन्म यशःपूत एक राठोड़ कुल में हुआ था। बल्कि इसलिये कि मीरा की कविता ही सच्ची कविता है, कवि-हृदय की यथार्थ अनुभूति है। मीरा के शब्दों में चोट है, भाव-प्रवण व्यथा है, घायल करने की शक्ति है, जिसे हम प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य के बड़े बड़े कवियों की विश्व विश्रुत रचननाओं में टटोलते फिरते हैं—पर पाते नहीं हैं।

इनके दो-एक पद देखिये :—

राणाजी मैं गिरिधर रे घर जाऊँ ।
 गिरिधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ॥१॥
 रैन पड़े तब ही उठ जाऊँ, भोर भये उठ आऊँ ।
 रैन दिना वाके सँग खेलूँ, ज्यों रीझे ज्यों रिझाऊँ ॥२॥
 जो वस्त्र पहिरावे सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ ।
 मेरे उनके प्रीत पुरानी, उन बिन पल न रहाऊँ ॥३॥
 जहँ बैठावे जितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ ।
 जन मीरा गिरधर के ऊपर, बार बार बलि जाऊँ ॥४॥
 हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाणे कोय ॥टेक॥
 सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय ॥
 गगन मँडल पे सेज पिया की, किस विध मिलणा होय ॥१॥
 घायल की गत घायल जानै, की जिन लाई होय ॥
 जौहरी की गत जौहरी जाने, की जिन जौहर होय ॥२॥
 दरद की मारी वन वन डोलूँ, बैद मिल्या नहि कोय ॥
 मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय ॥३॥
 तेरा कोइ नहि रोकनहार, मगन होय मीरां चली ॥टेक॥
 लाज सरम कुलकी मरजादा, सिर से दूर करी ।
 मान अपमान दोऊ धर पटके, निकली हूँ ज्ञान गली ॥१॥
 ऊँची अटरिया लाल किंवडिया, निरगुण सेज बिछी ।
 पचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ॥२॥
 बाजूबंद कडूला सोहै, माँग सेदूर भरी ।
 सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधिक भली ॥३॥
 सेज सुखमण मीरां सोवे, सुभ है आज घरी ।
 तुम जावो राणा घर अण्णे, मेरी तेरी नाहि सरी ॥४॥

(२) अग्रदास—ये जयपुर राज्यान्तर्गत गलता नामक स्थान के रहने वाले थे और प्रसिद्ध वैष्णवभक्त कृष्णदास जी पयाहारी के २५ शिष्यों में मुख्य थे ।

इनके शिष्य नाभा दास कृत भक्तमाल के आधार पर कुछ लोगों ने इनका रचना काल सं० १६३२ के आस पास माना है, जो ठीक ही प्रतीत होता है। अग्रदास भगवान राम के उपासक थे। इन्होंने वैष्णव शाखा के आचार्य रामानुज प्रतिपादित रामभक्ति संबन्धिनी कविता अधिक लिखी है। इनकी कविता सद्भावोत्पादक एवं विचार सौन्दर्य से पूर्ण है और सरल वर्णन शैली के सहारे इन्होंने अत्युच्च साधना की बातें कही हैं, जो मानव हृदय में आध्यात्मिक स्फूर्ति का संचार करती है। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) श्रीराम भजन मंजरी (२) पदावली (३) हितोपदेश भाषा (४) उपासना वावनी (५) ध्यान मञ्जरी (६) कुंडलियाँ (७) अष्ट-याम (८) अग्रसार और (९) रहस्यत्रय, उदाहरण:—

रघुवर लागत हैं मोहि प्यारो ॥ टेक ॥
 अवधपुरी सरयू तट विहरैं, दशरथ प्राण पियारो ॥१॥
 क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल, पीतांबर पटवारो ॥
 नयन विशाल माल मोतियन की, सखि तुम नेक निहारो ॥२॥
 रूप स्वरूप अनूप बनो है, चित से टरत न टारो ॥
 माधुरि मूरति निरखो सजनी, कोटि भानु उजियारो ॥३॥
 जानकि नायक सब सुख दायक, गुणगण रूप अपारो ॥
 अम्र अली प्रभु की छबि निरखे, जीवन प्राण हमारो ॥४॥

नदी किनारे रूखा जब कब होइ विनास ।
 जब कब होइ विनाश देह कागद की छागर ॥
 आयु घटै दिन रैन सदा आमय को आगर ।
 जरा जोर वर श्वान प्राण को काल शिकारी ॥
 मूपक कहाँ निशङ्क मृत्यु तकि रही मैंजारी ।
 अम्र भजन आतुर करो जौलों पञ्जर श्वास ॥
 नदी किनारे रूखा जब कब होइ विनास ॥

काजर सब कोउ देत है चितवन माँझ विशेषि ।
 चितवन माँझ विशेषि प्रिति सों प्रभुको देखै ॥
 श्याम गौर जो रूप हृदय-अन्तर अवरेखै ।
 रसन रटै हरिनाम असद आलाप न करई ॥
 देखि पराई द्रव्य चाह-पावक नहिं जरई ।
 रामचरण ब्रत नेह नित अग्र सोहागिल पेपि ॥
 काजर सब कोउ देत है चितवन माँझ विशेषि ॥

(३) नाभादास—ये अग्रदास के शिष्य थे । इनका असली नाम नारायण दास था । इनकी जाति के सम्बन्ध में दो मत हैं । कोई इन्हें डोम और कोई क्षत्रिय बतलाते हैं । कहा जाता है कि जब ये बहुत छोटे थे, तब अन्नाभाव के कारण इनके माता पिता इन्हें एक सुनसान जंगल में छोड़ आये थे । जहाँ से उठाकर अग्रदास जी इन्हें अपने स्थान पर लाये और इनका पालन पोषण किया । अपने गुरु के कहने से इन्होंने भक्त माल लिखा, जिसका रचना काल वि० सं० १६४२ और वि० सं० १६८० के बीच में अनुमानित किया जाता है । इसके अतिरिक्त इन्होंने दो अष्टयाम और रामचरित सबधी फुटकर पद भी बनाये थे । पर इनकी ख्याति भक्तमाल द्वी के कारण विशेष है । भक्तमाल में तीन सौ छप्पय हैं और लगभग दो सौ भगवद्भक्तों के चरित्रों का बखान किया गया है । इसकी भाषा ब्रज भाषा है और साहित्य तथा इतिहास दोनों ही दृष्टियों से यह एक महत्वपूर्ण रचना है ।

इनकी कविता देखिये:—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयो ॥
 त्रैता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन ।
 इक अचक्र उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन ॥
 अब भक्तन सुख देन बहुरि वु धरि (लीला) विस्तारी ।
 राम चरन रस मत्त रहत अह निसि ब्रत धारी ॥
 संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो ।
 कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयो ॥

सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट कलजुगहिं दिखायो ।
निर अंकुस अति निडर रसिक जस रसना गाथो ॥
दुष्टन दोष बिचारि मृत्यु को उद्यम कीयो ।
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो ॥
भक्ति निसान बजाय के काहू तेँ नाहीं लजी ।
लोक लाज कुल श्रंखला तजि मीरां गिरधर भजी ॥

(४) दुरसाजी—राजस्थान के चारण कवियों में दुरसा जी का स्थान बहुत ऊँचा है। कविता के नाम पर जितना धन, जिसना यश और जितना सम्मान इन्हें मिला उतना बहुत थोड़े कवियों को प्राप्त हुआ है। इनकी लोकप्रियता का अनुमान हमें इसी बात से हो सकता है कि राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा चारण मिलेगा जिसे दुरसा जी की दो चार कविताएँ सुखाग्र न हों।

इनका जन्म मारवाड़ राज्य के सोजत परगने के गाँव धूनला में वि० सं० १५६२ में हुआ था* इनके पिता का नाम मेहा जी और दादा का अमरा जी था। जब ये छः वर्ष के थे तब मेहा जी का देहवसान हो गया जिससे अपने और अपनी माता की उदर पूर्ति के लिये बहुत छोटी अवस्था में इन्हें एक किसान की नौकरी करनी पड़ी। कहते हैं कि एक दिन जब ये अपने मालिक के खेत पर काम कर रहे थे तब बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह जी उधर होकर निकले और इनकी उनसे बात चीत हुई। ठाकुर साहब इनकी सुखाकृति और वार्तालाप के ढंग से बहुत प्रभावित हुए और किसान से मांग कर इन्हें अपने घर ले आये। यहाँ पर ठाकुर साहब ने इनके लिये शिक्षा का सुप्रबन्ध किया और जब ये पढ़ लिख कर होशियार हो गये तब अपना सेनापति और प्रधान सलाहकार नियुक्त कर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

इसी काल में दुरसा जी की मुगल बादशाह अकबर से भी भेंट हुई। बादशाह सोजत के मार्ग आगरे से अइमदाबाद जा रहे थे। बीच में सोजत एक प्रधान ठहरने का स्थान था। सोजत के डेरे से लेकर गुदोच के डेरे तक बादशाह के राह प्रबन्ध की ज़िम्मेदारी बगड़ी के ठाकुर साहब की थी।

उन्होंने अपने प्रधान कार्यकर्त्ता दुरसा जी को बादशाह के लिये प्रबन्ध करने को भेजा। दुरसा जी के प्रबंध से बादशाह बहुत खुश हुआ और यहीं पर गुंदोच के डेरे में इनकी बादशाह से सलामी हुई। इसी समय दुरसा जी ने अपनी कुछ कविताएँ भी बादशाह को सुनाई। इनसे वह बहुत प्रसन्न हुआ और लाख पसाव तथा सेवा की प्रशंसा का प्रमाण पत्र देकर इन्हें गौरवान्वित किया। जब बगड़ी के ठाकुर साहब ने दुरसा जी के सुप्रबन्ध से बादशाह के प्रसन्न होने का हाल सुना तो वे भी बहुत खुश हुए और उन्होंने भी धूनला और नातल कूड़ी नामक दो गाँव इन्हें जागार में दिये जो अभी तक इनके वंशवालों के अधिकार में हैं।

धीरे धीरे दुरसा जी का सुयश चारों ओर फैल गया और राजस्थान के राजा महाराजाओं द्वारा इन पर सम्मान की वर्षा होने लगी। अकबर तो इन पर लट्ठू था। वह जितना इनकी काव्य-प्रतिभा पर मुग्ध था उतना ही इनकी तलवार का भी क्रायल था। वि० सं० १६४० में जिस समय बादशाह ने सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये रायसिंह चन्द्र सेनोत और दाँतीवाड़ा के स्वामी कोली सिंह की अध्यक्षता में एक सेना सिरोही के राव मुरताण सिंह के विरुद्ध भेजी, उसमें दुरसा जी भी सम्मिलित थे। आबू के पास भीषण कटाकटी हुई, जिसमें जगमाल, रायसिंह, कोली सिंह आदि धराशायी हुये और दुरसा जी के भी बहुत से घाव लगे। युद्ध के समाप्त होने पर राव मुरताण सिंह और उसके सरदार जब रण भूमि का निरीक्षण कर रहे थे तब उन्होंने घायल और खून से लथपथ दुरसा जी को वहाँ देखा और एक साधारण सिपाही समझ कर उन्होंने इन्हें भी दूध पिलाने (मारने) का विचार किया। परंतु तलवार म्यान से निकाल कर एक आदमी इनका काम तमाम करने के लिये ज्योंही इनकी ओर बढ़ा त्योंही ये बोल उठे— 'मुझे मत मारो, मैं राजपूत नहीं चारण हूँ।' इस पर उनसे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस समरा देवड़ा की प्रशंसा में जो अभी काल कवलित हुआ है, कोई कविता कहो। यह सुनकर दुरसाजी ने उसी वक्त यह दोहा कहा:—

धर रावाँ जस हूँगाराँ, ब्रद पोताँ शत्रु हाण ॥

समरे मरण सुधारियो, चहुँ थोकाँ चहुँ आण ॥*

भावार्थ—चौहान समरा ने चारों ओर से अपनी मृत्यु को सार्थक किया अर्थात् उसने सुरताण की भूमि की रक्षा की, पहाड़ों की तारीफ करवाई, अपने वंशजों के लिये सम्मान छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुँचाई।

राय सुरताण यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। पालकी में विठाकर वह इन्हें अपने साथ घर ले गया और घावों के पट्टियाँ बँधवाईं। कालान्तर (सं० १६६३) में सुरताण ने इन्हें अपना पोलपात बनाया तथा पेशुआ और शाल नामक दो गाँव और करोड़ पसाव प्रदान किया।

दुरसा जी ने दो विवाह किये थे, जिनसे इनके चार पुत्र हुए—भारमल जी, जगमल जी, सादूल जी, और किसना जी। इन्होंने अपने जीवन काल ही में जागीर के चार हिस्से कर चारों पुत्रों को सौंप दिये थे। सिरौही रियासत के पेशुआ और शाल नामक दो गाँव बड़े लड़के भारमलजी को, भाँकर जगमलजी को, लूंगिया और धागला सादूलजी को, और पाँचेटिया तथा रायपुरिया सबसे छोटे पुत्र किसनाजी को मिले थे।

इनका देहान्त वि० सं० १७१२ में १२० वर्ष की आयु में हुआ था। पाँचेटिया में जिस स्थान पर इनकी दाह क्रिया हुई वहाँ एक मन्दिर अभी तक बना हुआ है। आबू पर अचलेश्वर महादेव के मन्दिर में भी शिवजी की प्रतिमा के सामने दुरसाजी की एक सर्वधात की मूर्ति बनी हुई है।

दुरसाजी एक जन्म सिद्ध कवि थे और बहुत लम्बी आयु का उपभोग कर स्वर्गवासी हुए थे। अतः सम्भावना तो यही है कि इन्होंने प्रचुर परिमाण में लिखा होगा। परन्तु अभी तक इनकी बहुत कम कविताएँ उपलब्ध हुई हैं। महाराणा प्रताप की प्रशंसा में लिखी हुई इनकी 'विरूद छहत्तरी' तथा थोड़े से फुटकर गीत, छप्पय आदि प्राप्त हुए हैं, और इसी थोड़ी सी सामग्री पर इनकी उत्तुङ्ग ख्याति अवलंबित है। दुरसाजी हिन्दू धर्म के बड़े अभिमानी और हिन्दू जाति के बड़े हितैषी थे। जब किसी

* ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणा यश प्रकाश; पृ० ९८। ओझा; राजपूताने का इतिहास पृ० ७७९।

हिन्दू राजा को ये अकबर के समक्ष नत मस्तक होते देखते तब इन्हें मर्मान्तक व्यथा होती थी। हिन्दू जाति के अपमान को ये अपना अपमान और उसकी पीड़ा को अपनी पीड़ा समझते थे। अतः वीर रसाकीर्ण होते हुए भी इनकी रचना के अंतस्थल में विपाद की जो एक क्षीण रेखा दीख पड़ती है उसका मुख्य कारण है हिन्दू धर्मावलंबियों के प्रति इनकी अटूट श्रद्धा। इनकी काव्य-रचना का उद्देश्य भी महान था और वह था देश को जातीयता की ओर अग्रसर करना। अतएव देश-प्रेम से ओत प्रोत दुरसाजी की कविता इनके हृदय के सच्चे उद्गार हैं और महाराणा प्रताप की प्रशंसा के बहाने इन्होंने अपने युग के दर्द को, हिन्दू जाति के परिताप ही को दर्साया है। अकबर की हिन्दू-हित-विघातिनी कूट नीति का तो इनकी कविता में खूब ही भडाफोड़ हुआ है। मुगल दरबार में राजा महाराजाओं की कैसी दुर्दशा होती थी, अपने पूर्वजों की मान मर्यादा पर लात मारकर किस प्रकार बादशाह को रिझाने के लिये शाही कटहरों में लटक किया करते थे, और किस प्रकार प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप हिन्दू-स्वत्वों के संरक्षण के हेतु अकेले ही मुगल वाहिनी से लोहा ले रहे थे आदि बातों का दुरसाजी ने ऐसा सजीव, सच्चा और फड़कता हुआ वर्णन किया है कि खून जोश से उबल पड़ता है और तत्कालीन राजसत्ता का इतिहास एव पतनाभिमुख हिन्दू जाति का चित्र आँखों के सामने घूमने लगता है। इनकी कविता का नमूना देखिए:—

अकबर गरब न आण, हिन्दू सह चाकर हुआ (वां) ।

दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कटहड़े ॥ १ ॥

लोपे हिन्दू ताज, सगपण^१ रोपे तुरक सूँ ।

आरज कुल री आज, पूँजी राण प्रताप सी ॥ २ ॥

अकबर समैद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू तुरक ।

मेवाडो तिण माँह, पोयण फूल प्रताप सी ॥ ३ ॥

अकबरिये इकबार, दागल की सारी दुनी ।

अण दागल असवार, एकज राण प्रतापसी ॥ ४ ॥

(गीत)

आयां दल सबल साम हो आवे, रंगिये खग खत्रवाट रतो ।
 ओ नरनाह नमो नह आवे, पतसाहण दरगाह पतो ॥ १ ॥
 दाटक^१ अनङ्ग^२ दंड नह दीधो, दोयण घड़ सिर दाव दियो ।
 मेल न कियो जाय बिच महलां, कैलपुरै खग मेल कियो ॥ २ ॥
 कलमां बांग न सुणिये काना, सुणिये वेद पुराण सुभै ।
 अहङ्गो सूर मसीत न अरचै, अरचै देवल गाय उभै ॥ ३ ॥
 असपत इद्र अवनि आहडियां^३, धारा भडियाँ सहै धका ।
 घण पडियां सांकडियां, घडियां ना धीहडियां पढ़ी नका ॥ ४ ॥
 आखी अणी रहै उदावत^४, साखी आलम कलम सुणो ।
 राखे अकबर बार राखियो, पातल हिन्दू धरम पणो ॥ ५ ॥

(५) वीर कवि पृथ्वीराज—बीकानेर के संस्थापक राव बीका जी से पाँचवीं पीढ़ी में रावकल्याण मल हुये, जिनके तीन पुत्र थे—रायसिंह, पृथ्वीराज, और रामसिंह। पृथ्वीराज का जन्म हुआ था संवत् १६०६ के मार्गशीर्ष में।* ये बड़े वीर, साहसी, नीति पटु, स्वदेशाभिमानी एवं भक्त थे, और सुकवि होने के साथ साथ संस्कृत-साहित्य, भारतीय दर्शन शास्त्र, ज्योतिष, छंदशास्त्र, संगीत शास्त्र आदि विषयों में भी परम प्रवीण थे। ये बड़े निर्भीक, सत्यप्रिय एवं स्पष्ट भाषी थे और चाटुकारिता एवं कृत्रिमता से कोसों दूर रहते थे। सत्य की खोज और असत्य का खंडन तो पृथ्वीराज के जीवन का प्रधान लक्ष्य ही था। मुगल सम्राट अकबर के ये प्रीति-पात्र थे और शाही दरबार में ही प्रायः रहते थे। ये उच्च कोटि के वैष्णव भक्त थे। भक्तवर नाभादास ने भी अपने भक्तमाल में प्रथम पंक्ति के भगवद्भक्तों में इनकी गणना कर इनके काव्य की बड़ी सराहना की है—

१ दाटक-शक्तिशाली । २ अनङ्ग-अनघ । ३ आहडियां-आक्रमण करता है ।
 ४ उदावत-उदयसिंह का पुत्र (प्रताप)

* बेलि क्रिसन रुक्मणी री (हिन्दुस्तानी एकेडेमी-संस्करण); पृ० १५

सवैया, गीत, श्लोक, बेलि, दोहा गुण नवरस ।
 पिंगल काव्यप्रमाण, विविध विध गायो हरिजस ॥
 परिदुख विदुष सरलाध्य, वचन रसना जु उच्चार ।
 अर्थ विचित्रन मोल, सबै सागर उद्गारे ॥
 रुक्मिणी लता वर्णन अनुप, वागीस वदन कल्याण सुव ।
 नरदेव उभय भाषा निपुण, प्रथोराज कवि राज हुव ॥

पृथ्वीराज ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री लालादे परम लावण्यमयी एवं सहृदया महिला थी। पृथ्वीराज भी उससे बहुत प्रेम करते थे। पर दैवकोप से उसकी अकाल-मृत्यु हो गई, जिससे इन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा। इस बार इनका उद्वाहन जैसलमेर के रावल हरराज की कन्या चाँपादे से हुवा। पृथ्वीराज का ज्ञयाल था कि लालादे जैसी निपुण और गुणवती स्त्री उन्हें फिर न मिलेगी और इसी लिये वे दूसरा विवाह करना भी नहीं चाहते थे। पर उनकी यह शक्ता निर्मूल सिद्ध हुई। रूप-गुण-रसज्ञता में चाँपादे स्वर्गीय लालादे से भी बढ़कर निकली। उसके रूपालोक से पृथ्वीराज का गृहिणी-विहीन गृह पुनः उद्भासित हो उठा, और लालादे के अभाव को वे भूल गये। चाँपादे सुन्दर थी, चतुर थी, हँसमुख थी, परन्तु सर्व प्रधान गुण उसमें यह था कि काव्य रचना में भी वह कुशल थी। अपनी जीवन-नौका को खेने के लिये जैसा केवट पृथ्वीराज चाहते थे वैसा ही उन्हें मिला भी। दम्पति परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट थे। वे एक दूसरे की कविताएँ सुनते, उन्हें सराहते, उनमें काटछाँट करते, उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना करते और सदोष हुईं तो व्यंगवर्षा-द्वारा एक दूसरे का मन भी बहला लेते थे। दोनों की आपस में खूब पटती थी।

एक दिन पृथ्वीराज सामने दर्पण रखकर अपने बालों में कंघी कर रहे थे कि उन्हें अपनी दाढ़ी में एक सफेद बाल दीख पड़ा। उसे उन्होंने उखाड़ कर फेंक दिया, पर पीठ पीछे खड़ी हुई चाँपादे यह लीला देख रही थी। वह चुपके से दो कदम पीछे हट गई और मुँह फेर कर हँसने लगी। उसका

प्रतिबिम्ब दर्पण में देखकर पृथ्वीराज ने पीछे देखा और फिर लज्जा विमिश्रित स्वर से बोले:—

पीथल धोळा आविया, बहुली लग्गी खोड़ ॥
कामण मत्तगयंद ज्यों, ऊभी मुख मरोड़ ॥

पृथ्वीराज की रलानि मिटाने के अभिप्राय से चाँपा दे ने भी कविता का उत्तर कविता में यो दिया:—

हळ तो धूना धोरियाँ, पंथज गय्हाँ पाव ॥
नराँ, तुराँ, अरु वन फळां, पक्काँ पक्काँ साव ॥*

कुछ तो राजनैतिक झंझटों के कारण और कुछ अपने भाई के लाभार्थ पृथ्वीराज को शाही दरबार में रहना पड़ता था, पर अकबर की कूटनीति एवं उसके राजकीय आदर्शों के प्रति इनकी सहानुभूति किंचित् मात्र भी न थी। स्पष्ट भाषी और सत्यनिष्ठ होने से अकबर को भी खरी खरी सुनाने से ये नहीं चूकते थे। एक दिन भरी सभा में अकबर ने जब यह कहा कि अब प्रताप भी हमारी अधीनता स्वीकार करने को तैयार है, तब ऐसी निर्भीकता से इन्होंने उसके कथन का खंडन किया कि समस्त सभासद चकित, विभ्रान्त एवं भीत हो उठे। पृथ्वीराज बोले—जहाँपनाह ! सागर मर्यादा, हिमालय गौरव और सूर्य तेज को भले ही छोड़ दे, परन्तु शरीर में बल, नसों में रक्त और हाथ में तलवार रहते तक प्रताप अपने प्रण को कदापि न छोड़ेंगे। आपकी अधीनता स्वीकार न करेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेवाड़ और भारत का ही क्या समस्त संसार का राज्य भी प्रताप के पाँवों तले रख दिया जाय तो वह उसे ठुकरा देंगे। स्वतन्त्रता के सामने प्रताप की दृष्टि में राज्य-सम्मान, राज्याधिकार और राज्य-वैभव का कोई मूल्य एवं महत्व नहीं है। अकबर पृथ्वीराज को अपने राज्य का प्रधान स्तम्भ समझता था, पर इस सिंहनाद ने उसके मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया और वह सोचने लगा कि प्रताप से मिलकर पृथ्वीराज कहीं मेरे एकाङ्गी अधिकार तथा साम्राज्य को जर्जरित करने का उद्योग न करे। वस्तुतः बात थी भी ऐसी ही। क्योंकि

राजस्थान में उस समय वीरों का अभाव न था, अभाव था हिन्दू संगठन का। और यदि प्रतापसिंह को कहीं पृथ्वीराज जैसा सच्चा, सुभट तथा स्वदेश सेवी साथी मिल जाता तो कम से कम राजस्थान में तो वे अकबर के पाँव न जमने देते।

पृथ्वीराज के जीवन की एक और घटना सर्वश्रुत है। कहते हैं कि एक दिन अकबर ने इनसे कहा कि तुम्हारे तो कोई पीर वश में है, बताओ तुम्हारी मृत्यु कब और कहाँ होगी? “मथुरा के विश्रान्त घाट पर, और उस समय एक सफेद कौआ प्रकट होगा” पृथ्वीराज ने उत्तर दिया। बादशाह को विश्वास न हुआ और इस भविष्य वाणी को निर्मूल सिद्ध करने के लिये पृथ्वीराज को किसी राज्य कार्य के बढ़ाने से अटक पार भेज दिया। इस घटना के साढ़े पाँच महीने बाद एक दिन एक भील चकवा-चकवी के एक जोड़े को जंगल से पकड़ कर बेचने के लिये दिल्ली के बाज़ार में लाया। पक्षियों को देखने के लिये आये हुए मनुष्यों की बाज़ार में भीड़ लग गई और उनमें से एक ने हँसी ही हँसी में उनसे प्रश्न किया—“तुम रात को कहाँ थे?” दोनों पक्षी सहसा बोल उठे—“इसी पिंजरे में”। पक्षियों को मानव-भाषा में बोलते हुए सुन कर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, और उन्होंने इसकी सूचना अकबर को भी दी। बादशाह ने फ़ौरन पिंजरा मंगाकर पक्षियों को देखा और कहा कि भील ने तो दुश्मनी से बेचने के लिये इन्हें पकड़ा था, परतु ऐसे शत्रु पर तो करोड़ों मित्र भी न्योछावर हैं। नवाब खान खाना उस समय वहाँ विद्यमान थे। उक्त भाव को लेकर उन्होंने यह आधा दोहा कहा:—

सजन वारूँ कोड़धाँ, या दुर्जन की भेट।

बादशाह को यह उक्ति बड़ी अच्छी लगी, और खान खाना से कहा कि इसे पूरी करो, पर वे न कर सके। इसलिये पृथ्वीराज को बुलाने की आज्ञा हुई। उस दिन से पृथ्वीराज के मरने में पन्द्रह दिन बाकी थे। ठीक पन्द्रहवें दिन वे मथुरा पहुँचे। मृत्यु की घड़ी आ पहुँची थी। अतएव उन्होंने बादशाह के नाम एक पत्र लिखा और विश्रान्तघाट पर दान पुण्य कर प्राण छोड़े। सफ़ेद कौआ आया। बादशाह के कर्मचारी जो उन्हें लेने गए थे, देखकर दंग रह गए। आँखों

देखी सारी घटना उन्होंने बादशाह से कह सुनाई और वह पत्र भी दिया, जिसमें पूरा दोहा इस प्रकार लिखा हुआ था:—

सज्जन वारूँ कोड़धा, या दुर्जन की भेट ।

रजनी का मेला किया, वेह के अचर भेट ॥^१

यह घटना सं० १६५७ में हुई थी । बादशाह को पृथ्वीराज की भविष्यवाणी पर विश्वास हो गया । परंतु अब बधाई किसे देता । अंततः स्वर्गीय आत्मा की पुण्य स्मृति में दो आँसू डाल केवल यही कह कर रह गया—

पीथल सूँ मजलिस गई, तानसेन सूँ राग ।

रीक बोल हंसि खेलबो, गयो बीरबल साथ ॥^२

पृथ्वीराज राजस्थान के अमर कवियों में से एक हैं । इनके रचे बेलि किसन रुक्मणी री, दशरथ रावउत, बसुदेव रावउत और गंगालहरी नामक ग्रंथ तथा स्फुट गीत, सवैया, दोहा, सोरठा, छप्पय आदि उपलब्ध हुए हैं । प्रेम-दीपिका तथा श्री कृष्ण रुक्मिणी चरित्र दो और ग्रंथों के नाम मिश्रबन्धु विनोद में दिये हुए हैं; पर देखने में नहीं आये* । पृथ्वीराज की कला का उत्कर्ष, उनकी अनुभूति की सूक्ष्मता एवं सुकोमलता सर्वोत्तम रूप से बेलि में प्रस्फुटित हुई है । यह एक खंडकाव्य है और श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध के कुछ अंशों की छाया पर रचा गया है । पर कल्पना का पुट देकर तथा रागात्मिकता का जीवन फूंक कर कवि ने उसमें ऐसी नवीनता पैदा कर दी है, कि वह एक सर्वथा स्वतन्त्र रचना प्रतीत होती है । इसमें रुक्मिणी के विवाह की कथा का वर्णन है और डिंगल प्रसिद्ध अर्ध सममात्रिक छंद, 'बेलियो गीत' का प्रयोग हुआ है । कुल मिलाकर इसमें तीन सौ पाँच छंद हैं । ग्रंथ की भाषा साहित्यिक डिंगल है और काव्य-सौष्ठव, अलंकार-चातुर्य, भाव गाम्भीर्य, भाषा-लालित्य, अर्थ-गौरव आदि सभी दृष्टियों से अपने रंगदंग का

१ मुंशी देवी प्रसाद, राज रसनामृत पृ० ४१

२ ना० प्र० प०, भाग १४—अंक २ पृ० २५२

* मिश्रबन्धु विनोद, भाग पहला, पृ० ३०७

अनूठा है, अनुपम है। वैसे ग्रंथ है शृङ्गार रस प्रधान, पर वीर, रौद्र, बीभत्स आदि रसों की सम्यक् व्यञ्जना भी कवि ने प्रसंगानुकूल की है। कुछ लोगों का खयाल है कि डिंगल वीर रस के लिये जितनी उपयुक्त है उतनी शृङ्गार रस के लिये नहीं, किन्तु पृथ्वीराज का यह ग्रंथ इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि डिंगल में शृङ्गार रस की भी अत्युच्च, सुमधुर, प्रौढ़ एवं विशिष्ट रचना हो सकती है। बेलि के कथानक में सरसता, उसकी कविता में कोमलता, उसके प्राकृतिक वर्णन में काल्पनिक कमनीयता, उसकी भाषा में प्रांजलता, एवं भावों में मौलिकता है और उसकी पार्थिव तथा पारमार्थिक महत्ता के सम्बन्ध में तो कवि ने स्वयं ही लिख दिया है:—

मणि मन्त्र तन्त्र बल जंत्र अमंगल, थळि जळि नभसि न कोइ छुलन्ति
डाकिणि साकिणि भूत प्रेत डर, भाजै उपद्रव बेलि भणन्ति ॥
प्रिथु बेलि कि पँचविध प्रसिध प्रणाली, आगम नीगम कजि अखिल।
मुगति तणी नोसरणी मंडी, सरग लोक सोपान इळ ॥*

महाराज पृथ्वीराज की सर्वोत्कृष्ट रचना 'बेलि क्रिसन-रुक्मणी-री' है, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु राजस्थान में बेलि इतनी लोक-प्रिय नहीं है, जितनी इनकी फुटकर कविताएँ। इनके रचे वीर रस पूर्ण गीत, सोरठा आदि राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध हैं और यही इनकी कीर्ति का मुख्याधार हैं। वीर रसोपासक भूषण, लाल आदि की तरह पृथ्वीराज भी राष्ट्रीय कवि हैं। इनकी कविता अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है और उसमें तत्कालीन हिन्दू जनता की भावनाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। पृथ्वीराज शृङ्गार रस के ही नहीं, वरन् वीर रस के भी उत्कृष्टकवि हैं। इनकी वाणी में बल है, प्राण है, स्फूर्ति है और जैसे भावों की उच्चता है, वैसे ही स्पष्ट भाषण उद्-
एडता भी। पर अस्वाभाविकता नाम मात्र को भी नहीं आपायी है। पृथ्वी-
राज के गीतों में स्वरालोडित संगीत ध्वनि, कवित्त-सवैयाँ में अपरिमित ओज

*'बेलि क्रिसन रुक्मणी-री' का एक बहुत सुन्दर संस्करण हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी० की ओर से छपा है। इसके पाठ-निर्णय तथा अर्थ-स्पष्टीकरण में ढूँढ़ाड़ी, मारवाड़ी, सुबोधमंजरी आदि चार प्राचीन टीकाओं तथा डा० टैसीटरी द्वारा संपादित संस्करण से सहायता ली गई है। इनके सिवा शिवनिधि नामक

और दोहे-सोरठों में बड़े बड़े राज्यों को उलट देने की महती शक्ति है। इन की कविता देखिये:—

(प्रभात वर्णन)

(१)

गत प्रभा धियौ ससि रयणि गळन्ती
वर मन्दा सइ वदन वरि ।
दीपक परजळतो इ न दीपे
नासफरिम सू रतनि नरि ॥

(२)

मेली तदि साध सुरमण कोक मनि
रमण कोक मनि साध रही ।
फूजे छंडी वास प्रफूले
ग्रहणे सीतळता इ ग्रही ॥

(३)

धुनि उठी अनाहत संख भेरि धुनि
अरुणोदय धियौ जोग अभ्यास ।
माया पटल निसामै मंजे
प्राणायामे ज्योति प्रकास ॥

(४)

संयोगिणि चीर रई कैरव श्री
घर हट ताळ भमर गोधोख ।

एक जैन यति की बनाई हुई 'कल्पतरु' नाम की एक टीका और भी हमारे देखने में आई है। शिवनिधि ने अपनी इस पुस्तक में टीका का समय नहीं दिया है। पर इस टीका की प्राचीन हस्तलिखित प्रति जो हमारे देखने में आई है वह वि० सं० १७७२ की लिखी हुई है, (संवत् १७७२ चैत्र शुक्ल चतुर्थी रविवारे ग्राम भादसोडा (मेवाड़) मध्ये जैन यति प्रभू कुशलमणि तस्य शिष्येण गणि उत्तम कुशलेन लिखी ।)

दिणयर ऊगि एतला दीधा
मोखियाँ बंध बंधियाँ मोख ॥

(५)

वाणिजाँ वधू गो वाछ असइ विट
चोर चकव विप्र तीरथ वेळ ।
सूर प्रगटि एतला समपिया
मिलियाँ विरह विरहियाँ मेल ॥

(दूहा)

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप ।
अकबर सूतो औभ कै, जाण सिराणै साँप ॥१॥
अकबर समद अथाह, सूरपण भरियो सजल ।
मेवाडो तिण माँह, पोयण फूल प्रताप सी ॥२॥
अकबर एकण बार, दागळ की सारी दुनी ।
अण दागळ असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥३॥
अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिन्दू अबर ।
जागे जगदाधार, पोहरै राण प्रताप सी ॥४॥
अदूरे अकबरियाह, तेज निहाळो तुरकड़ा ।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी ॥५॥

(कवित्त)

जब तैं सुने हैं बैन तब तैं न मोको चैन,
पातो पढ़ि नैंकु सो त्रिलंब न लगावैगो ।
लेकै जमदूत से समस्त राजपूत आज,
आगरे में आठो याम ऊधम मचावैगो ॥
कहै पृथ्वीराज प्रिया, नैक उर धीर धरो,
चिरंजीवी राणा श्री मलेच्छन भगावैगो ।
मम को मरद मानी प्रबल प्रताप सिंह,
बडबर ज्यौं तड़फि अकबर पै आवैगो ॥

(६) दयालदास—ये मेवाड़ के रहने वाले जाति के भाट थे। इनका लिखा राणागो एक बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके सिवा इनके रचे 'रातो को अंग' तथा 'अकल को अंग नामक' दो और ग्रंथों के नाम सुने जाते हैं।* ये सभी ग्रंथ अमुद्रित हैं। राणागो में महाराणा कर्णसिंह तक के मेवाड़ के महाराणाओं का वर्णन है। दयालदास ने इसमें न तो कहीं अपना वंश परिचय और न ग्रन्थ के प्रारम्भ तथा समाप्त होने का समय दिया है। पर ग्रन्थ के अंत में जहाँ महाराणा कर्णसिंह का वृत्तान्त समाप्त होता है, वहाँ किसी दूसरे व्यक्ति ने, शायद लिपिकार ने, उस का रचना काल स० १६५५ लिखा है। (सं० १६७४ का माह वदी ५ सुभ लिखतां भाई सोभजी) महाराणा कर्णसिंह ने वि० सं० १६७६ से १६८४ तक राज्य किया था। अतः इससे यही सारांश निकलता है कि इनकी गद्दीनशीनी के पहले इस ग्रंथ का निर्माण हुआ था। पर ग्रंथारम्भ में महाराणा की जो वंशावली दी हुई है उसमें महाराणा जगतसिंह, महाराणा राजसिंह और महाराणा जयसिंह के नामों का भी उल्लेख है जिन्होंने कर्णसिंह के बाद मेवाड़ के राजसिंहासन को सुशोभित किया था:—

सीसोदा जगपति नृपति, तासुत राजरु रानु ।

तिनके निरमल वंशको, करयो प्रशंसु बखानु ॥

राजस्थंघ के पाट अब, बैठे जैस्थंघ रान ।

धरा ध्रम अवतार ले, मनौं भान के भान ॥

अतः दो ही बातें हो सकती हैं। एक तो यह कि ग्रंथ वास्तव में सं० १६७५ ही का लिखा हुआ हो और बाद में दयालदास के वंशजों ने महाराणा जगतसिंह, महाराणा राजसिंह और महाराणा जयसिंह के नाम भी वंशावली में जोड़ दिये हों अथवा ग्रंथ की रचना महाराणा जयसिंह के शासन काल (सं० १७३७-१७५५) में हुई हो, पर ग्रंथ को प्राचीन बतलाने के अभिप्राय से किसी ने झूठ मूठ इसका रचना काल स० १६७५ लिख दिया हो। यदि दयालदास महाराणा कर्णसिंह का समकालीन होता तो कम से कम उनके पिता महाराणा अमरसिंह और दादा महाराणा प्रताप के विषय में

* मिश्र बन्धु विनोद; भाग पहला, पृ० ३७७

तो ऐसी इतिहास विरुद्ध बातें न लिखता जैसी कि राणा रासो में उसने लिखी हैं। भाषा और रचना पद्धति से राणा रासो अवश्य प्राचीन प्रतीत होता है, पर उसमें वर्णित घटनाओं को देखते हुए तो यही सिद्ध होता है कि महाराणा जयसिंह के राजत्व काल में सुनी सुनाई बातों के आधार पर उक्त कवि ने इसकी रचना की थी पर किसी कारण विशेष से अथवा उसकी मृत्यु हो जाने से कर्ण-सिंह के बाद के तीन राणाओं का वृत्तान्त लिखना बाकी रह गया था।

राणा रासो की रचना चारण-भाटों की प्रथावद्ध प्रणाली पर हुई है। सरस्वती तथा गणपति की वन्दना करने के पश्चात् कवि ने ब्रह्मा जी से लगाकर महाराणा जयसिंह तक के राणाओं की वंशावली दी है और बाप्पा रावल को एकलिंग का पुत्र कहा है। बाप्पा रावल और अजयसिंह के बीच के सभी राजाओं के नाम, तेजसी, गिरधर, जसकरन, अनतपाल, मनोहर इत्यादि मनगढ़ंत हैं। परन्तु कवि के लिखने का ढंग कुछ ऐसा है कि जिससे पढ़ने वाले को यही मालूम होता है कि मानो वह कोई इतिहास ग्रंथ पढ़ रहा हो :—

एकलिंग के एक सुत, ताको बापा नामु ।
 रावल बखत बुलंद हुत्र, अपूरव आठों जामु ॥
 बापा को खुमान भयो, गोइंदु खुमान गृह ।
 रावल गोइंद तनों, महानदु नंदु इंदु दह ॥
 महानंद को सीहु, सीहु को सकतिकुंवर सुतु ।
 सकतिकुंवर घर सुवतु, सारि बाहन बर अदभुत् ॥
 रावल सारिबाहन तनों, रावलु अंबप्रसादु हुष ।
 अंबप्रसाद उर उपज्यो, ब्रह्म कुंवारु रूपत सुव ॥

सारांश यह है कि इतिहास की अपेक्षा भाषा और कविता के विचार से राणा रासो एक अधिक महत्व पूर्ण ग्रंथ है। इसके मनन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दयालदास एक सहृदय कवि थे तथा डिंगल भाषा पर उनका अच्छा अधिकार था और अपने विषय को काव्योचित ढंग से लिखने में पूर्ण समर्थ थे।

इनकी कविता देखिये:—

परसि पाइ पंकज कुँवरु आलिङ्गि तात प्रति ।
 हथु मथ पर फेरि तथ दिय सीखु राज गति ॥
 चत्थो कुँवरु चतुरंग सजि सेना समूह चढ़ि ।
 हयगर्गद पयदल गरद आया सबा समढ़ि ॥
 परतल अपार रथ सथ सजि गथ गुथि खचर दरक ।
 अवसान भान कि क्यान चुकि कहि दयाल दबिय अरक ॥

अरक धरक धर धरकि धुकत धारा धरन फन ।
 मछ जेमि कछप छुमस तिनि छुटंत च छुकन ॥
 जछर छनिर मछ अपु गछ गछ पुकारहि ।
 मछर छंडि हरन छिक छिधन धांसु करहि ॥

खल भलि खलक खदबदि समद नदसद नीसान सुनि ।
 डगमगत डिंभ डुंगर गिरत फिरत चक्र जिम चितमुनि ॥

चौथा अध्याय



(संत कवि)

संत कबीर के सदुपदेशों का जनसाधारण ने अच्छा स्वागत किया और उनकी सफलता से उत्साहित होकर राजस्थान में भी कुछ संत-महात्माओं ने कबीर पंथ से मिलते-जुलते दादू पंथ, चरण दासी पंथ इत्यादि नवीन पंथों का जन्म दिया जो कालान्तर में राजस्थान के सिवा अन्य प्रान्तों में भी बड़े लोक-प्रिय सिद्ध हुए। सैद्धान्तिक दृष्टि से इन नये पंथों के जन्मदाताओं की विचार धारा और कबीर की विचार धारा में विशेष अंतर न था। कबीर के समान इनकी उपासना भी निराकारोपासना थी और उन्हीं की तरह ये भी मूर्ति-पूजा, कर्मकांड आदि के विरोधी थे और प्रेम, नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा का गुण-गान करते थे। इन संतों के कारण राजस्थानी साहित्य की अच्छी उन्नति हुई और इस उन्नति में सबसे अधिक हाथ दादू पंथानुयायियों का रहा। कहना न होगा कि ये संत लोग न तो विशेष पढ़े-लिखे होते थे और न काव्य-निर्माण की ओर इनका विशेष ध्यान था। ये पहले भक्त, फिर उपदेशक और फिर कवि होते थे और जहाँ तक बन सकता अपने विश्वासों को सरल से सरल रूप में लोगों के समझ रखने का प्रयत्न करते थे। काव्य कला संबंधी नियमों के निर्वाह एवं भाषा को प्रांजलता की अपेक्षा लोक-कल्याण की ओर इनका ध्यान विशेष रहता था। अतएव अपने धर्म-सिद्धांतों के प्रचार तथा प्रसार की भावना से प्रेरित होकर जो कुछ भी इन्होंने लिखा उसमें साहित्यिकता कम

और चोट अधिक है । निःसंदेह कुछ संत ऐसे भी हुए जिन्होंने भाव-प्रदर्शन के साथ साथ काव्य-चमत्कार और भाषा-लालित्य का भी पूरा ख्याल रखा, पर ऐसे संतों की संख्या बहुत अधिक नहीं है ।

(अ) दादू पंथः—

दादू पंथ के जन्म दाता संत दादूदयाल थे । इस पंथ में मुख्यतः चार प्रकार के साधु पाए जाते हैंः—खाकी, विरक्त, थाँभाधारी और नागे । इनमें जो खाकी हैं वे शरीर पर भस्म लगाते और सिर पर जटा बड़ाते हैं । विरक्त कोपीन बाँधते, कपाय वस्त्र पहिनते और हाथ में तूँबी रखते हैं । ये भजन-कीर्तन, ज्ञान-चर्चा आदि कर अपना समय बिताते हैं । नागे और थाँभाधारी सफेद वस्त्र पहिनते और खेती, नौकरी, वैद्यक आदि द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं । नागे साधु बड़े वीर, साहसी और रण-कुशल होते हैं । जयपुर के सैन्य-विभाग में एक नागा जमान आज भी विद्यमान है । विवाह करने की सभी प्रकार के साधुओं को मनाई है । गृहस्थों के लड़कों को चेला बना कर ये अपना पंथ चलाते हैं । ये लोग न तो तिलक लगाते हैं, न चोट्टी रखते हैं और न गले में कंठी पहिनते हैं । ये प्रायः हाथ में सुमिरनी रखते हैं और जय मिलते हैं 'सत्तराम' कह कर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं । दादू पथानुयायी निरंजन निराकार परब्रह्म की सत्ता को मानते हैं और मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं रखते । ये अपने अस्थलों में सिर्फ दादू जी तथा उनके प्रधान प्रधान शिष्यों की बाणियाँ रखते हैं और उन्हीं का अध्ययन-अध्यापन करते रहते हैं । जयपुर से लगभग बीस कोस की दूरी पर नरायणा नाम का एक छोटा सा कस्बा है । इसी के पास मेराणों की पहाड़ी है जहाँ पर दादू दयाल ने शरीर छोड़ा था । दादू पंथी इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं और यही इनका मुख्य तीर्थ है । यहाँ पर दादू जी के उठने बैठने के स्थान, कपड़े और पोथियाँ हैं, जिनकी पूजा होती है । यहाँ पर प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी चौथ से द्वादशी तक एक भारी मेला लगता है और एक बहुत बड़ी संख्या में दादू पंथी लोग एकत्र होते हैं ।

(१) दादू दयाल—दादू पंथियों के प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार दादू-दयाल का जन्म सं० १६०१ में हुआ था। इनकी जाति के संबंध में विद्वानों का एक मत नहीं है। कोई इन्हें ब्राह्मण, कोई मोची और कोई धुनिया बतलाते हैं। कहते हैं कि अहमदाबाद के किसी लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को ये सावरमती नदी में बहते हुए एक बन्द सन्दूक में मिले थे, जहाँ से उठा कर वह इन्हें अपने घर लाया और पुत्रवत् इनका पालन पोषण किया। संभव है, इसमें कुछ सत्यता हो। पर फिर भी दादू के असली माता-पिता, जाति आदि का विवरण तो तमाच्छन्न ही रहता है। इन के गुरु का नाम भी अज्ञात है। दादू के शिष्य जनगोपाल रचित 'दादू जन्म लीला परची' में लिखा है कि जब ये ग्यारह वर्ष के थे तब भगवान ने स्वयं सामने आकर इन्हें दर्शन और उपदेश दिया था। तभी से ये विरक्त हो गये और साधु-सेवा तथा सत्संग में अपना जीवन बिताने लगे। उन्नीस वर्ष की आयु में ये अपने घर से निकल पड़े और लोगों को उपदेश देते हुए अहमदाबाद से राजस्थान में चले आये, जहाँ सँभर, आमेर, कल्याणपुर, नरायणा आदि स्थानों में घूम घूम कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। दादू दयाल ने विवाह भी किया था और इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। सब से बड़े पुत्र का नाम गरीबदास था; जो बाद में इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए। दादू जी का स्वर्गवास सं० १६६० के आस पास नरायण में हुआ।

दादू दयाल एक अनुभवी, विचारवान तथा चरित्र के दृढ़ महात्मा थे और साक्षर होने के सिवा कविता करना भी जानते थे। इनका 'वाणी' नामक ग्रंथ सर्व प्रसिद्ध है। कबीर और दादू समकालजीवी नहीं थे, पर कबीर के विचारों का दादू पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था, यह बात इनकी रचना से स्पष्ट झलकती है। फिर भी कबीर की अपेक्षा दादू के विचार अधिक उदार, भाषा अधिक संयत तथा कविता अधिक तथ्यमय है। भाषा इनकी पश्चिमी हिन्दी है, जिसमें राजस्थानी का पुट भी यत्र तत्र लगा हुआ है। दादू की कविता बहुत सरल, सरस तथा भावपूर्ण है और उसमें मानव हृदय की अमर लालसाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते हैं—

धीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर ।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ें ते और ॥१॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय ।
घर में धरा न पाइये, जो कर दिया न होय ॥२॥
कहि कहि मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे वान ।
सतगुरु बपुरा क्या करै, जो चेला मूढ़ अजान ॥३॥
दादू देख दयाल को, सकल रहा भरपूर ।
रोम रोम में रमि रह्यो, तू जिनि जानै दूर ॥४॥

केते पारिख पचि सुये, कर्मति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान हैं, गूँगे का गुड़ खाइ ॥ ५ ॥
क्या मुँह ले हँपि बोलिये, दादू दूँजै रोइ ।
जनम अमोलक आपणा, चत्ते अकारथ खोइ ॥ ६ ॥
एक देश हम देखिया, जँह सन नहिं पलटै कोइ ।
हम दादू उस देश के, जहँ सदा एक रस होइ ॥७॥
सुरग नरक संसय नहीं, जिवण मरण भय नाहिं ।
राम बिमुख जे दिन गये, सो सालैं मन माहि ॥८॥

कहतौं सुनतौं देखतौं, लेतौं देतौं प्रान ।
दादू सो कतहूँ गया, माटो धरी मसान ॥ ९ ॥
जिहि घर निन्दा साधु की, सो घर गये समूल ।
तिनकी नाँव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥ १० ॥

भाई रे ऐसा पंथ हमारा ।

द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अवरण, एक अधारा ।
बाद विवाद काहु सौं नहीं मैं हूँ जग थें न्यारा ॥
सम हृष्टी सँ भाई सहज में आपहि आप बिचारा ।
मैं, तैं, मेरी, यह मति नाहीं निरबैरी निरबिकारा ।
काम कलपना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा ।
एहि पथ पहुँचि पार गहि दादू, सो तत सहज सँभारा ॥

(२) **रज्जबजी**—ये जयपुर राज्यान्तर्गत सांगानेर में एक प्रतिष्ठित पठान के वंश में सं० १६२४ के आस पास पैदा हुए थे। इन के माता-पिता का नाम ज्ञात नहीं है। इनका असली नाम रज्जबअली खाँ था। प्रसिद्ध है कि बीस वर्ष की उम्र में जब ये विवाह करने के लिये सांगानेर से आमेर गये तब इनका दादू दयाल से साक्षात्कार हुआ और विवाह करने का विचार छोड़ उनके शिष्य हो गये। इस समय से ये दादू जी के साथ रहने और कथा-कीर्तन, शास्त्राध्ययन, सत्संग आदि में अपना समय व्यतीत करने लगे। दादू जी के प्रति इन की अटूट श्रद्धा थी और वे भी इन का बड़ा आदर करते थे। कहते हैं कि दादू जी की मृत्यु से इन्हें ससार यूना प्रतीत होता था और जिस दिन से उन्होंने शरीर छोड़ा उसी दिन से रज्जब जी ने भी अपनी आँखें बन्द कर लीं और आजन्म न खोलीं। इनका देहान्त सं० १७४६ में सांगानेर में हुआ।

रज्जब जी पढ़े लिखे बहुत न थे, पर बहुश्रुत थे और कवि तो ये माँ के पेट से पैदा हुए थे। इन्होंने 'वाणी' और 'सर्वगी' नाम के दो बहुत बड़े ग्रंथ बनाये, जिनसे इनकी काव्य प्रतिभा, ज्ञान गरिमा और गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी भाषा राजस्थानी तथा कविता शान्त रस से ओत प्रोत है और उसके मनन से पाठक को एक विचित्र रस एवं अपूर्व मस्ती का अनुभव होता है। भक्ति एवं प्रेम के उदगारों का रज्जब जी ने बहुत ही हृदयग्राही और नैसर्गिक ढंग से चित्रण किया है।

आगे हम रज्जब जी की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं:—

दादू दरिया राम जल, सकल सन्तजन मीन ।
 सुख सागरमें सब सुखी, जन रज्जब लो लीन ॥ २ ॥
 सतगुरु चुम्बक रूप है, सिध्द सुई संसार ।
 अचल चलै उनके मिलै, यामें फेर न सार ॥ २ ॥
 बिरही सावित बिरह में, बिरह बिना मर जाय ।
 ज्यूं चूने का कांकरा, रज्जब जल मिल जाय ॥ ३ ॥
 नांव निरंजन नीर है, सब सुकृत बनराय ।
 जन रज्जब फूलै फलै, सुमिरन सलिल सहाय ॥ ४ ॥

रजब पारस परसतै, मिटिगौ लोह विकार ।
 तीन बात तो रहि गई, बांक धार अरु मार ॥ ५ ॥
 भली कहत मानत बुरी, यहै परकृति है नीच ।
 रजब कोठी गार की, ज्यूं धोवै ज्यूं कीच ॥ ६ ॥
 सिर छेदे हू बीर को, बीरपनों नहीं जाय ।
 दीन हीनता नां तजै, पद बिशेष हू पाय ॥ ७ ॥
 रजब कोलहू काल कै, सब तन तिखी समानि ।
 सो उबरै कहि कौन बिधि, जो आया बिचि घानि ॥ ८ ॥
 सन्तों मगन भया मन मेरा ।
 अहनि सदा एक रस लागा, दिया दरीबै डेरा ॥ (टेक) ॥
 कुल मर्याद मैड सब भागी ब्रैठा भाठी नेरा ।
 जाति पाति कछु समझै नाहीं किस कूँ करै परैरा ॥
 रस की प्यास आस नहिं औरौं इहिं मत किया बसेरा ।
 ल्याव ल्याव याही लै लागी पीवै फूल घनेरा ॥
 मो रस मांग्या मिले न काहू सिर साटे बहुतेरा ।
 जन रजब तन मन दै लीया होय धरणी का चेरा ॥

(३) सुन्दरदास—ये ब्रूमर गोती खडेलवाल महाजन थे और जयपुर राज्यान्तर्गत औसा नगरी में, जो जयपुर शहर से पूर्व दिशा में १६ कोस पर है, सं० १६५३ में पैदा हुए थे। इन के पिता का नाम चोखा उपनाम परमानंद और माता का सती था। ये दोनों बड़े धर्मात्मा, भगवद्भक्त और साधु-महात्माओं का सत्कार करने वाले व्यक्ति थे। कहते हैं कि टहटड़ा गाँव की ओर से घूमते हुए एक दिन दादू दयाल जब औसा में आये और सुन्दरदास के माता-पिता इन्हें लेकर उनके निवास स्थान पर गये। तब दादू जी इनकी मुखाकृति से बहुत प्रभावित हुए और होनहार समझकर इन्हें अपना चेला बना लिया। इस समय सुन्दरदास की अवस्था ६ वर्ष की थी। उसी दिन से इन्होंने अपना जन्म स्थान तथा परिवार छोड़ दिया और जगजीवन नामक दादू जी के एक शिष्य की देख-रेख में गुरु के साथ रहने लगे। अपने गुरु संप्रदाय ग्रन्थ में सुन्दरदास ने इस घटना का उल्लेख किया है:—

प्रथमहि कहैं आपुनी बाता, मोहि मिलायो प्रेरि विधाता ।
 दादू जी जब चौसह आये, बालपने हम दर्शन पाये ॥
 तिन के चरननि नाथौ माथा, उनि दीयौ मेरे सिर हाथा ।
 स्वामी दादू गुरु है मेरो, सुन्दर दास शिष्य तिन केरो ॥

दादू जी के स्वर्गवास (सं० १६६८) के समय तक ये नरायणे में रहे । तदन्तर अपने माता-पिता के पास चौसा में चले आये और कुछ दिन वहाँ रह कर शिक्षा प्राप्त करने के लिये काशी चले गये । लगभग तीस वर्ष की आयु तक काशी में रहकर इन्होंने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, योग और षट्दर्शन के ग्रंथों का मनन किया तथा भाषा काव्य के छंद, रस, अलंकारादि विविध अंगों के विषय में भी बहुत से ग्रन्थ पढ़े । वहाँ से लौटकर ये अपने गुरु भाई प्रयाग दास के साथ फतहपुर में रहने लगे ।

सुन्दर दास बालब्रह्मचारी, बड़े स्वरूपवान, विनोदप्रिय तथा मधुर भाषी थे । उनकी प्रकृति अत्यन्त सरल और उन्मुक्त हँसी बालकों की तरह भोली थी । उच्च कोटि के दार्शनिक होते हुए भी दार्शनिकों का सा रूपापन इनके स्वभाव में न था । सरल, निरभिमान तथा आडम्बर-शून्य स्वभाव के साथ ही साथ स्वामी जी के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि जिससे प्रत्येक मिलने वाला प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था । उनकी मन मोहक मुख श्री और सौम्य मूर्ति के दर्शन मात्र से एक प्रकार की पवित्रता एवं शान्ति का अनुभव होता था । स्वामी जी सत्साहित्य के उद्भावक, पोषक तथा उन्नायक थे, और कहा करते थे कि शृङ्गार रसात्मक कविता, कला की दृष्टि से चाहे वह कितनी ही उच्चकोटि की क्यों न हो, लोकहित साधन के विचार से तो विष ही है । केशव कृत रसिकप्रिया हिन्दी साहित्य में रसों पर एक अद्भुत, अपूर्व एवं अनूठा ग्रंथ समझा जाता है पर, जैसा कि निम्नाङ्कित कविता से भासित होता है, सुन्दर दास की दृष्टि में उसका कुछ भी मूल्य न था:—

रसिक प्रिया, रस मञ्जरी, और सिंगारहि जानि ।
 चतुराई करि बहुत बिधि, विषै बनाई आनि ॥

विषै बनाई आनि, लगत विषयिन को प्यारी ।
जागै मदन प्रचंड, सराहैं नख सिख नारी ॥
उयों रोगी मिष्टान्न, खाइ रोगहिं विस्तारै ।
सुन्दर यह गति होइ, जुतौ रसिक प्रिया धारै ॥

स्वामी जी को देशाटन से बड़ा प्रेम था । बिना किसी ज्ञास कारण के एक स्थान पर ये विशेष न रहते थे । प्रायः समस्त उत्तरी भारत, गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा आदि का इन्होंने कईवार पर्यटन किया था, और दादूपंथियों के स्थानों को देखे थे । इससे इनके ज्ञान-भंडार की अच्छी अभिवृद्धि हुई और अन्य भाषा भाषियों के सम्पर्क में आने से अरबी, फ़ारसी, पूर्वी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं का भी इन्हें अच्छा ज्ञान हो गया । इनका नियम था कि जिस स्थान पर जाते वहाँ के साधु-महात्माओं से अवश्य मिलते थे । उनके सत्संग से लाभ उठाते और अपने सदुपदेशों से उन्हें लाभान्वित करते थे । अपनी गुणग्राहिता के कारण दादूपंथियों के सिवा इतर धर्मावलम्बी भी इन्हें बड़ों श्रद्धा की दृष्टि से देखते और इनकी ज्ञान-भारिमा, उच्चकोटि की साधुता तथा रचना-पाठ्य की बड़ी सराहना करते थे ।

सुन्दरदास कभी फतहपुर में, कभी मोरों में कभी कुरसाने में और कभी आमेर में रहे, पर अंत समय में ये सांगानेर में थे, जहाँ वि० सं० १७४६ में इनका बैकुण्ठ वास हुआ ।

सुन्दरदास के कई शिष्य थे, जिनमें दयालदास, श्यामदास, दामोदर दास, निर्मलदास और नारायणदास मुख्य थे । इन पाँचों के थाँभों को बड़े थाँभे कहते हैं । इनमें भी फतहपुर का थाँभा प्रधान गिना जाता है और इसीलिये ये सुन्दर दास फतहपुरिया भी कहलाते हैं । इनके हाथ की लिखी हुई पुस्तकें, इनके पलंग, चादर, टोपा आदि भी फतहपुर में इनके थाँभाधारियों के पास सुरक्षित हैं । सांगानेर में जिस स्थान पर स्वामी जी का अग्नि-संस्कार हुआ था, वहाँ पर उनके शिष्यों ने एक छोटा सा चबूतरा तैयार कर उस पर एक छोटी सी गुमटी बना दी थी ; जो सं० १९६५ तक ठीक दशा में थी पर बाद में न मालूम किसी ने उसे विनष्ट कर डाला और

स्वामी जी के चरण-चिन्हों को भी उखाड़ कर फेंक दिये। इस छुतरी में यह चौपाई खुदी हुई थी:—

संवत सत्रासै झीयाला, कातिक सुदी अष्टमी उजाला ।

तीजे पहर भरसपतिवार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार ॥

इनके रचे ग्रन्थों के नाम निम्न हैं:—

ज्ञान समुद्र, सर्वाङ्गयोग, पंचेन्द्रिय चरित्र, सुख समाधि, स्वप्न प्रबोध वेद विचार, उक्त अनूप, अद्भुत उपदेश, पंच प्रभाव, गुरु संप्रदाय, गुन उताति, सद्गुरु महिमा, बावनी, गुरुदया षटपदी, भ्रमविध्वंशाष्टक, गुरु-कृपा अष्टक, गुरु उपदेश अष्टक, गुरु महिमा अष्टक, राम जी अष्टक, नाम अष्टक, आत्मा अचल अष्टक, पञ्चावी भाषा अष्टक, ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, पीर सुरीद अष्टक, अजब ख्याल अष्टक, ज्ञान भूलना अष्टक, सहजा नन्द ग्रंथ, गृहवैराग्य बोध ग्रंथ, हरि बोल चितावनी, तर्क चितावनी, विवेक चितावनी, पवंगम छन्द ग्रंथ, अडिल्ला छन्द ग्रंथ, मडिल्ला छन्द ग्रंथ, बारह मासो, आयुर्वल भेद आत्मा विचार, त्रिविध अन्तःकरण भेद ग्रंथ, पूर्वी भाषा बरवै ग्रंथ, सवैया (सुन्दर विलास), साली ग्रंथ, फुटकर पद, गीत, कवित्त इत्यादि ।*

हिन्दी साहित्य के निर्गुणोपासक भक्त कवियों में सुन्दरदास का एक विशेष स्थान है। शान्त रस और वेदान्त संबंधी कविता के रचयिताओं में ये सर्वश्रेष्ठ हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। इनकी कविता के प्रधान विषय हैं—भक्ति, ज्ञान, वेदान्त-चर्चा, देशाचार, ईश्वरमहिमा, संसार की नश्वरता, अद्वैतवाद, गुरु महिमा इत्यादि। इनकी सभी कविताएँ अत्यन्त मार्मिक, प्रौढ़ एवं विचार गाम्भीर्य से पूर्ण हैं। भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज-भाषा और वर्णन-शैली सरस, स्पष्ट तथा साहित्यिक है। कबीर, नानक दादू आदि संत कवियों में एक सुन्दर दास ही ऐसे हुए हैं जो दिग्गज विद्वान एवं साहित्य-मर्मज्ञ थे और पद-रचना के अतिरिक्त कवित्त-सवैया लिखने के भी उत्कृष्ट अभ्यासी थे। अतः रीति कालीन कवियों की अभिव्यंजना पद्धति पर रची हुई इनकी कविताओं का जितना औपदेशिक मूल्य है उतना ही साहित्यिक

भी । और यही कारण है कि उन्हें पढ़ कर ज्ञान-पिपासु भक्त जन ही परितृप्त नहीं होते, बल्कि बड़े बड़े काव्य-कला-कौशल प्रेमी साहित्यज्ञ भी उनका आस्वादन कर अलौकिक आनन्द का अनुभव करते और भूमने लगते हैं ।

यहाँ हम सुन्दर दास की कुछ चुनी हुई कविताएँ उद्धृत करते हैं:—

आपने न दोष देखे पर के औगुन पेखे,
दुष्ट को सुभाव उठि निंदाई करतु है ।
जैसे काहू महल सँवार राख्यौ नीकै करि,
कीरी तहाँ जाइ छिद्र ढूँढ़त फिरतु है ॥
भोर ही तें साँझ लग साँझ ही तें भोर लग,
सुन्दर कहतु दिन ऐसे ही भरतु है ।
पाँव के तरोस की न सूझै आगि मूरख कौं,
और सों कहतु सिर ऊपर बरतु है ॥
कामिनी को तन मानों कहिये सघन बन,
उहाँ कोउ जाइ सु तो भूलि कैं परतु है ।
कुञ्जर है गति कटि केहरी को भय जामें,
बेनी काली नागनीऊ फन कौं धरतु है ॥
कुच हैं पहार जहाँ काम चौर रहै तहाँ,
साधि कै कटाक्ष-बान प्रान कौं हरतु है ।
सुन्दर कहत एक और डर अति तामें,
राक्षस बदन खाउं खाउं ही करतु है ॥

घात अनेक रहे उर अंतर दुष्ट कहै मुख सों अति मीठी ।
लोहत पोहत व्याघ्रहि ज्यौं नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी ॥
ऊपर तें घिरकै जल आनि सु हेठ लगावत जाति अँगोठी ।
या मर्हि कूर कछू मति जानहु सुन्दर आपुनि अखिनि दीठी ॥

तू ठगि कैं धन और को ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै ।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै ॥
हाकिम कौ डर नाहिन सूझत सुन्दर एकहि बार निचौरै ।
तू खरचै नहि आपुन खाइसु तेरिहि चातुरि तोहि ले बोरै ॥

मन कौन सौं' लागि भूख्यौ रे ।

इन्द्रिनि के सुख देखत नीके जैसे सेंवरि फूल्यौ रे ॥ टेक ॥

दीपक जोति पतंग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥ १ ॥

भूठी माया है कछु नाहीं मृगतृष्णा में भूल्यौ रे ॥ २ ॥

जित तित फिरै भटकतौ यँही जैसेँ वायु घूल्यौ रे ॥ ३ ॥

सुन्दर कहत समुझि नहि कोई भवसागर मैं डुल्यौ रे ॥ ४ ॥

(४) गरीब दास—ये दादूदयाल के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे । इनका जन्म सं० १६३२ में हुआ था । ये बहुत अच्छे पंडित और गान-विद्या में निपुण थे । इनके रचे 'साखी', 'पद', 'अनमै प्रबोध', 'अध्यात्म बोध' आदि ग्रंथ मिलते हैं ।

इनका एक पद यहाँ उद्धृत करते हैं:—

नाद ब्यंद ले उरधै धरै । सहज जोग हठ निग्रह नांही ।

पवन फेरि घट मांहे भरै ॥ टेक ॥

त्रिकुटी ध्यान संधि नहि चूके । भार गुफा क्यूं भूलै ॥

द्वैतर सांघि अनूप अराधै । सुख सागर में भूलै ॥ १ ॥

इंगला प्यंगुला सुषमन नारी । तिरबेणी संग ल्यावे ॥

नौसे नवासी फेरि अपूठा । दसवें द्वार समावें ॥ २ ॥

अरधै उरधै ताली लखे । चंद सूर सम कीन्हां ।

अष्ट कंदल दल मां है बिगसे । ज्योति सरूपी चीन्हां ॥३॥

रोम रोम धुनि उठी सहज में । परचें प्राण सुपीवें ॥

गरीबदास गुरमुखि हूँ बूझी । जो जाएँ सो जीवं ॥

(५) जनगोपाल—ये फतहपुर सीकरी के रहने वाले जाति के वैश्य थे । अपने जन्म स्थान सीकरी में ही इन्होंने दादू दयाल से गुरु मंत्र लिया था । दादू पंथियो में इनके पद और छन्द बहुत प्रचलित हैं । इनके ग्रन्थ ये हैं— (१) दादू जन्म लीला परची (२) ध्रुव चरित्र (३) प्रहलाद चरित्र (४) भरत चरित्र (५) मोह विवेक (६) चौबोस गुरुओं की लीला (७) शुक संवाद (८) अनन्त लीला (९) बारह मासिया (१०) भेट के सवैये-कवित्त (११) जखड़ी-काया प्राण संवाद (१२) साखो, पद

इत्यदि । इनकी कविता का थोड़ा सा अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

तोसी नैं स्वामी हूँ आये । द्वारै रंग तिन सुष पाये ।
अरु जब बीते समये दोई । दुंढाहर की बिनती होई ॥
स्वामी गये सबनि सुष पाये । रमते नग्न नराणैं आये ।
बपनौं होरी गावत दैयौ । गुरु दादू अपनौं करि पैयौ ॥
कृपा करी तब ऐसी स्वामी । बचन बोलिया अंतरजामी ।
ऐसी देह रची रे भाई । राम निरंजन गावौ आई ॥
ऐसा बचन सुन्या है जबही । बपनौं दूख्या लीन्ही तबहीं ॥

(६) राघवदास—ये जाति के क्षत्रिय थे । इनके गुरु का नाम प्रह्लाद दाम था । इन्होंने भक्त माल नामक एक ग्रंथ लिखा जो सं० १७७० में समाप्त हुआ था । इस में दादू पंथ के प्रधान प्रधान महन्तों के जीवन चरित्र वर्णित हैं । इसकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है और कविता सरल तथा सारगर्भित है । दादू पंथी बहुत से मन्तों का जीवन-इतिहास हमें इस भक्तमाल के द्वारा विदित होता है और इस विचार से यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है । एक उदाहरण देखिये:—

द्वीत भाव करि दूर एक अद्वीतहि गावौ ।
जगत भगत पट दरस अब नि कै चाँणिक लावौ ॥
अपणों मत मजबूत थप्यौ अरु गुरु पक्ष भारी ।
आन धर्म करि खंड अजा घट मैं निरवारी ॥
भक्ति ज्ञान हठि सांखिलौं सर्व साम्र पारहि गयौ ।
संकराचारज दूसरौ दादू कै सुन्दर भयौ ॥

(७) बाजीद जी—ये एक पठान के कुल में पैदा हुए थे । मिश्र बन्धुओं ने इनका जन्म संवत् १७०८ दिया है, जो संदिग्ध है । राघव दास कृत भक्त माल में लिखा है कि एक बार हरिणी का शिकार करते समय इनके मन में दया का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे हिंसात्मक कार्यों को छोड़कर ये सत्संग में लग गये । इन्होंने दादू पंथ को स्वीकार कर लिया और रात-दिन ईश्वर भजन में व्यतीत करने लगे । इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) अरिलै (२) गुण कदियास नामा (३) गुण उत्पत्ति नामा

(४) गुण श्री मुख नामा (५) गुण घरिया नामा (६) गुण हरिजन नामा (७) गुण नांव माला (८) गुण गञ्ज नामा (९) गुण निरमोही नामा (१०) गुण प्रेम कहानी (११) गुण विरह का आग (१२) गुण नीसानी (१३) गुण छंद (१४) गुण हित उपदेश ग्रन्थ (१५) पद. (१६) राज कीर्तन । इनकी कविता का एक उदाहरण देखिये:—

डार छाँडि गहि मूल मानि सिख मोर रे ।
बिनां रामं के नाम भलो नहिं तोर रे ॥
जो हम कूं न पयाय बूझि किहिं गौंध में ।
परि हौं बाजीदा जप तप तीरथ बरत सब एक नाम में ॥

मंगल राम—ये जयपुर राज्य की उदयपुर तहसील के जाखल नामक गाँव के पास ढाँणी में रहते थे । इनका रचना-काल सं० १६०० के आस पास अनुमान किया जाता है । ये जाति के चारण थे, पर दादूपन्थ को स्वीकार कर लिया था । कवि होने के सिवा ये वीर और साहसी भी पूरे थे । इन्होंने लगभग १०० ग्रंथ बनाये जिनमें सुन्दरोदय इनकी सर्वोच्च रचना है । इसमें नागा जमात का वर्णन है ।

इनका एक छप्पय देखिये:—

जै जै जै जग तार, निरंजन निज निरकारा ।
सदा मिलमिले जोति, पुंजि कहुं वार न पारा ॥
नूर तेज भरपूर, सूर सखंत हजरा ।
गुण विकार करि छार, लह्यौ निज आतम मूरा ॥
सुद्धि सरूप अनूप पद, संद सभा निहचल मुदा ।
मंगल जग निस्तार कूं, प्रगट रहै पलक न जुदा ॥

(आ) रामस्नेही पंथ :—

राजस्थान में रामस्नेहियों के मुख्य केन्द्र तीन हैं:—शाहपुरा, खैड़ापा और रैण । शाहपुरे का रामस्नेही पन्थ राम चरण जी से चला है । इनके अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से मानते हैं और उसी का ध्यान करते हैं । ये मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं रखते । रामस्नेही साधु रामद्वारों में रहते हैं और भिक्षा माँग कर अपनी उदर पूर्ति करते हैं । ये कपड़े नहीं

पहिनते, सिर्फ लंगोट बाँधे रहते हैं और ऊपर से चादर ओढ़ लेते हैं। पहिले कोई कोई साधु नंगे भी रहते थे, जो परमहंस कहलाते थे। ये प्रायः तूम्बी, लंगोट, चादर, माला और पोथी के सिवा कोई दूसरी वस्तु अपने पास नहीं रखते और न किसी से रुपया-पैसा लेते हैं। ये विवाह नहीं करते। किसी उच्च वर्ण के लड़के को देख कर उसे अपना चेला मँडू लेते हैं और जो चेला सब से पहले मँडू जाता है उसी का गुरु की गद्दी पर अधिकार होता है। बड़े चेले को छोटे चेले नमस्कार करते और गुरुवत समझते हैं। ये साधु राम द्वारों में रहते हैं जहाँ कथा बाँचते तथा भजन गाते हैं। यो तो सभी जातियों के लोग इन्हें पूज्य दृष्टि से देखते हैं, पर अग्रवालों तथा महेश्वरियों की भक्ति इनके प्रति विशेष है। ये रामस्नेही साधु शाहपुरा को अपना गुरुद्वारा समझते हैं जहाँ प्रत्येक वर्ष फाल गुन सुदी १ से चैत्र वदि १ तक मेला भरता है।

खैड़ापे का रामस्नेही पन्थ हरिराम दास जी से निकला है। हरिराम दास जी का जन्म स्थान सिंहथल (बीकानेर) था और इन्होंने वि० सं० १८०० में बीकानेर राज्यान्तर्गत तुलचाकर नामक गाँव में जैमल दास नाम के एक रामानंदी वैष्ण साधु से दीक्षा ली थी। इनके एक शिष्य राम दास जी हुए। इन्होंने खैड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खैड़ापे के रामस्नेही रामदास जी को अपना आदि गुरु, हरिराम दास जी को आदि प्रवर्तक और जयमल दास जी को आदि आचार्य मानते हैं। इनके अनुयायियों की संख्या बीकानेर, मारवाड़, गुजरात और मालवे में अधिक है। राम दास जी स्वयं गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थ धर्म के पालन का आदेश दिया था। अपने शिष्यों के लिये किसी प्रकार का स्वरूप और बाना भी उन्होंने नियत नहीं किया। पर बाद में इनके बेटे दयाल दास और पोते पूर्णदास ने रामस्नेहियों के विरक्त, विदेही, परमहंस, प्रवृत्ति और घरबारी ये पाँच भेद कर दिये जो आज तक चले आते हैं। शाहपुरे के रामस्नेहियों की भाँति ये भी मूर्ति पूजा नहीं करते। राम द्वारों में अपने गुरु का चित्र अवश्य रखते हैं। पर यह प्रथा भी हरिराम दास जी से बहुत पीछे से चली है। ये साधु भंग, तम्बाखू, गाँजा, मदिरा आदि किसी प्रकार का नशा नहीं करते और भक्षाभक्ष का पूरा ध्यान रखते हैं। ये रात्रि

में भोजन नहीं करते और पानी को कई बार छान कर पीते हैं। खैड़ापे का गुरुद्वारा सिंहथल है। इन दोनों स्थानों पर होली के दूसरे दिन भारी मेला लगता है और साधु लोग भजन कीर्तन तथा 'पंच वाणी' की कथा करते हैं।*

रैण (मेड़ता) के रामस्नेही दरियाव जी को अपना आदि गुरु मानते हैं। इनकी रहन-सहन तथा उपासना-पद्धति शाहपुरे तथा खैड़ापे के राम-स्नेहियों से मिलती है। इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियाव जी का एक चित्र रखा हुआ है। वर्ष में एक भारी मेला यहाँ भी होता है और इनके अनुयायी एक बहुत बड़ी संख्या में एकत्र होते हैं।

(१) रामचरण जी—ये जयपुर राज्य के सोड़ा नामक गाँव के रहने वाले बीजावरगी बनिये थे। इनका जन्म वि० सं० १७७६ में माघ शुक्ला चतुर्दशी, शनिवार को हुआ था। इनके गुरु का नाम कृपाराम था, जिनसे वि० सं० १८०८ में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। वि० सं० १८२६ में घूमते घूमते ये भीलवाड़े (मेवाड़) में आये और वहाँ से शाहपुरे गये जहाँ के राजाधिराज रणसिंह जी ने इनका अच्छा स्वागत किया और इनकी गद्दी स्थापित करवाई। इनका देहावसान वि० सं० १८५५ में शाहपुरे में हुआ। इनके २२५ शिष्य थे, जिनमें से रामजन जी इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए।

रामचरण जी की वाणी प्रकाशित हो चुकी है। इसमें ८००० के लगभग छन्द हैं। इनकी कविता है तो तथ्यपूर्ण पर उसमें छन्दो भग बहुत है।

इनकी कविता के दो उदाहरण हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

रामहि राम अखंडित ध्यावत राम बिना सब लागत खारो ।

रामहि राम लिखां मुख बोलत राम हि ज्ञान रू राम बिचारो ॥

रामहि राम करै उपदेशहि राम हि जोग रू जिय पसारो ।

राम चरण इसे कोइ साधु है सो ही सिरोमणी प्राण हमारो ॥

सुधा पिपासा उदर सँग, शीत उष्ण तन साथ ।

*कवीर, दादू, हरिदास, रामदास और दयालदास की वाणियों की कथा पंच वाणी की कथा कहलाती है।

सो किसके सारै नहीं, ये कर्ता के हाथ ॥
 ये कर्ता के हाथ और मति व्याधि लगावै ।
 कैफ स्वाद शृङ्गार अजक हैरान करावै ॥
 राम चरण भज राम कूँ पाँचो परबल नाथ ।
 क्षुधा पिपासा उदर सँग शीत उष्ण तन साथ ॥

(२) हरराम दास जी—ये बीकानेर राज्यन्तर्गत सिंढथल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे । इन के पिता का नाम भाग्यचन्द्र था । ये बड़े कुशाग्रबुद्धि तथा मेधावी थे और बहुत थोड़ी आयु में वेदान्त, ज्योतिष आदि में पारंगत हो गये थे । इन्होंने सं० १८०० में दुलचासर ग्राम, जो सिंढथल से सात कोस है, में जाकर जैमल दास जी से दीक्षा ग्रहण की थी । इनके योग-चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कहा जाता है कि इन्होंने स्वरूपसिंह नामक निर्धन व्यक्ति को धनवान बना दिया था । इनका स्वर्गवास सं० १८३५ में हुआ था । इनके सैकड़ों शिष्य-प्रशिष्य हुए जिनमें बिहारीदास जी मुख्य थे, यही इनके बाद इनकी गद्दी के अधिकारी हुए । इन्होंने बहुत सी फुटकर साखियाँ और पद बनाए तथा छोटे छोटे ग्रंथ लिखे, जिनमें निसाणी इनकी सब से प्रौढ़ रचना है । इसमें हठयोग, समाधि, प्राणायाम आदि की प्रक्रियाओं का वर्णन है । इनकी भाषा राजस्थानी और विचार उच्च है :—

एक उदाहरण—

रे नर सतगुरु सौदा कीजै ।

इन सौदा में नफा बहुत है एक मना होय लीजै ॥ ८८ ॥
 मात पिता सुत आत सनेही चौरासी लख हीजै ॥ १ ॥
 जो कोई चाहै राम भक्ति कूँ गुरु की शरण गहीजै ॥ २ ॥
 गुरु बिनु भ्रम न भाजै भव का कर्म न काल कटीजै ॥ ३ ॥
 गुरु गोविन्द बिनु मुक्ति न जिव की कहियो वेद सुनीजै ॥ ४ ॥
 जन हरिराम और सब कृकस राम शब्द सत बीजै ॥ ५ ॥

(३) रामदास जी—इनका जन्म सं० १७८३ में जोधपुर राज्य के बीकोकोर नामक ग्राम में हुआ था । ये जाति के मेघवाल थे । इनके पिता का नाम शार्दूल जी था । बाल्यावस्था में इन्होंने थोड़ा सा विद्याभ्यास किया

और बाद में विरक्त होकर किसी योग्य गुरु की खोज में इधर उधर घूमने लगे। इन्होंने बारी बारी से १२ गुरु किये पर किसी से भी संतोष न हुआ। अंत में एक दिन एक सद्गृहस्थ के मुँह से हरिराम दास जी की वाणी सुन कर ये बहुत प्रभावित हुए और सिंध्यल में जाकर उन से भेंट की। सुयोग्य पात्र समझ कर उक्त स्वामी जी ने इन्हें राम मंत्र का प्रभाव तथा रामस्नेही पंथ के नियम बतलाये। इस पर सं० १८०६ में इन्होंने रामस्नेही पंथ को अंगीकार कर लिया और हरिराम दास जी के पास रह कर राम नाम का जप करने लगे। सं० १८२१ तक ये सिंध्यल में रहे पर बाद में जोधपुर की ओर चले गये और वहाँ खैड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। यहाँ इनके सैकड़ों शिष्य हुए, जिन्होंने आगे चल कर रामस्नेही पंथ के प्रचारार्थ बहुत काम किया। इनका गोलोकवास सं० १८५५ में ७२ वर्ष की आयु में खैड़ापे में हुआ।

रामदास जी ने गुरु महिमा, भक्तमाल, चेतावनी, जम फारगती, आदि ग्रंथ तथा अंगबद्ध अनुभव वाणी की रचना की, जिसके दास, उदास, संभव और खुदबह ये चार भेद हैं।

इनकी कविता का नमूना देखिये :—

निरधन भूरै धन बिना, फल बिन नागर बेल।

रामा भूरै राम बिन, विरही सालें सेल॥

कुंजर भूरै बज्र कूं, सूवा अंबा काज।

बिरहिन भूरै पोव कूं, कबै मिलो महाराज॥

(४) दयालदास जी—ये रामदास जी के पुत्र थे और उनके बाद खैड़ापे की गद्दी के अधिकारी हुए थे। इनका जन्म सं० १८१६ में और स्वर्गा रोहण सं० १८८५ में हुआ था। ये बड़े अनुभवी और सच्चरित्र महात्मा थे। इनके शिष्य पूरणदास ने अपनी बनाई हुई जन्म लीला में इनकी बहुत प्रशंसा की है। कविता भी ये बहुत अच्छी करते थे। इनका बनाया हुआ करुणा सागर ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसके सिवा इनके रचे फुटकर पद भी बहुत से मिले हैं।

इनकी कविता देखिये :—

रामइया शरण की प्रतिपाल ।

अब लगि करी सोई अब कीजै अपने घर की चाल ॥

जो सूरज परकासै नाहीं रात न कंज विसाल ॥

ससि नहि अमी द्रवै जो माधव तो निपजै केम रसाल

विरह कु मोदिनि जीवन सोई सब लालों सिर लाल ।

छाल बाल कै समरथ स्वामी रामदास किरपाल ॥

(५) दरियावजी—ये मारवाड़ राज्य के जेतारण परगने के मुख्य नगर जेतारण के रहने वाले थे और सं १७३३ में पैदा हुए थे । कुछ लोगों ने इन्हें जति का मुसलमान (धुनिया) मान रखा है, जो एक निराधार बात है । क्यों कि न तो दरियावजी ने कहीं अपना वंश परिचय दिया है और न इनके समकालीन शिष्यों में से किसी ने इनका मुसलमान कुलोत्पन्न होना लिखा है । दरियावाजी के अनुयायियों में से आज भी कोई यह नहीं कहता कि वे मुसलमान थे । अपने आचार्य की जाति का ठीक ठीक पता बतलाने में दरियाव पंथी अब असमर्थ हैं । पर दरियावजी मुसलमान नहीं थे, यह कहने में सभी का मत एक है । हमारे ग्वाल से दरियावजी का मुसलमान लिखने की सब से पहले गलती मारवाड़ राज्य की सेन्सस रिपोर्ट (सन् १८९० ई०) तैयार करने वालों ने की और उसी को सच मान कर लोगों ने इन्हें मुसलमान लिखना शुरू कर दिया है । इसके सिवा कुछ लोगों ने यह भी लिखा है कि दरियावजी की रुई पांजनी की हाथली रैण में रखी हुई है, जिसके दर्शन करने के लिये साल में एक बार इनके अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में वहां एकत्र होते हैं । यह भी गलत है । रैण में कोई हाथली नहीं रखी हुई है । वहाँ दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है और इसी के दर्शनार्थ चैत्र सुदी पूर्णिमा का लोग वहाँ एकत्र होते हैं ।

दरियावजी के पिता का नाम मानजी और माता का गीगाँ बाई था—

पिता मानजी जान गीगाँ महतारी ।

त्रिविध मेटण ताप आप लियो अवतारी ॥

इनका जन्म नाम दरियावजी था । पर साधु होने के बाद से लोग इन्हें दरियासा जी कहने लग गये, जिसका आज कल दरिया साहब हो गया है ।

दरियावजी के गुरु का नाम पेमदास था जिनसे इन्होंने सं० १७६९ में दीक्षा ली थी। गुरु मंत्र ग्रहण करने के कुछ वर्ष पश्चात् दरियावजी जेतारण से रैण नामक गाँव में चले गये और वहाँ पर अपनी गद्दो स्थापित की जो अभी तक विद्यमान है। मारवाड़ के सिवा राजस्थान की दूसरी रियासतों में भी दरियावजी के रामस्नेहियों की संख्या काफी है। इनका स्वर्गवास सं० १८०५ में हुआ था।

दरियावजी को हिन्दी, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और काव्य-रचना में भी निपुण थे। कहते हैं कि इन्होंने 'वाणी' नामक एक बहुर बड़ा ग्रंथ लिखा था, जिसमें १०००० के लगभग पद, दोहा आदि थे। पर आज-कल तो इनको बहुत कम कविताएँ मिलती हैं। रामस्नेहियों में यही एक ऐसे कवि हुए हैं जिनकी भाषा सुव्यवस्थित और रचना कवित्वपूर्ण कही जा सकती है। इनकी कविता के नमूने देखिये:—

गुरु आये घन गरज करि, सबद किया परकास ।
 बीज पड़ा था भूमि में, भई फूल फल आस ॥
 जो काया कंचन भई, रतनों जड़िया चाम ।
 दरिया कहै किस काम का, जो मुख नहीं नाम ॥
 बिरहिन पिउ के कारने, ढूँढन बन खँड जाय ।
 निसि बीती पिउ ना मिला, दरद रहा लिपटाय ॥
 दरिया बगुला ऊजला, उज्जल हो है हंस ।
 ये सरवर मोती चुगै, वा के मुख मे मंस ॥
 सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात ।
 दरिया बाहर चाँदना, भीतर काली रात ॥
 कंचन कंचन ही सदा, काँच काँच सो काँच ।
 दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच ॥
 साध पुरुष देखी कहै, सुनी कहँ नहिं कोय ।
 कानों सुनी सो झूठ सब, देखी साँची होय ॥

(इ) चरण दासी पंथ

यह पंथ चरणदास जी से निकला है और कबीर पंथ से बहुत मिलता जुलता है। इस पंथ के अनुयायियों में शब्द मार्ग बहुत प्रचलित है और

गुरु चरणों का आश्रय लेना ही सर्वोच्च साधन मानते हैं। चरणदास ने मूर्ति-पूजा का खंडन और निराकारोपामना का समर्थन किया था। पर आज कल उनके अनुयायी मूर्ति पूजा भी करने लग गये हैं। चरणदासी साधु पीले वस्त्र पहिनते हैं, और ललाट पर गोपी चंदन का पतला तिलक लगाते हैं। ये सिर पर पीले रंग की पगड़ी बाधते हैं, जिसके नीचे भी पीले रंग की एक नोक दार टोपी होती है।

(१) चरणदास—इनका जन्म मेवात प्रदेश के डहरा नामक ग्राम में वि० सं० १७६० के लगभग हुआ था। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण और कुछ दूसर बनिया बतलाते हैं। इनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का कुंजो था। जब ये सात वर्ष के थे तब इनके पिता घर छोड़ कर कहीं चले गये जिससे अपनी माता के साथ ये भी अपने नाना के घर दिल्ली में जाकर रहने लगे। कहते हैं कि वहीं १६ वर्ष की आयु में शुक्रदेव मुनि ने इन्हें शब्दमार्ग का उपदेश दिया। बारह वर्ष तक गुरुपदिष्ट मार्ग से साधन अभ्यास कर बाद में चरणदास ने लोगों को उपदेश देना प्रारंभ किया। इन्होंने चरणदासी पंथ चलाया और अपने पीछे १२ शिष्य छोड़ कर वि० सं० १८१८ में परलोक सिधारे, जिनकी गद्दियाँ आज भी विभिन्न स्थानों में चल रही हैं। चरणदास जी ने १४ ग्रंथों की रचना की। इनके नाम ये हैं :—

(१) अष्टांग योग (२) नासकेत (३) संदेह सागर (४) भक्ति सागर (५) हरि प्रकाश टीका (६) अमर लोक खंड धाम (७) भक्ति पदार्थ (८) शब्द (९) मनविरक्त करन गुटका (१०) राम माला (११) ज्ञान स्वरोदय (१२) दान लीला (१३) ब्रह्म ज्ञान सागर (१४) कुरुक्षेत्र की लीला।

उदाहरण :—

मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान ।
चरणदाम घायल गिरे, तन मन बोधे प्रान ॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट ।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट ॥
फडुवा बचन न बोलिये, तन सों कष्ट न देय ।
अपना सा सब जानि के, बनें तो दुख हरि लेय ॥

(२) दयाबाई—ये महात्मा चरणदास की शिष्या थीं और उन्हीं के गांव में पैदा हुई थीं। सं० १७१० और सं० १७७१ के बीच किसी समय इनका जन्म हुआ था। इन्होंने दयाबोध और विनय मालिका नामक दो ग्रंथों की रचना की। दयाबोध की रचना सं० १८१८ में हुई थी। इस संबंध में इन्होंने स्वयं अपने ग्रंथ में लिखा है।

संवत् ठारा मै समै, पुनि ठारा गये बीति ।

चैत सुदी तिथि सातवीं, भयो ग्रंथ सुभ रीति ॥

दयाबाई की कविता के विषय हैं—गुरु महिमा, प्रेम का अंग, मूर का अंग, सुमिरन का अंग इत्यादि। इनकी कविता में दैन्य और वैराग्य की प्रधानता है और उस पर इनके उच्चादर्श एवं स्त्री सुलभ कोमलता की छाप लगी हुई है। इनके चार दोहे हम नीचे देते हैं :—

प्रेम पंथ है अटपटो, कोई न जानत वीर ।

कै मन जानत आपनौ, कै लागि जेहि पीर ॥

निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार ।

मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन-प्राण आधार ॥

नहिँ सँजम नहिँ साधना, नहिँ तीरथ व्रत दान ।

मात भरोसो रहत है, उयों बालक नादान ॥

सीस नवै तो तुमहिँ कूँ, तुमहिँ सँ भावूँ दीन ।

जो भ्रगरूँ तो तुमहिँ सूँ, तुम चरनन आधीन ॥

(३) सहजो बाई—इनका जन्म सं० १८२० के लगभग मेवात प्रदेश के डहरा नामक गाँव में एक दूसरे वैश्य के घर में हुआ था। दयाबाई की तरह ये भी महात्मा चरणदास की शिष्या थीं। इनके पिता का नाम हरिप्रसाद बतलाया जाता है। सहजोबाई ने अपने गुरु चरणदास की बड़ी महिमा गाई है और उन्हें भगवान से भी ऊँचा माना है। इनकी रचना सरल एवं उल्लास पूर्ण है और उसमें प्रेम की प्रधानता है।

इनकी कविता का नमूना देखिये :—

प्रेम दिवाने जे भये, मन भयो चकनाचूर ।

छकै रहै घूमत रहै, सहजो देख हजूर ॥

साइन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रङ्ग ।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसङ्ग ॥
अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजारि ।
सहजो नन्हों बाकरी, प्यार करै संपार ॥

(३) निरंजनी पंथ

यह पंथ हरिदास जी से चला है। इनके अनुयायी निरंजन निराकार की आराधना करते हैं। इनमें भी कुछ तो घरवारी और कुछ निहंग हैं। घरवारी गृहस्थियों के से कपड़े पहिनते और गामानन्दी तिलक लगाते हैं। निहंग खाकी रंग की गुदड़ी गले में डाले रहते हैं और माँग कर खाते हैं। कोई कोई निरंजनी साधु गले में सेली भी बाँधते हैं। पहले ये लोग मूर्ति-पूजा नहीं करते थे, पर अब करने लग गए हैं। मारवाड़ राज्य में डीडवाने के पास गाढ़ा नामक एक स्थान है, जहाँ हरसाल फाल्गुन सुदी १ से १२ तक मेला भरता है। इस अवसर पर इस पंथ के बहुत से साधु यहाँ इकट्ठे होते हैं, जिन्हें हरिदास जी की गुदड़ी के दर्शन कराये जाते हैं। गाढ़ा निरंजनियों का प्रधान केन्द्र है। यहाँ इनके महन्त और साधु रहते हैं। हरिदास जी के ५२ शिष्य थे जिनसे हरिदासोत, पूरणदासोत, अमरदासोत, नारायणदासोत आदि कई थामे स्थापित हुए। इन में से बहुत से अभी तक विद्यमान हैं।

(१) हरिदास—इनके जन्म, वंश, माता, पिता आदि का विवरण अंधकार में है। इनकी जाति के संबन्ध में भी मत की विभिन्नता है। कोई इन्हें बीदा राठोड़ और कोई जाट बतलाते हैं। परन्तु यह तो निश्चय है कि ये एक व्यक्तित्व संपन्न महात्मा और सहृदय कवि थे। इनके नीचे लिखे ग्रन्थों का पता है :—

(१) भक्त विरदावली (२) भरथरी संवाद (३) साखी (४) पद (५) नाम माला ग्रन्थ (६) नाम निरूपण ग्रन्थ (७) व्याहलो (८) जोग ग्रन्थ और (९) टोडरमल जोग ग्रन्थ। इनका देहान्त सं० १७०२ के आस पास हुआ।

इनकी कविता का नमूना नीचे उद्धृत है :—

भूख दूख संकट सहै, सहै बिड़ाणा भार ।
 हरीदास, मौनी बलद, वासूँ करै पुकार ॥
 घर आईं निरभै भई, डाव पड़्या यूँ होय ।
 हरीदास ता सार कूँ, पाप्मा लगै न कोय ॥
 जोहा जल सूँ धोइये, तब लग कोटी खाय ।
 हरीदास पारस मिल्याँ, मूँधे मोल बिकाय ।

पंचम अध्याय



(उत्तरकाल)

सत्रहवीं शताब्दी के बाद उन्नीसवीं शताब्दी तक का दो सौ वर्ष का समय राजस्थानी साहित्य के इतिहास में उत्तर काल कहा जा सकता है। इस काल में भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से भारी परिवर्तन हुए। इस समय के अधिकांश कवियों की भाषा डिंगल नहीं, बल्कि ब्रजभाषा थी और उनकी कविता के विषय थे कृष्ण। राधा-कृष्ण की प्रेम लीला को लेकर कवियों ने बहुत से ग्रंथ तथा फुटकर कवित्त, सवैया, पद आदि बनाये जिनमें शृङ्गार रस की प्रधानता रही। अनेकों रीति ग्रन्थों का निर्माण भी इस काल में हुआ। कुछ कवियों ने वीर रस में भी कविताएँ कीं और कुछ कवि ऐसे भी हुए जिनकी तुलना भारत के किसी भी बड़े से बड़े कवि से हो सकती है। इनमें विहारी, वृन्द और नागरीदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

राजा महाराजाओं का देश होने से नरकाव्यों के लिखने की परंपरा का अनुकरण इस काल में थोड़ा बहुत होता रहा और सूरजप्रकाश, राजरूपक, राज विलास, हंमीर रासो, ग्रन्थराज, सुजान चरित्र जैसे ग्रन्थों का प्रणयन हुआ भी, पर ये ग्रन्थ इस समय की जन साधारण की चित्त-वृत्तियों के द्योतक नहीं माने जा सकते। क्योंकि, इस तरह के ग्रन्थ कवियों के उनके आश्रयदाताओं की जीवन-घटनाओं के इतिवृत्त मात्र हुआ करते थे; और जैसे ही समाप्त होते, राजकीय इतिहास भण्डारों की शोभा बढ़ाने

के लिये रख दिये जाते थे। जन साधारण से इनका लगाव कहने मात्र को भी न होता था।

(१) महाराजा जसवंतसिंह जी—राठोड़ कुलाभरण महाराजा जसवन्त सिंह जी महाराजा गजसिंह जी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६८३ की माघ वदि ४ को बुरहानपुर में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध अमर सिंह राठोड़, जिन्होंने बादशाह शाहजहाँ की भरी सभा में बख्शी सलावतख़ां को मारा था, इन्हीं के भाई थे। स्वेच्छाचारी एवं उद्धत प्रकृति होने के कारण महाराजा गजसिंह जी ने अमरसिंह को देश निकाला दे दिया था। इसलिये उनके बाद जसवन्त सिंह जी ही मारवाड़ की गद्दी पर बैठे। राज्याभिषेक के समय इनकी अवस्था १२ वर्ष की थी। अतः बादशाह शाहजहाँ ने शाही मनसबदार आसोप के ठाकुर कृपावत राजसिंह को इनकी शिक्षा तथा मारवाड़ की देख-भाल के लिये नियुक्त किया। ये बड़े वीर, साहसी और रणकुशल व्यक्ति थे। मुगल सिंहासन को प्राप्त करने के लिये जब शाहजहाँ के पुत्रों में भगड़ा हुआ, इन्होंने सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र दारा का पक्ष लिया था। क्योंकि राज्य का वास्तविक अधिकारी यही था। इसलिये औरङ्गज़ेब इनसे बहुत कुढ़ता था। इनका बिगाड़ तो वह कुछ भी न सका, पर अपने राज्य से दूर रखने के लिये उसने इन्हें काबुल का गवर्नर बनाकर उधर भेज दिया। वहीं वि० सं० १७३५ की पोष वदि १० को इन्होंने अपनी देहलीला समाप्त की। इनकी मृत्यु का समाचार जब औरङ्गज़ेब के पहुँचा तब उसके आनंद का पारावार न रहा और हर्ष से उल्लस कर उसने कहा :—

“दुर्वाज्ञा कुफ़ शिकस्त”

अर्थात्—आज कुफ़ (धर्म विरोध) का दरवाज़ा टूट गया।

महाराजा जसवन्त सिंह जी का साहित्यिक जीवन उनके ऐतिहासिक और राजनैतिक जीवन से किसी अंश में कम महत्वपूर्ण न था। प्रख्यात वीर होने के साथ ही साथ ये प्रतिभाशाली साहित्य-सेवी भी थे। ये डिंगल-पिंगल के पूर्ण ज्ञाता एवं मर्मज्ञ कवि थे और दानी तथा परोपकारी भी पूरे थे। कवियों और विद्वानों का जैसा आदर इन्होंने किया वैसा

क्या कोई नृपति कर सकता है। ये जैसे वीर थे, उससे कहीं अधिक कविता करने में निपुण थे। इनके रचे भाषा ग्रंथों के नाम ये हैं :—

(१) भाषा भूषण (२) सिद्धान्त बोध (३) सिद्धान्त सार (४) अनुभव प्रकाश (५) अपरोक्ष सिद्धान्त (६) आनन्द विलास (७) चंद्र प्रबोध नाटक (८) पूजीजसवन्त संवाद और फुटकर दोहा, कुण्ड-लिया आदि ।*

जसवन्त सिंह जी हिन्दी-साहित्य में अलङ्कारों के एक विशिष्ट आचार्य समझे जाते हैं। यही एक ऐसे महाशय थे जो यथार्थ में आचार्य रूप से साहित्य क्षेत्र में आये। इनके तत्त्व ज्ञान सम्बन्धी ग्रंथ तो विशेष लोक-प्रिय नहीं है, परन्तु भाषा-भूषण का काव्य प्रेमियों में बड़ा आदर है। यह ग्रंथ जयदेव कृत चन्द्रालोक की छाया तथा शैली पर लिखा गया है। पर कवि ने अपने मस्तिष्क तथा दूसरे अलङ्कार ग्रंथों से भी सहायता ली है। यह एक उच्च कोटि का अलङ्कार ग्रंथ है। कुल मिलाकर इसमें २१३ दोहे हैं। भाषाभूषण की सबसे बड़ी विशेषता है वर्णन की संक्षिप्तता। प्रायः एक ही दोहे में अलंकार का लक्षण एवं उदाहरण देकर कवि ने अपने अलंकार विषयक ज्ञान और अपनी काव्यपटुता का अच्छा परिचय दिया है। केशवदास ने अपने ग्रन्थ कवि प्रिया में उपमा, उत्प्रेक्षा, यमकादि के कई भेद-उपभेद कहकर विषय का बहुत जटिल बना दिया है। इसीलिए उसका प्रचार भी बहुत कम है। परन्तु भेद-उपभेद के पचड़े में न पड़कर जसवन्त सिंह जी ने अलंकारों के मुख्याङ्गों का स्पष्टतः समझाया है, और वह भी अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य ढंग से। ग्रन्थ के आदि में नायक-नायिका भेद तथा रसों पर भी थोड़ा सा प्रकाश इन्होंने डाला है। पर इस सम्बन्ध के दूसरे ग्रन्थों—केशव की कविप्रिया, मतिराम का रसरज, पद्माकर का जगद्धिनोद और बेनी प्रवीन के रसतरङ्ग—को देखते हुए यह प्रायः नहीं के बराबर है। इनकी कविता देखिये :—

(असङ्गति)

तीन असंगति काज अरु, कारन न्यारे ठाम ।

और ठौर हीं कीजिए, और ठौर को काम ॥
 और काज आरम्भिए, और करिए दौर ।
 कोयल मदमाती भई, झूलत अम्बा मौर ॥
 तेरे अरि की अंगना, तिलक लगायौ पानि ।
 मोह मिटायो नाहिं प्रभु, मोह लगायो आनि ॥

(विषम)

विषम अलंकृति तीन विधि, अनमिलते को संग
 कारन को रँग और कजु, कारज औरै रंग ॥
 और भलो उद्यम किए, होन बुरो फल आइ ।
 अति कोमल तन तीय को, कहा विरह की लाइ ॥
 खङ्गलता अति स्याम तैं, उपजी कीरति सेत ।
 सख लायो घनसार पै, अधिक ताप तन देत ॥

(२) बिहारीलाल—ये माथुर चौबे थे और खालियर के निकट बसुवा गोविन्दपुर के रहने वाले थे । इनका जन्म अनुमान से सं० १६६० में और देहान्त वि० सं० १७२० में हुआ था । इनकी बाल्यावस्था बुंदेलखंड में व्यतीत हुई और युवावस्था में ये कुछ दिन अपनी ससुराल मथुरा में रहे थे । ये जयपुर के मिर्जा राजाजयसिंह (सं० १६८४—१७२४) के दरबार में रहा करत थे, जिनकी ओर से प्रति दोहे पर इन्हें एक एक अशरफी मिलती थी । अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह की प्रशंसा में भी बिहारी ने दो चार दोहे कहे हैं । इनमें से एक यह है :—

यौं दल काढ़े बलखतैं, तौं जयसिंह भुवाल ।

उदर अवासुर कै परै, ज्यौं हरि गाइ गुवाल ॥

अपने जीवन काल में बिहारी ने सिर्फ एक ही ग्रंथ, बिहारी सतसई, लिखा जो संसार की स्थायी संपत्ति, भारतीय काव्य-कला का उत्कृष्ट नमूना और हिन्दी-भाषा-भाषियों के गौरव की वस्तु माना जाता है । बिहारी सतसई की काव्योच्चता और लोकप्रियता का अनुमान हमें इसी से हो सकता है कि इस पर सौ से अधिक टीकाये-तो हो चुकी हैं और अभी तक भी यह क्रम जारी है । बिहारी की कविता का मुख्य विषय है शृङ्गार, पर नीति, भक्ति

वैराग्य आदि पर भी इन्होंने कुछ कहा है और बहुत अच्छे ढंग से कहा है-
अपूर्व काव्य-कौशल और अद्वितीय माधुर्य, बिहारी की कविता के प्रधान
गुण हैं । और गहरी तो वह इतनी है कि ज्यों २ हम उसकी गहराई तक
पहुँचने का प्रयत्न करते हैं, त्यों २ वह अधिकाधिक गहरी होती जाती है ।
फिर नायक नायिकाओं के हृदयस्थ भावों का विश्लेषण करने में तो बिहारी
ने कमाल ही कर दिया है । इस प्रश्न में विश्व-कवि शेक्सपियर बहुत निपुण
समझे जाते हैं । अतएव उनकी तुलना में बिहारी का चमत्कार देखिए ।

रोज़ेलिंड की सखी सीलिया अपने प्रेम पात्र ऑरलैंडो से मिल कर
वापस आती है । उस समय प्रिय-संदेश के सुनने में आतुर रोज़ेलिंड पागल सी
हो जाती है, और सीलिया से कहती है कि यदि नायक से मिलने के सब
समाचार उसने फौरन ही न कहे तो वह उसमें इतने प्रश्न करेगी कि जिनमें
सारा उत्तरी सागर भर जायगा । पर उसकी उत्सुकता को बढ़ाने के लिए
सीलिया फिर भी मौन ही रहती है । इसपर रोज़ेलिंड प्रश्नों की झड़ी
लगा देती है :—

What did he when thou saw'st him ? What said
he ? How looked he ? Where in went he ? What makes
he here ? Did he ask for me ? Where remains he ?
How parted he with thee ? And when shalt thou see
him again ? Answer me in one word ?

ऐसी ही दुविधावस्था में बिहारी की नायिका भी है । नायिका की सहेली
कृष्ण से मिलकर घर आती है । इस पर बिहारी लाल लिखते हैं—

फिरि फिरि ब्रूझति कहि कहा, कह्यौ साँवरे गात ।

कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यों बात ॥

प्रसंग दोनों का एक है । बिहारी की तरह शेक्सपियर ने भी
स्त्री-हृदय के उस स्थल पर हाथ डाला है जो सब से कमज़ोर है !
पर जिस समय रोज़ेलिंड के मुँह से शेक्सपियर प्रश्न करवाते
हैं, उनकी कल्पना-शक्ति कुन्द हो जाती है और उनकी क्लम से
कुछ ऐसे प्रश्न निकलते हैं जिनमें रस, चमत्कार, वाक्यविदग्धता आदि

कुछ भी नहीं है। वस्तुतः शेक्सपियर के ये प्रश्न परीक्षा पत्र में दिए हुए प्रश्नों के सदृश जटिल और शुष्क प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत बिहारी नारी हृदय को टटोल कर बाहर निकल आते हैं और सारी बात को बहुत मंजूस, बहुत हृदय ग्राही ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिसमें व्यंग्य है, व्यञ्जना है और है मार्मिक भाव। निःसन्देह अंगरेज़ कवि के प्रश्न संख्या में अधिक हैं। पर सब से महत्व पूर्ण प्रश्न को तो वे फिर भी भूल ही गए हैं, जिसका उल्लेख बिहारी ने अपने दोहे के अन्तिम चरण में किया है—‘अली चली क्यों बात’। हे सखी मेरी बात चली कैसे? मेरा प्रसंग आया क्यों? मच पूछिए तो यही कवि हृदय की मार्मिक अनुभूति है, काव्य कौशल की अंतिम सीमा है।

अस्तु, बिहारी की कविता पर हिन्दी में एक अलग साहित्य बन गया है और इसलिए यहाँ पर यह कहना कि इनकी कविता इतनी गम्भीर, इतनी प्रौढ़ तथा इतनी भाव-पूर्ण है, एक तरह से पिष्ट-पेषण ही होगा। नीचे हम बिहारी के कुछ दोहे देते हैं :—

मेगे भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।

जातन की भौँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ ॥१॥

अजौं तरयौना हीं रहयौ, श्रुति सेवत इक रंग ।

नाक-बास बेसरि लहयौ, बसि मुकुतन कै संग ॥२॥

बेधक अनियारे नयन, बेधत करि न निषेधु ।

बरबट बेधत मो हियौ, तो नामा कौ बेधु ॥३॥

नेहु न नैन नु कौ कछु, उपजी बड़ी बलाइ ।

नीर-भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ॥४॥

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल ।

अली कली ही सों बँध्यो, आगैं कौन हवाल ॥५॥

कहा लड़ैते दग करे, परे लाल बेहाल ।

कहुँ मुरली कहुँ पीत पटु, कहुँ मुकटु बनमाल ॥६॥

हौं हीं बौरी बिरह बस, कै बौरो सब गाऊँ ।

कहा जानिए कहत हैं, ससिहिं सीतकर नाऊँ ॥७॥

सुनत पथिक-मुँह माँह निसि, चलति लुवै उहि गाम ।
 बिनु बूझै बिनुही कहै, जियति बिचारी बाम ॥८॥
 स्वारथु सुकृतु न श्रमु वृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
 बाज परारौ पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ॥९॥
 दग उरभूत दूटत कुटुम, जुरत चतुर बित प्रीति ।
 परति गौँठि दुरजन हियै, दर्ई नई यह रीति ॥१०॥
 वे न हूँ नागर बदी, जिन आदर तो आब ।
 फूल्यौ अनफूल्यौ भयो, गवई गौँव गुलाब ॥११॥
 बतरस लालच लाल की, मुरलीधरी लुकाइ ।
 सौँह करै भौँहन हँसै, दैन कहै नटि जाइ ॥१२॥
 बिरह जरी लखि जी गननु, कह्यौ डहि कै बार ।
 अरी आउ भजि भीतरी, बरसत आनु अँगार ॥१३॥
 पटु पाँखे भखु काँकरै, सपर परेई संग ।
 सुखी परेबा पहुमि मै, एकै तुँहीं बिहंग ॥१४॥
 चाह भरीं अति रस भरीं, बिरह भरीं सब बात ।
 कोरि संदेसे दुहुन के, चले पौरिलौ जात ॥१५॥
 कर लै सूँघि सराहि हूँ, रहै सबै गहि मौनु ।
 गंधी अंध गुलाब कौ, गवई गाहकु कौनु ॥१६॥
 कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि ।
 लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि ॥१७॥
 अनियारे दीरघ दगनु, किती न तरुनि समान ।
 वह चितवनि औँरै कछु, जिहि बस होत सुजान ॥१८॥

(३) नरहरिदास—ये रोहड़िया जाति के बारहट लकवा जी के पुत्र थे ।
 इनका रचना काल वि० सं० १७१० के आस-पास ठहरता है । ये जोधपुर
 नरेश महाराजा जसवंत सिंह जी के आश्रित थे । इनका जन्म मारवाड़ राज्य
 के मेड़ते परगने के टहला नामक ग्राम में हुआ था । इनके कोई सन्तान न
 थी । इस सम्बन्ध में इनकी भावज ने इन्हें एक दिन जब ताना दिया तब क्रुद्ध
 होकर इन्होंने उससे कहा कि सन्तान तो मेरे नहीं है जिससे मेरे मरने के

पश्चात् मेरे बंश का नाम दुनिया में रह सके, पर विधाता ने मुझे कविता करने की अलौकिक शक्ति प्रदान की है जिसके द्वारा मैं अपने नाम को सदैव के लिये संसार में अमर कर दूँगा। इसी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिये इन्होंने अवतार चरित्र की रचना की, जिससे अभी तक इनका नाम चला आता है।

अवतार चरित्र ज्ञान सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हो चुका है, जो बहुत अशुद्ध है। इसमें ५२० पृष्ठ हैं। इनमें से ३२० पृष्ठों में रामावतार का और शेष में कृष्णावतार, कपिलावतार, बुद्धावतार आदि का संक्षिप्त वर्णन है। ग्रन्थ की भाषा सरल, शब्दाडम्बर-रह्य एवं व्यवस्थित है, और कथा-प्रसंग के अनुकूल छंदों के चुनने में कवि ने अच्छी पटुता प्रदर्शित की है। ब्रज-भाषा पर इतना अच्छा अधिकार राजस्थान के बहुत कम चारण कवियों की रचनाओं में पाया जाता है। अवतार चरित्र को पढ़ कर कोई यह नहीं कह सकता कि यह एक राजस्थान के चारण कवि की कृति है। पर नरहरिदास के भावों में मौलिकता का प्रायः अभाव सा है। मालूम होता है कि तुलसी के रामचरित मानस तथा केशव की रामचन्द्रिका को सामने रखकर कवि ने इस ग्रंथ की रचना की है। क्या रचना पद्धति, क्या घटना क्रम, क्या भाव-व्यंजना और क्या उक्ति चमत्कार सभी रामचरित मानस से मिलते जुलते हैं। जहाँ कहीं रामचरित मानस से विभिन्नता है, वहाँ केशव की रामचन्द्रिका का अनुकरण किया गया है—

चाप चढ़ावन को गनै, सकै न अबनि छुड़ाइ ।
भई उर्वी निर्वीर अब, कह्यौ जनक अकुलाइ ॥
जो जानत निर्वीर भुव, तौ न करित पन पहु ।
पावक प्रजलत गोह अब, तब कहँ पहुँचत मेहु ॥
रही कुँवारी कन्यका, लिखत विरंच ललार ।
पन कीनौ जो परिहरौ तो उपहास संसार ॥

—अवतार चरित्र

रहा चढ़ाउब तोरब भाई, तिल भरि भूमि न सकै छुड़ाई ॥
अब जनि कोउ साँखै भट मानी, वीर विहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहु, लिखा न विधि वैदेहि विवाह ॥

सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ, कुँवरि कुँवारि रहै का करऊँ ॥
जे जनतेऊँ बिन भट महि भाई, तौ प्रण करि करतेऊँ न हँसाई ॥

रामचरित मानस

कहि पूछत तुम मुद्रिका, होत मौन इहि हेत ।
नाम विपजंय आपनै, तिहि उत्तर नहि देत ॥

—अवतार चरित्र

तुम पूछत कहि मुद्रिकै, मौन होत यहि नाम ।
कंकन की पदवी दई, तुम बिनु या कहँ राम ॥

—राम चन्द्रिका

अवतार चरित्र के सिवा नरहरि दास कृत निम्न लिखित दूसरे ग्रंथों का भी पता लगा है:—

- (१) दशम स्कन्ध भाषा (२) रामचरित्र कथा (३) अहिल्या पूर्व प्रसङ्ग ।
(४) बानी (५) नरसिंह अवतार कथा (६) अमरसिंहजीरा दूहा ।

इनकी कविता देखिये:—

जादिन आन उपाइ थकै सब, ता दिन भाइ सहाइ करैगो ।
शोक अलोक विलोकि त्रिलोक रह्यो भव पुरसु दूरि टरैगो ॥
जैसे चढ़ै गज राज की पीठि, त्यों कूकर वादि हिं भूसि मरैगो ।
जौं करुणा मय स्याम कृपा तो, कहा जग की अकृपा बिगैगो ॥

कंटक कपूर भए कौतुक भयानक से,
हार अहि भए अधियार भयो आरसौ ।
नाहर से नूपुर पहार से पहर भए,
सेज समसान भए, भूसन सुभारसौ ॥
आक सो तंबोर सिरवाइसी सुबास सबै,
चीर भए कौंड़ी से, अंजन अंगार सौ ॥
विपति दुसह ऐसी कपि अवधेस विना,
प्राण भए पाहुनै से प्रेम भौ प्रहार सौ ॥

(४) कविवरवृन्द—वृन्द सतसई के रचयिता कविवर वृन्द के पूर्व पुरुष बीकानेर के रहने वाले थे । परन्तु किसी कारण विशेष से इनके पिता श्री रूप

जी वहाँ से मेड़ते में आकर बस गये थे । वृन्द जी का पूरा नाम वृन्दावन जी था । ये जाति के शाकद्वीपी भोजक ब्राह्मण थे । इनका जन्म वि० सं० १७०० आश्विन शुक्ला २, गुरुवार को मेड़ते में हुआ था । इनके दादा का नाम सह-देव, माता का कौशल्या और पत्नी का नवरंगदे था । ये लड़कपन से ही सुशील, गम्भीर और तीव्र-बुद्धि थे । इनके पिता श्री रूप जी स्वयं तो बहुत पढ़े लिखे न थे, पर इस ओर इनके चित्त की प्रवृत्ति और रुचि विशेष थी । इसलिये वृन्द जब दस वर्ष के हुए, तब उन्होंने इन्हें विद्याध्ययन के निमित्त काशी भेज दिया । वहाँ तारा जी नामक एक पंडित के पास रहकर इन्होंने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, गणित, दर्शन आदि में पूर्ण योग्यता प्राप्त करली और कविता करना भी सीखा । काशी से लौटकर जब ये अपने स्थान मेड़ते में आये, तब लोगों ने इनका बड़ा सम्मान किया और जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह जी ने इन्हें मेड़ते में कुछ भूमि पुण्यार्थ दी तथा बादशाह औरंगजेब के कृपापात्र वज़ीर नवाब मुहम्मदख़ाँ से इनका परिचय करा दिया, जिनकी कृपा से शनैः शनैः शाही दरबार में भी इनका प्रवेश हो गया ।

कहते हैं, जिस समय नवाब मुहम्मदख़ाँ इन्हें शाही दरबार में ले गये उस समय इनकी परीक्षा लेने के हेतु औरंगज़ेब ने इन्हें यह समस्या दी:—

“पयोनिधि पैरथौ चाहै मिसरी की पुतरी”

वृन्द ने उसी वक्त ईश्वर की महत्ता विषयक एक कविता रच कर सुनाई । परन्तु बादशाह को वह अधिक पसन्द न आई, जिससे उन्होंने उक्त समस्या को लेकर उसकी निम्नलिखित पूर्ति फिर की :—

कुंभज करूर ताकी कठिन करूर दीठि,
देखि कै उड़ानौ न हलानौ इत उतरी ।

पर हर लहर गहर गाज छाँड़ि बई,
वृन्द कहँ भई गति अदीठ अश्रुतरी ॥

अमल मुकुर कैसो अचल सुभाव रझो,
रझौ दबि भई बात ऐसी अश्रुतरी ।

है कर निसंक अंक ऐसो दाव पाय क्यौं न,
पयोनिधि पैरथौ चाहै मिसरी की पुतरी ॥१॥

अर्थात्—कुम्भज ऋषि के डर से अपनी स्वाभाविक चंचलता को छोड़ कर समुद्र दर्पण के समान स्वच्छ हो गया । ऐसा मौका पाकर मिश्री की पुतरी समुद्र पार हो गई, क्योंकि मिश्री को धुला देने का गुण अब समुद्र के जल में न रहा ।

औरंगज़ेब काव्य का विरोधी था । कवियों को न वह धन देता था और न प्रोत्साहन । परन्तु वृन्द की यह अनूठी उक्ति उस पर भी वार कर गई और उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा खूब ! खूब !! बादशाह ने वृन्द को बहुत सा धन दिया । उन्हें अपना दरबारी कवि बनाया और अपने ज्येष्ठ पुत्र शाहज़ादा मौज़्ज़म (बहादुर शाह) तथा पौत्र अज़ीमुश्शान का अध्यापक नियुक्त कर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई । कालान्तर में जब अज़ीमुश्शान बंगाल और उड़ीसा का सूबेदार होकर उधर गया तब अपने साथ वृन्द को भी ले गया । तभी से ये उसके साथ रहने लगे । हिन्दी साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति वृन्द सतसई अज़ीमुश्शान ही के आग्रह एवं गुण ग्राहिता का फल है । वि० सं० १७६४ के लगभग किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह जी ने बहादुर शाह से वृन्द को मांग लिया और अच्छी जागीर देकर उन्हें किशनगढ़ में बसाया । तब से इनके वंशज किशनगढ़ में रहते हैं ।

वृन्द का स्वर्गवास वि० सं० १७८० में भादों वदि ३ को हुआ था । वृन्द एक सहृदय कवि, ईश्वर भक्ति एवं आदर्श चेता व्यक्ति थे । इनके ग्रंथों से स्पष्ट मालूम होता है कि संसार के घात-प्रतिघातों का इन्हें गहरा अनुभव था और गुणाढ्य, सुविद एवं बहु श्रुत होने के सिवा ये बहु भाषा ज्ञानी भी थे । शुद्ध और स्वाभाविक अनुभूति के आधार पर रची हुई इनकी वीर, शांत एवं शृङ्गाररस-पूर्ण कविताएँ हिन्दी-साहित्य के विभव को बढ़ाने वाली हैं । भाषा वृन्द कवि की ब्रजभाषा है जो रसखान एवं घनानंद की भाषा की तरह विशुद्ध, परिमार्जित एवं व्याकरण सम्मत तो नहीं है, पर है वह इतनी सरल, ललित और चुभती हुई कि पढ़ते ही मनमुग्ध हो जाता है:—

मोहनि मूरति सोभित श्री नग,

भूषण ज्योति उदोत निहारू ।

सुन्दरता सुख-धाम सुधामय,

वृन्द विशेष यहै उर धारू ॥

सब विराजत या तन की छबि ,
 और कहा उपमा जो विचारु' ।
 कोटिक काम सुधाकर कोटिक,
 कोटिक बेर समेट के वारु' ॥१॥

वृन्द के जीवन का अधिक भाग मुस्लिम-वातावरण में व्यतीत हुआ और प्रधानतः मुसलमान अधिकारियों के विनोदार्थ ही इन्होंने अपनी लेखनी चलाई। परन्तु फिर भी इन्होंने कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं किया जिससे हिन्दू धर्मावलम्बियों की अल्पता सूचित होती हो। फुटकर कवित्त सवैयों के अतिरिक्त वृन्द ने नीचे लिखे ग्रंथों की रचना की, जिनमें से वृन्द सतसई को छोड़कर सभी अप्रकाशित हैं।

(१) वृन्द सतसई। यह इनका प्रधान ग्रंथ है। इसका दूसरा नाम दृष्टान्त सतसई है। मुगल सम्राट औरङ्गजेब के पौत्र शाह अज़ीमुशान के विनोदार्थ इसकी रचना का प्रारम्भ कवि ने वि० सं० १७६१ में ढाका शहर में किया था। इसमें कुल मिलाकर ७१३ दोहे हैं और प्रत्येक दोहा सद्भिचार-पूर्ण एवं भावापन्न है तथा उससे वृन्द की कवित्व शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। ज्ञान, नीति तथा उपदेश सम्बन्धी विचारों को वृन्द ने ऐसे मन-मोहक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित किया है कि वे तुरन्त पाठकों के हृदय में घर कर लेते हैं। प्रसाद-गुण की बहुलता होने से साधारण पढ़े लिखे लोग भी इन दोहों का मर्म समझ लेते हैं और स्थान स्थान पर उद्धृत कर अपने पक्ष एवं प्रसंग का समर्थन करते हैं। दोहे लोकोक्तियाँ बन गई हैं। हिन्दी साहित्य में अधुना सात-आठ सतसईयाँ प्रचलित हैं। काव्य प्रेमियों में सभी का यथेष्ट सम्मान भी है। परन्तु सर्वप्रियता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो बिहारी सतसई के अनन्तर वृन्द सतसई ही उत्कृष्ट रचना ठहरती है।

(२) यमक सतसई—इसमें सात सौ दोहे हैं। वृन्द सतसई में कवि ने भाव प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान रखा है। पर इसकी रचना उन्होंने कविता के कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों को सामने रख कर की है। यमक अलंकार की छटा एवंभाव और भाषा का सामंजस्य देखते ही बनता है।

(३) भाव पञ्चाशिका—पच्चीस दोहे और पच्चीस सबैयों के इस छोटे से ग्रंथ की रचना वि० सं० १७४३ में औरङ्गाबाद में हुई थी। इसमें मनो-भावों का बहुत चमत्कारपूर्ण वर्णन है। यद्यपि यह ग्रन्थ छोटा है तथापि इसकी रचना बहुत ही सरस और हृदयग्राहिणी है और वृन्द की भावुकता का परिचय देती है। भाषा भी इसकी बहुत परिमार्जित, प्रौढ़ और श्रुति मधुर है। इसकी रचना के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। जब वृन्द औरङ्गाबाद में थे तब वहाँ पर किसी काव्य-प्रेमी सज्जन ने कवियों की एक सभा की और कवि वृन्द को भी उसमें सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण दिया। जिस समय सब लोग इकट्ठे हो गए, वहाँ यह प्रश्न उठा कि इस सभा में सब से अच्छा कवि कौन है और आज कौन इसका सभापति बनाया जाय। बड़ी देर तक बहस हुई। जब कुछ भी तय न हो सका, तब उस सज्जन ने कहा कि जो आज की रात में सबसे अच्छी कविता कर के लायगा वही कवि-शिरोमणि समझा जायगा। रात भर में वृन्द ने यह ग्रंथ बनाया और प्रातःकाल होते ही सबों के सामने जाकर पढ़ा। वृन्द की कविता के सामने किसी दूसरे कवि का रङ्ग न जमा और वहाँ बहुमत से ये सर्वोत्कृष्ट कवि माने गये। वृन्द के शिष्य कृष्णगढ़ के मीर मुन्शी माधोदास ने भी अपने ‘शक्ति भक्ति प्रकाश’ में इस घटना की ओर संकेत किया है :—

कारज औ कारण तूँ विस्व विस्तारन है,
अखिल की पालक सुजोति चिदानन्द की।
तूँही गति, तूँही मति, तूँही सुख सगति है,
बिपति बिहंडनी बली है अनन्द की ॥
तेरेगुन गाइबे कौं विधि हूँ समर्थ नाहि;
तो कहा गति मेरी रसना मति मन्द की।
भक्तन की पति राखि ताके सुने गीत साखी,
पत राखी मेरता के बासी कवि वृन्द की ॥१॥

(४) शृङ्गार शिक्षा—दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब के वज़ीर नवाब मुहमदख़ाँ के पुत्र मिरज़ा कादरी, जो अजमेर का सूबेदार था, की कन्या को पातिव्रत धर्म की शिक्षा देने के निमित्त यह ग्रन्थ वि० सं० १७४८ में लिखा

गया था। ग्रन्थ के प्रारम्भ में वर और कन्या के लक्षण, उनके गुण-दूषण, उनकी सुन्दरता तथा उनके सम्बन्धियों के लक्षणों का वर्णन है। बाद में स्वकीया नायिका का पातिव्रत धर्म, नायिका, नवोढ़ा, मुग्धा, अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, आदि का विवरण है। तदनन्तर कवि ने १६ शृङ्गारों का बहुत ही सुन्दर, व्यवस्थित तथा काव्यकलापूर्ण वर्णन किया है। बहुतेरे कवियों के समान न तो इस ग्रंथ में भरती के शब्द एवं वाक्य हैं और न कहीं भावावेश में आकर कवि ने लोक मर्यादा का उलंघन किया है।

(५) वचनिका—कृष्ण गढ़ के नरेश महाराजा मानसिंह की आज्ञा से महाराजा रूपसिंह की ख्याति को अक्षय रखने के लिए वृन्द ने इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १७६२ में की थी। इसमें उस युद्ध का वर्णन है जो धौलपुर के मैदान में सं० १७१५ में बादशाह शाहजहाँ के पुत्रों दारा, शुजा, मुराद और औरङ्गजेबों में दिल्ली के तख्त के लिए हुआ था। यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। प्रारम्भ में कन्नौज के महाराज राव सीहा जी से लगाकर महाराजा रूपसिंह तक राठोड़ों की लगातार वंशावली देकर बाद में वृन्द ने रूपसिंह के शौर्य का वर्णन किया है। महाराजा रूपसिंह ने दारा का पक्ष लिया था। औरङ्गजेब की फौज को काटते काटते वे उसकी सवारी के हाथी तक जा पहुँचे, और वहाँ पैदल होकर हौदे की रस्सियाँ तख्तवार से काटने लगे। यह देख कर बहुत से आदमी उन पर टूट पड़े और उनके टुकड़े टुकड़े कर डाले। जैसा वीरतापूर्ण इतिहास है, वैसे ही वीरता पूर्ण भाषा में यह लिखा भी गया है। वीर रस का कवि ने ऐसा मौलिक, ओजपूर्ण और लोम हर्षण वर्णन किया है कि पढ़ते ही भुजाएँ फड़कने लगती हैं।

(६) सत्य स्वरूप—यह ग्रंथ वि० सं० १७६४ में बना था। यह वृन्द की अन्तिम रचना है। इसमें बादशाह औरंगजेब के मरने पर दिल्ली के तख्त के लिए शाहजादा मौज्जम (बहादुर शाह) आजम, कामबख्श आदि की लड़ाई का वर्णन है। इस युद्ध में कृष्णगढ़ के महाराज राजसिंह बहादुर शाह की ओर से लड़े थे। उनके हाथ से आजम शाह के पक्ष के नवाब व राज, महाराजा आदि लड़ने वालों के १७ हौदे खाली हुए जिनमें दतिया के राजा दलपत और कोटा के महाराज राजा रामसिंह मुख्य थे। इस लड़ाई की विजय का सुयश राजसिंह ही को मिला। इतिहास की लगाम को मानते हुए

भी कवि ने अपनी प्रतिभा से सत्यस्वरूप को एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रंथ बना दिया है। भाषा, भाव, छंद और शब्द विन्यास, सभी का इसमें अपूर्व सम्मिलन है। विस्तार में तो यह ग्रंथ वचनिका से बड़ा है ही, साथ ही उसकी अपेक्षा इसकी कविता भी अधिक पुष्ट और भावमयी है।

उपरोक्त छः बड़े ग्रन्थों के अतिरिक्त वृन्द लिखित पवन पचीसी, हितोपदेशाष्टक, भारत-कथा और हितोपदेश संधि, ये चार छोटे ग्रंथ और मिले हैं। इनकी कुछ कविताएँ नीचे उद्धृत की जाती हैं:—

आप बरद बाहन बरद, कर त्रिसूल हर सूल ।
अहितन अहितन हितन कर, सिव प्रभु सिव सुख मूल ॥
दीन बीनती दीन-पति, मानहु परम प्रवीन ।
हम से अपरार्धन को, करिये अपराधीन ॥
कुहुकि धूमि चूमै चुगै, रहै परेवी संग ।
अरे परेवा काम को, तू सुख लेत बिहंग ॥
रह्यौ सबूरी साधि कै, चतुर परेवा जानि ।
परी परेवी नीड़ दिव, कांकर साकर मानि ॥
रागी औगुन ना गनत, यहै जगत की चाल ।
देखो सब ही स्याम कूँ, कहत बाल सब लाल ॥
रस अनरस समक्षै न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ ।
बीछू मन्त्र न जानहीं, साँपहि डारे हाथ ॥

कोप अति आना मेदपाट पति सों रिसाना
चढ़ी जब सेना जहाँगीर जमराना की ।
थहराना अमर समर में न ठहराना
बाना बिसराना सुनि धमक निसाना की ॥
छोड़ छोड़ थाना रहा छप्पन में छाना छाना
दाना खाना की न सुधि रही ना खजाना की ।
कोपि कै किशन खैग खुरन सों खूँदि खूँदि
दाना दाना दाना कर डारी धर राना की ॥

पाऊँ जो हुकुम तो न लाऊँ बार एक पल
 जहाँ पाऊँ तहाँ ते' ले आऊँ हेरि हेरि कै ।
 गढ़ चूरि, गिरि चूरि, सुभटन लसकर तोरि
 सोधे करि डारों गज बाजि पेरि पेरि कै ॥
 सदन ते' बन मांहि, बन तैं छप्पन मांहि,
 छप्पन तैं घेरि औ घाटिन में घेरि घेरि कै ।
 रूप कहै खग तैं गुमान सों खिसानो करि
 फिरकी फिरत ज्यों फिराऊँ फेरि फेरि कै ॥
 नैननि की जोति जो लौं नीकै कै निहार हरि,
 सुन ले पुरान जो लौं सुनै तुव कान है ।
 रसना रसीली जो लौं रसत रसीले बैन,
 तो लौं हरि गुन गाय जो पै तूँ सुजान है ॥
 काँपे नाहिं कर तो लौं भली भाँति सेवा कर,
 पायन प्रदक्षना दे जो लौं बलवान है ।
 जरा जकरे तैं कहा करि हो कहत वृन्द,
 भज भगवान जो लौं देह सावधान है

पटु पराग पट पीत, सुखद सुंदर तन सोहत ।
 बंसी बंस बजाय, सुमन खग-मृग मन मोहत ॥
 करि बिलास रस केलि, लता ललिता पुञ्जन में ।
 सदन सदन संचरत, धीर बिचरत कुंजन में ॥
 जल न्हात पद्मिनी बास, हर, चढ़त सुविटप कदंब पर ।
 माधव स्वरूप माधव पवन, कहत वृन्द आनन्द कर ॥

(५) कुलपति मिश्र—ये माथुर चौबे थे । कोई २ इन्हें बिहारीसतसई के रचयिता—बिहारी लाल के भानजे बतलाते हैं । इनके पिता का नाम परशुराम था । ये आगरे के रहने वाले थे और जयपुर के महाराजा जयसिंह जी के पुत्र राम सिंह जी के आश्रित थे । इनका जन्म और मृत्युकाल अनिश्चित है । इन्होंने सात ग्रंथ बनाये, जिनमें रस-रहस्य बहुत प्रसिद्ध है:—

(१) दुर्गा भक्ति चन्द्रिका (२) द्रोणपर्व (३) गुण रस रहस्य (४) संग्राम सार । (५) युक्तितरंगिणी (६) नख शिख (७) रस रहस्य ।

कुलपति संस्कृत के भारी विद्वान थे । मम्मट के काव्य प्रकाश के आधार पर इन्होंने रस रहस्य की रचना सं० १७२७ में की थी । इसमें काव्यांगों का बहुत सुन्दर निरूपण है । कुलपति की भाषा शुद्ध ब्रज-भाषा है, पर प्राकृत-मिश्रित-भाषा के उदाहरण भी इनकी रचना में यत्र तत्र मिलते हैं । इन्होंने अपने आश्रयदाता रामसिंह जी की प्रशंसा में बहुत से छन्द दिये हैं, जिनमें अलंकारों का लक्षण-लक्ष्य-समन्वित बहुत रोचक स्पष्टीकरण है । अलङ्कारों में इन्होंने उपमा को मुख्य माना है । इनका एक उदाहरण:—

ऐसिय कुंज बनी छबि पुंज, रहै अलि गुंजत यौं सुख लीजै,
नैन विसाल हिये बन माल, बिलोकत रूप-सुधा भरि पोजै ।
जामिनि जाम को कौन कहै, जुग जात न जानिये ज्यौं छिन छीजै,
आनंद यों उमग्योई रहै पिय, मोहन को मुख देखिबो कीजै ॥

(६) मानकवि—इनके जन्म, वंश, माता, पिता आदि का वृत्तान्त ग्रंथकार में है । कुछ लोग इन्हें जाति के भाट और कुछ जैन यति बतलाते हैं । पर यह सब अनुमान ही अनुमान है । हाँ, इतना अवश्य निश्चित है कि ये राजस्थान के कवि थे, मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के समकालीन थे, और इन्होंने राज-विलास नामक एक काव्य-ग्रंथ बनाया था, जिसकी समाप्ति वि० सं० १७३० में हुई थी । पर इससे आगे जो कुछ भी इनके सम्बन्ध में कहा जाता है वह सब निराधार है ।

मान कवि का बनाया हुआ राज-विलास एक बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है । यह एक वीर रसात्मक काव्य है और अठारह विलासों अथवा अध्यायों में समाप्त हुआ है । ग्रंथारंभ में सीसोदिया वंश का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है और मुख्य कथा महाराणा राजसिंह की गद्दीनशीनी (वि० सं० १७०९) के बाद से शुरू होती है । इस ग्रंथ में महाराणा राजसिंह के राजस्व काल की प्रायः सभी प्रधान प्रधान घटनाओं का समावेश हो गया है, पर इसका अधिक भाग महाराणा राजसिंह तथा औरंगज़ेब के युद्ध-वृत्तान्तों से रंगा हुआ है ।

महाराणा राजसिंह ने मेवाड़ के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी सामग्री एकत्र करवाकर उसके आधार पर रणछोड़ भट्ट नामक एक पंडित से 'राजप्रशस्ति' नामक एक महाकाव्य संस्कृत में लिखाया था, जो राज समुद्र के बांध पर लगी हुई २५ शिलाओं पर खुदा हुआ है। यह संस्कृत काव्य अन्य काव्यों की तरह कवि कल्पना प्रसूत नहीं है, बल्कि इस में संवतों के साथ साथ ऐतिहासिक घटनाओं का विशद वर्णन है।* मानकृत राजविलास में वर्णित घटनाएँ इस राज प्रशस्ति महाकाव्य की घटनाओं से भी बहुत कुछ मेल खाती हैं। परन्तु एक इतिहासकार और कवि के क्षेत्र भिन्न भिन्न होते हैं; इसलिये एक इतिहास ग्रंथ तथा काव्य ग्रंथ में जितना अंतर होना चाहिये उतना राज प्रशस्ति महाकाव्य और राजविलास में भी है।

मान कवि एक प्रतिभावान कवि थे। अपने काव्य सम्बन्धी ज्ञान का इन्होंने बहुत ही मर्यादा के साथ प्रयोग किया है। इनकी भाषा सालंकार, वर्णन शैली सुखद तथा कविता कर्ण-मधुर है; और वीर रस के सिवा शृंगार, शान्त आदि रसों का निरूपण भी इन्होंने बहुत सफलता से किया है।

इनकी कविता का नमूना देखिये:—

राजसिंह महाराण पुहुविपत्ति अप्प कुंवरपन ।
 विपुल लगायो बाग वियो बसुधा नन्दन-वन ॥
 प्रवर कोटि तिन परधि खुंड सतपत्र कनक भर ।
 वृद्धि तहां वापिका कहीं सनमुख दत्तन कर ॥
 निजनगर उदयपुर निकट ते' अगिन कोन घां अक्खियै ।
 सब रितु विलास तसु नाम सति नयन सुमहल निरीखियै ॥
 ऊचलि गयो अगरो दन्द मच्यौ अति दिखलिय ।
 हाजीपुर परिहक डहकि लाहौर सु डुल्लिय ॥
 धरस लयौ रिनथंभ धसकि अजमेर सु धुज्जिय ।
 सुनौ भयौ सिरौंज भगग भैं लसा सुभज्जिय ॥
 अहमदाबाद उजैमि जन थाल मूंग ज्यों धरहरिय ।
 राजेसराणसुपयान सुनि पिशुन नगर खरभर परिचय ॥

(७) जोधराज—ये आदि गौड़ कुलोत्पन्न अत्रिगोत्रीय ब्राह्मण थे और अपने समय के प्रसिद्ध कवि होने के सिवा एक अच्छे ज्योतिषी भी थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था और अपने आश्रयदाता नीमराणा के अधिपति महाराज चन्द्रभानु की आज्ञा से इन्होंने हम्मीररासो लिखा, जो सं० १७८५ में समाप्त हुआ था—

चन्द्र नाग बसु पंचगिनि, संवत माधव मास ।

शुक्ल सत्रतिया जीवजुत, ता दिन ग्रंथ प्रकास ॥

हंमीर रासो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसमें चौहान कुलभूषण महाराज हंमीर की वंशावली, उनका अलाउद्दीन से वैर, उनकी वीरता, उनके युद्ध-कौशल, उनकी मृत्यु आदि का यथाक्रम तथा विस्तृत वर्णन है और लगभग १००० छन्दों में समाप्त हुआ है। रासो का ढांचा ऐतिहासिक है पर काव्योपयोगी बनाने की लालसा से कवि ने कथा-वस्तु में परिवर्तन भी यत्रतत्र किया है। हंमीर का जन्म जोधराज ने वि० सं० ११४१ में होना लिखा है, जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार हंमीर के आत्महत्या करने तथा अलाउद्दीन के समुद्र में कूद कर मर जाने की कथाएँ भी अनेतिहासिक और प्रमाण-शून्य हैं। हंमीर रासो में जोधराज ने तीन व्यक्तियों—हंमीर, अलाउद्दीन, तथा महिमाशाह, के चरित्रों का विकसित करने का उद्योग किया है और इसमें इन्हें अच्छी सफलता मिली है; विशेषतः हंमीर के चरित्र-चित्रण में। हंमीर जैसे वीर और स्वदेशाभिमानी पुरुष का जिस ढंग से वर्णन होना चाहिये उसी ढंग से रासो में हुआ है। हंमीर और अलाउद्दीन का स्वर्ग में सम्मेलन कराकर कवि ने पाठकों का ध्यान शायद हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर आकर्षित किया है। पर समझ में नहीं आता कि ऐसा करने से उनका वास्तविक अभिप्राय क्या था? यदि अलाउद्दीन जैसा नृशंस, हृदय-हीन तथा पतित मनुष्य भी मरने के पश्चात् स्वर्ग में पहुँचता है तो फिर नरक है किस के लिये?

हंमीर रासो एक वीररसप्रधान काव्य ग्रंथ है। पर शृंगार की अद्भुत छटा भी इसमें इधर उधर दीख पड़ती है। इससे मालूम होता है कि

जोधराज का शृंगार और वीर दोनों ही रसों पर अच्छा अधिकार था ।
 इन्होंने प्रकृति-वर्णन तथा ऋतु-वर्णन भी बहुत अच्छे ढंग से किया है ।
 इनकी कविता देखिये: —

मिले बंधु दोउ धाय । बहु हरष कीन सुभाय ॥
 अब स्वामि धर्म सुधारि । दोउ उठे वीर हँकारि ॥
 असमान लगिय सीस । मनौ उभै काल सदीस ॥
 इत कोप महिमा कीन्ह । हमीर नौन सुचीन्ह ॥
 उत मीर गभरू आय । मिलि सेख के परि पाँय ॥
 कर तेग वेग समाहि । रहि दूहँ सेन सचाहि ।
 कमान लीन सुहथ । जनु सार कार सुपथ ॥
 धरि स्वामि काज समथ । दोउ उभै जुद्ध सपथ ॥
 दुहँ द्वन्द्व जुद्ध सुकीन । मनु जुरे मल्ल नवीन ॥
 तरवारि बजिय ताय । मनु लगी ग्रीषम लाय ॥
 करि चरण सीस रुहथ । परि लुथ जुथ सुतथ ॥
 घमसान थान सु धीर । धर धरनि खेलत वीर ॥
 गजराज लुटत भुमि । बहु तुरंग परत सु भुमि ॥
 बिय बीर बजिय सार । तरवार बरसहु धार ॥
 दोऊ भ्रात स्वामि सकाम । जग में किये अतिनाम ॥
 दोहु वीर देखत दूर । चढ़ गए मुख अति नूर ॥
 दल दोय दिखत वीर । पहुँचे बिहस्त गहीर ॥

तजिये तप पावस बित्ति सबं । ऋतु शारद बादर दीस अबं ॥
 सरिता सर निम्मल नीर बहँ । रस रंग सरोज सुफुल्लि रहँ ॥
 बहु खंजन रंजन भृंग भ्रमँ । कलहंस कलानिधि बेद भ्रमँ ॥
 बसुधा सब उज्जल रूप कियं । सित वासन जानि बिछाय दिथं ॥
 बहु भाँति चमेलिय फूलि रही । लखि मार सुमार सुदेह दही ॥
 बन रास बिलास सुबास भरँ । तिय काम कमान सुतानि धरँ ॥
 भ्रमयँ पर तै नर काम जगै । बिरही सुनिकै उर भाव खगै ॥
 धर अंबर दीपक जोति जगै । नर नारि लखँ उर प्रीति पगी ॥

(८) भक्तवर नागरी दास—किशनगढ़ के महाराजा सावन्त सिंह उपनाम नागरीदास का जन्म वि० सं० १७५६ पौष सुदी १२ को हुआ था। महाराजा राजसिंह इनके पिता और मानसिंह दादा थे। अपने पिता के पाँच पुत्रों में सावन्तसिंह तीसरे थे। इनका विवाह भानगढ़ के राजा यशवन्त सिंह की कन्या से हुआ था, जिन से इनके चार सन्तति हुईं, दो कन्याएँ और दो पुत्र। सावन्तसिंह बचपन ही से बड़े भावुक और तीव्र बुद्धि थे। स्मरण-शक्ति इनकी इतनी अच्छी थी कि प्रत्येक बात एवं पाठ को बहुत शीघ्र सीख लेते थे। ये अस्त्र-शस्त्र संचालन में परम प्रवीण थे, और लक्ष्य वेध में, सूक्ष्म से सूक्ष्म निशाना-वेधने में बड़े सिद्धहस्त थे। इन्होंने दो अंगुल चौड़े बाढ़ वाली एक नये ढंग की तलवार निकाली थी जिसे सावन्त शाही बाढ़ कहते हैं। वीर, निडर एवं साहसी ये इतने थे कि दश वर्ष की आयु में इन्होंने एक मतवाले हाथी को तलवार की एक चोट से विचलित कर दिया था और तेरह वर्ष की अवस्था में बूंदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था। अठारह वर्ष की उम्र में यूँ ही की गद्दी जैसे अभेद्यदुर्ग को जीतकर वीर सावन्त सिंह ने अपनी समर-पटुता, साहस एवं शौर्य से लोगों को विस्मित कर दिया था—

वरप अठारह माँझ बढ़े ही विक्रम कीनौ ।
पातिसाह के लखत फौज मारो जस लन्हैं ॥
धूँणजति निज हाथ लोह कीने रनवीरं ।
बहुर दूसरी बार लोह लग निजतन धीरं ॥
शत्रुहिं विडारि कीनी फते श्रीनाथ कृपा ऐसो अडर ।
कह राय कवि जग जस प्रगट, धन्य धन्य सावंत कुंवर ॥

महाराज राजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुखसिंह राजगद्दी का मोह छोड़ कर साधु हो गये थे और दूसरे कुंवर फतहसिंह का देहान्त अपने पिता के जीवन काल ही में हो गया था। इसलिये सावन्तसिंह का अब राज्यसिंहासन पर अधिकार था, और वास्तव में शासन-कार्य-सञ्चालन की पूर्ण योग्यता भी इनमें विद्यमान थी। परन्तु, दैव दुर्विपाक से सावन्त सिंह को एक दिन के लिए भी राज्य-सुख भोगने का अवसर प्राप्त न हुआ। बात यह हुई कि वि० सं० १८०५ में जब इनके पिता महाराज राजसिंह का देहान्त हुआ तब से ये दिल्ली में थे।

वहीं बादशाह अहमदशाह ने इन्हें किशनगढ़ राज्य का उत्तराधिकारी नियत किया। परंतु इनकी अनुपस्थिति में इधर इनके छोटे भाई बहादुर सिंह किशनगढ़ के राजा बन बैठे। भाई के अनधिकार प्रयत्न की सूचना जय सावन्त सिंह को दिल्ली में मिली तब एक महती सेना को लेकर उनसे लड़ने के लिए ये किशनगढ़ आये। दोनों भाइयों की सेनाओं में भयंकर युद्ध और रक्तपात हुआ। परंतु बहादुरशाह की सेना ने इन्हें किशनगढ़ की सरहद में पाँव न रखने दिया। निराश होकर ये दिल्ली लौट गये और वहाँ से अपने राज्य को पुनः हस्तगत करने का उद्योग करते रहे। मुगल साम्राज्य के ढलते दिन थे और अहमदशाह की अवस्था उस समय अत्यन्त ही दयनीय थी। इसलिए वह इन्हें यथेष्ट सहायता न दे सका। दिल्ली में अधिक दिन तक रहना व्यर्थ समझ तथा मरहटों से सहायता प्राप्त करने की आशा से ये दक्षिण की ओर जाने को खाना हुए। जब वृन्दावन पहुँचे तब वहाँ हरिदास नामक एक वैष्णव ने इन्हें कहा कि अब आप को राज्याधिकार प्राप्त हो ऐसा योग नहीं है और अवस्था भी आपकी पचास से ऊपर हो गई है। इसलिए सब भक्तों को छोड़ कर भगवद्भजन करो और अपने कुँवर को राज्य-प्राप्ति के लिए उद्योग करने दो। यह सुन कर आप तो वहीं रह गये और अपने पुत्र सरदार सिंह को मरहटों की सेना देकर बहादुर सिंह के विरुद्ध लड़ने को भेजा। बहुत लड़ाई के बाद बहादुर सिंह ने किशनगढ़ का आधा राज्य सरदार सिंह को दे दिया, जिसमें सरवाड़, फतहगढ़ और रूपनगर के तीनों परगने सम्मिलित थे। सावन्त सिंह ने वृन्दावन से आकर आश्विन सुदी १० सं० १८१४ के दिन सरदार सिंह का राजतिलक किया।

पुत्र का राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् सावन्त सिंह वृन्दावन वापस चले गये और कृष्ण-भक्ति में लीन रहने लगे। जब कभी एक आध दिन के लिए आते भी थे तो कृष्णगढ़ में इनका मन नहीं लगता था। अन्तिम बार यह कवित्त कह कर वृन्दावन की ओर चले गये और आजीवन न लौटे—

ज्यों ज्यों इत देखियत मूरख विमुख लोग,

त्यों त्यों ब्रजवासी सुखरासी मन भावै हैं।

खारे जल छीलर दुखारे अन्ध कूप चितै,
 कालिन्दी कूल काज मन ललचावे हैं ॥
 जेती इहैं बीतत सो कहत न बनत बैन,
 नागर न चैन परै प्राण अकुलावे हैं ।
 थूहर, पलास, देख देख के बवूल बुरे,
 हाय हरे हरे वे कदम्ब सुध आवै हैं ॥

वीर विद्वान एवं भक्त होने के अतिरिक्त सावन्त सिंह कला-प्रेमी भी पूरे थे । संगीत, चित्रकारी, काव्य आदि ललित कलाओं से इन्हें बड़ा प्रेम था और इनकी बारीकियों को ये समझते भी खूब थे । इसके सिवा कई उच्च कोटि के कवि भी इनके साथ आधवास करते थे, जिनमें वल्लभ जी, हरिचरणदास, हीरालाल, कनीराम, पन्ना लात, और विजयराम के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं । ये वल्लभ संप्रदाय के श्री गोस्वामी रणछोड़ दास जी के शिष्य थे, और ब्रजभाषा, ब्रज भूमि तथा ब्रजपति के अनन्य उपासक थे । इनकी कविता से वृन्दावन के प्रति इनकी अखंड भक्ति टपकती है । इन्हें संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, और कविता में अपना नाम नागरी, नागर, नागरीदास और नागरिया रखते थे । इन्होंने कुल मिला कर ७५ ग्रंथों की रचना की, जिनके नाम निम्न हैं:—

(१) सिंगार सागर (२) गोपी प्रेम प्रकाश (३) पद प्रसंग माला (४) ब्रज बैकुण्ठ तुला (५) ब्रज सार (६) भोरलीला (७) प्रात रस मञ्जरी (८) विहार चन्द्रिका (९) भोजनानन्दाष्टक (१०) जुगल रस माधुरी (११) फूलविलास (१२) गोधन आगमन (१३) दोहन आनन्द (१४) लग्नाष्टक (१५) फाग विलास (१६) ग्रीष्म बहार (१७) पावस पचीसी (१८) गोपीवैन विलास (१९) रास रसलता (२०) रैन रूपरस (२१) शीतसार (२२) इश्क चमन (२३) मजलिस मडन (२४) अगिलाष्टक (२५) सदा की माँझ (२६) वर्षा ऋतु की माँझ (२७) होरी की माँझ (२८) कृष्ण-जन्मोत्सव कवित्त (२९) प्रियाजन्मोत्सव कवित्त (३०) साँक्षी के कवित्त (३१) रास के कवित्त (३२) चाँदनी के कवित्त (३३) दिवारी के कवित्त (३४) गोवर्धन धारण के कवित्त (३५) होरी के कवित्त (३६) फाग गोकुलाष्टक

(३७) हिंडोरा के कवित्त (३८) वर्षा के कवित्त (३९) भक्त मग दीपिका (४०) तीर्थानन्द (४१) फाग विहार (४२) बाल विनोद (४३) सुजनानन्द (४४) वन विनोद (४५) भक्तिसार (४६) देहदशा (४७) वैरागवल्ली (४८) रसिक रत्नावली (४९) कलिवैराग वल्लरी (५०) अरिल्ल पच्चीसी (५१) छूटक विधि (५२) परायण विधि प्रकाश (५३) शिखनख (५४) नखशिख (५५) छूटक कवित्त (५६) चरचरियाँ (५७) रेखता (५८) मनोरथमञ्जरी (५९) रामचरित माला (६०) पद प्रबोधमाला (६१) जुगुल भक्तिविनोद (६२) रसानुक्रम के दोहे (६३) शरद की साँझ (६४) साँझी फूल बीजन समेत संवाद (६५) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त (६६) वसंत वर्णन (६७) रसानुक्रम के कवित्त (६८) निकुंजविलास (६९) गोविन्द परचई (७०) बन जग प्रशंसा (७१) छूटक दोहा (७२) उत्सवमाला (७३) पद भक्तावली (७४) वैन विलास (७५) गुप्त रस प्रकाश ।

उपरोक्त ग्रंथों के अतिरिक्त इनके लिखे 'धन्य धन्य' तथा 'ब्रज संबंधी नाममाला', दो और ग्रंथों का पता लगा है ।

नागरी दास शृंगारी भक्त एवं प्रेमी जीव थे । विधाता ने इन्हें कवि-हृदय प्रदान किया था । अतः शृंगार का पूर्ण परिपाक इनकी रचनाओं में विद्यमान है । वैष्णव सम्प्रदाय के कृष्णोपासक भक्त कवियों के समान इन्होंने भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला विषयक शृंगार रसात्मक कविताएँ अधिक संख्या में रची हैं; पर ईश्वर-भक्ति के नाम पर शृंगार रस की पिपासा शान्त करने की प्रवृत्ति कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती । विशुद्ध शृंगार के साथ २ कृष्ण भक्ति की उत्ताल तरङ्गे इनकी कविता में प्रवाहित हो रही हैं और उसमें कुछ ऐसा माधुर्य, ऐसा रस एवं जादू है कि जो कोई उसे एक बार भी पढ़ लेता है वह सदैव के लिये नागरीदास का बन जाता है । नागरीदास नैसर्गिक कवि थे । इनकी कविता में न तो परिश्रम की झलक है, न दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न और न पाण्डित्य-प्रदर्शन की रुचि । सीधी बात को सीधे ढङ्ग से कहकर इन्होंने हृदय की सुकुमार वृत्तियों को छेड़ने का उद्योग किया है । भाषा और भाव दोनों में सादगी, सहृदयता और प्रेम जनित मस्ती है । दोनों ही बड़े प्रेम से गले मिले हुए हैं । कृष्ण की मुरली के प्रति गोपियों की उपालम्भ पूर्ण कुछ उक्तियाँ देखिए :—

मुख मुँदे रहु मुरलिया, कहा करत उतपात ।
तेरे हाँसी घर बसी, औरन के घर जात ॥१॥
बाजे मति मति बाँसुरी, मति पिय अधरन लागि ।
अरी घर बसी देत क्यों, रोम रोम में आगि ॥२॥
पीय लियो पिय मन लियो, लियो अधर रस रूम ॥
इतौ लयो तै कहा दियो, बैरनि बंसी सूम ॥३॥
गाँठ गठीले बाँस की, महा द्रोह की खान ।
मति मारैरी मुरलिया, तानन विप के बान ॥४॥

भक्तवर नागरीदास का गोलोकवास वि० सं० १८२१ भादों सुदी ५ को वृन्दावन में कृष्णगढ़ राज्य की कुंज में, जो नागर कुंज के नाम से प्रसिद्ध है, हुआ था । वहाँ पर इनकी समाधि, चरणचिन्ह आदि विद्यमान हैं, जिनकी अभी तक पूजा होती है । कृष्णगढ़ राज्य की ओर से नागर कुंज में २५ गनुष्यों को हमेशा सदावर्त मिलता है, और जब कभी महाराज साहब का उधर धारना होता है तब वे स्वयं नागरीदास के चरणचिन्हों की पूजा करते हैं । समाधि में निम्न लिखित छाप खुदा हुआ है :—

सुत को दे युवराज आप वृन्दावन आये ।
रूपनगर पति भक्ति वृन्द बहु लाढ़ लड़ाये ॥
सूरवीर गंभीर रसिक रिझवार अमानी ।
संत चरनामृत नेम उदधि लौं गावै बानी ॥

नागरीदास जग विदित सो कृपा ढार नागर ढरिय ।
सांवन्त सिंह नृप कलिविषै सत त्रेता सम आचरिय ॥

नागरीदास की कविता देखिये :—

देवन के श्री रमापति के दोऊ धाम की वेदन कीन बढ़ाई ।
शंख रु चक्र गदा पुनि पद्म स्वरूप चतुरभुज की अधिकाई ॥
अमृत पान विमानन बैठबौ नागर के जिय नेक न भाई ।
स्वर्ग बैकुंठ में होरी जो नाहीं, तो कोरी कड़ा ले करै ठकुराई ॥

भादों की कारीअँधारी निसा भुकि बादर मन्द फुही बरसावै ।
 स्यामाजू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीति मलारहिं गावै ॥
 ता समै मोहन के दृग दूरतें आतुर रूप की भीप यों पावै ।
 पौन मया करि घूँघट टारि दया करि दामिनि दीप दिखावै ॥

गहिबो अकासन कौ लहिबौ अथाह थाह,
 अति विकराल व्याल कलि को खिलायबौ ।
 डाल तरवार औ तुपक पर हाथ बान,
 गज मृगराज दोनुं हाथन लरायबौ ॥
 गिरते गिरत पंच ज्वाल में जरत पुनि,
 कासी में करौत तन हिम में गरायबौ ।
 विषम विप पीबौ कछु कठिन न नागर कहै,
 वठिन कराल एक नेह को निभायबौ ॥

जो मेरे तन होते दोय ।

मैं काहू ते' कछु नहिं कहतो मोते' कछु कहतो नहिं कोय ॥
 एक जो तन हरि-विमुखन के संग रहतो देस विदेस ।
 विविध भौंति के जग दुख सुख जहँ, नहीं भक्ति लवलेस ।
 एक जो तन सतसंग रंग रंगि रहतो अति सुख पूर ॥
 जनम सफल करि ले तो ब्रज बसि जहँ ब्रज जीवन मूर ।
 द्वै तन बिन द्वै काज न हूँ हैं, आयु तौ छिन छिन छीजै ।
 नागरिदास एक तन ते' अब कहौ कहा करि लीजै ॥

(६) सोमनाथ—इनका रचना काल सं० १७९० से १८१० तक माना जाता है । ये माथुर ब्राह्मण थे और भरतपुर के राजा बदनसिंह के कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के यहाँ रहते थे । इन्होंने सं० १७९४ में रसपीयूषनिधि नामक एक रीति ग्रन्थ लिखा जिसमें कविता के लक्षण, प्रयोजन, भेद, ध्वनि, भाव, रस, गुण, दोष, अलंकार आदि का विस्तृत वर्णन है । इसके सिवा इनके सुजान विलास, माधवविनोद कृष्णलीलावली, पंचाध्यायी, दशमस्कन्ध भाषा, ध्रुव विनोद, राम कलाधर, वाल्मीकि रामायण, अर्थात्म रामायण, अयोध्याकाण्ड

तथा सुन्दरकांड नामक ग्रन्थों का पता भी चलता है। सोमनाथ की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है और शब्दाडंबर के फेर में न पड़कर इन्होंने अपने विषय को बहुत ही सरल और सहज बोधगम्य ढंग से समझाया है। इनका एक कवित्त देखिए :—

दिसि बिदिसनि ते' उमड़ि मड़ि लोनों नभ,
छाँडि दीने धुरवा, जवासे-जूथ जरिगे ।
ढहडहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन,
कहूँ कहूँ मोरवा पुकारि मोद भरिगे ॥
रहि गए चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
सोमनाथ कहै बूँदा बाँदी हू न करिगे ।
सोर भयो घोर चहुँ ओर महि मण्डल में,
आए घन आए घन, आयकै उधरिगे ॥

(१०) दलपति राय और बंसीधर—ये दोनों अहमदाबाद के रहने वाले थे। इनमें दलपतिराय जाति के महाजन और बंसीधर ब्राह्मण थे। मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह जी की आज्ञा से इन्होंने अलंकार रत्नाकर नामक एक ग्रंथ सं० १७९८ में लिखा था :—

उदयापुर सुरपुर मनौ, सुरपति श्री जगतेस ।
जिनकी छाया छत्र बस, कीनौ ग्रन्थ असेस ॥
सतरै सै अख्यानवै, माह पक्ष सितवार ।
सुभ बसंत पाँचै भयौ, यहै ग्रन्थ अवतार ॥

अलंकार रत्नाकर पहली बार सं० १९३८ में राजयन्त्रालय उदयपुर में छपा था। इसमें अलंकारों का सोदाहरण विशद विवेचन है और अलंकार विषयक कुछ बातों को समझाने का उद्योग पद्य के साथ २ गद्य में भी किया गया है। यह महाराजा जसवन्त सिंह जी के भाषा भूषण की एक तरह से टीका है। ग्रंथारंभ में लिखा है कि कुवलयानंद का अर्थ तो दलपतिराय ने किया और कवित्त बंसीधर ने बनाये। पर दलपति राय के रचे हुए कवित्त-सवैया भी इसमें उपलब्ध हैं। इससे मालूम होता है कि ये दोनों ही उच्च कोटि के कवि थे तथा अलंकारों का इन्हें अच्छा ज्ञान था और हिन्दी

के प्रधान २ कवियों के ग्रंथ इन्होंने बड़े ध्यान से पढ़े थे। इनकी कविताएँ मुरुचि पूर्ण, सरल एवं कला समन्वित हैं और दोनों की विद्वत्ता तथा गंभीर अध्ययन का परिचय देती हैं। इनकी कविता का नमूना देखिये:—

अलकै' अतिलोल अमोल महा चल कुंडल जोत छटा बरसै' ।

चल हार हियै' बिथुर्यौ कचभार औ स्वेद कपोलन पै' दरसै' ॥

अति लेत उसास बिलास महाचल चारु नितंबन कौ' सरसै' ।

सिल धन्य हैं पीसत दार जुनार अमंद अनन्द धरै' परसै' ॥

—दलपतिराय

हौं नबला गुन रंग रंग्यो नव पल्लव कौ तुहि रंग दियौ हैं ।

दोउन कौ तन बीर मनौ' भव चाप शिलोमुख छाय लियौ हैं ॥

लागत नारि कौ पाय दुहूँ के मोह महा जुन होत दियौ हैं ।

मोहि ससोक कियौ इहि' लोक मैं तोहि असोक असोक कियौ हैं ।

—बंसीधर

(११) करणी दान कविया—ये कविया शाखा के चारण मेवाड़ के शूलवाड़ा गाँव के रहने वाले थे। कर्नल टॉड ने इन्हें कन्नौज का चारण बतलाया है, जो ठीक नहीं है। ये जोधपुर के महाराजा अभयसिंह जी के (सं० १७८१-१८०६) समकालीन थे। इन्होंने सूरज प्रकाश नाम का एक बहुत भारी ग्रंथ ७५०० छन्दों में लिखा था, जिस पर मुग्ध होकर महाराजा अभयसिंह जी ने इन्हें लाख पसाव तथा कविराजा की उपाधि दी और हाथी पर बिठाकर स्वयं उन्हें पहुँचाने के लिये उनके साथ डेरे तक गये थे। इस सम्बन्ध में अभी तक यह दोहा राजस्थान में प्रसिद्ध है:—

अस चढ़ियो राजा अभौ, कवि चाढ़े गजराज ।

पौहर एक जलेब में, मौहर चले महराज ॥

सूरज प्रकाश चारण भाटो की प्रथाबद्ध रीति पर लिखा हुआ एक ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसकी वंशावली में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से लगाकर महाराजा अभयसिंह तक के मारवाड़ के राजाओं का वर्णन है जिसमें नरेशों के नाम ही नहीं गिनाये हैं, बल्कि उनके समय की वास्तविक घटनाओं को चित्रित

करने का उद्योग किया गया है। भगवान रामचन्द्र के वर्णन में तो कवि ने एक छोटा मोटा रामायण ही लिख डाला है। कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में सूरज प्रकाश की बहुत प्रशंसा की है और मारवाड़ राज्य के इतिहास के लिखने में इसका बहुत उपयोग किया है। महाराजा अभयसिंह को सुनाने के लिये करणी दान ने सूरज प्रकाश का सारांश एक दूसरे छोटे ग्रंथ के रूप में १२६ पद्वरी छन्दों में लिखा था, जिसका नाम विद्वद सिंग्गार है। ये दोनों ग्रंथ अभी तक अमुद्रित हैं।

इनकी कविता का थोड़ा सा अंश देखिये:—

(दोहा)

भार अरथ कवि भारवी, कायब कियो किरात ।
मल्यनाथ टीका मही, दळे लिखी आ वात ॥

(छप्पय)

वळे लिखी आ वात, विमळ मल्लिनाथ ब्रह्ममण ।
श्री सुर मंगळ सबद, आदि कहियां नह अवगुण ॥
मे त्रिहुँ सबद उदार, आदि गुण रै मैं आणै ॥
श्री पति मंगल सरूप, ब्रह्म चक्र वेद बखाणै ॥
कवि वेदव्यास बलमीक कवि, करि अस्तुति वंदण कियो ।
सूरज प्रकाश सूरज जिसौ, अभमल गुण आरंभियो ॥

(छंद पद्वरी)

अनि सुकवि कोइक पूछै अभाम, किए अरथ नाम सूरज प्रकाश ।
जिण जतन काजि सांचौ जबाब, संजुगत अरथ दाखै सताब ॥
तिम कसिप सुकवि मन सोहिज तात, माता अदित्य यम सुबध्य मान ।
यां हूँत हुआ तप जप उदार, परिहार निसा जड़ता प्रहार ॥
चक हेक सुरथ बक हेक चाव, सारथी अरुण बरणन सुभाव ।
इण भाति रूप उज्जत अरोहि, सपतास तुरंग जिम उछव सोहि ॥
ऊगतां अनै कहतां उदार, प्रकुलंत कमल कवि मुख अपार ।
जोवतां कुमुद कुमलाइ जाइ, सुणतांज कुकवि चख धर समाइ ॥

सँत करै देखि ध्यानह सनान, दातार सूर सुणि करै दोन ।
 मि (प्र) हराज किरणि जिम वाणि ग्रंथ, प्रेरक सकति कवि रसण पंथ ॥
 निसचरा जेम दूजा नरेस, सुणि दबै सूब कायर जिसेस ।
 सूरज समान जग जस उजास, यौ हौ ग्रंथ नाम सूरज प्रकास ॥

(१२) स्वामी श्रीहित वृन्दावन दास—ये पुष्कर क्षेत्र के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे और वि० सं० १७६५ में पैदा हुए थे । राधा वल्लभीय गोस्वामी हित रूप जी इनके गुरु थे । इनके माता, पिता आदि के सम्बन्ध में अभी तक पता नहीं लग सका है । कवि कुलाभरण नागरी दास के भाई हादुर सिंह इन्हें ब हुन मानते थे, इसलिए ये प्रायः किशनगढ़ ही में रहा करते थे । पर बाद में जब राज घराने में राज्य सम्बन्धी कई झगड़े उठ खड़े हुए तब ये किशनगढ़ छोड़ कर वहाँ से वृन्दावन चले गये और अन्त समय तक वहाँ रहे । सं० १८४४ तक की इनकी रची कविताएँ मिलती हैं पर इसके बाद की नहीं मिलती । जिससे अनुमान होता है कि उक्त संवत् के आसपास किसी समय इन्होंने शरीर छोड़ा होगा ।

जनश्रुति है कि वृन्दावन दास ने चार लाख पदों तथा छन्दों की रचना की थी । यदि इसमें कुछ सत्यांश है तो रचना प्राचुर्य की दृष्टि से ये सूरदास से भी बहुत आगे बढ़े हुए माने जा सकते हैं । नाँचे इनके ग्रंथों के नाम दिये जाते हैं, जिनसे विदित होगा कि कृष्ण लीला सम्बन्धी कितने विभिन्न विषयों पर इन्होंने लिखा है:—(१) कृष्णगिरि पूजन बेली (२) श्री हितरूप चरित बेली (३) भक्ति प्रार्थनावली (४) चौबीस लीला (५) हिंडोरा (६) श्री ब्रज प्रेमानन्द सागर (७) कृष्ण गिरि पूजन मंगल (८) हरिनाम महिमावली (९) हित हरि वंशचन्द्रजू की सहस्र नामावली (१०) भाव विलास टीका (११) राधा सुधा निधि (१२) सेवक बानी (१३) रसिक यश वर्णन (१४) युगल प्रीति पचीसी (१५) आनन्द वर्द्धन बेलि (१६) नवम समय प्रबन्ध शृंगला (१७) कृष्ण सुमिरन पचीसी (१८) कृष्ण विवाह उत्कण्ठा (१९) रास उत्साह वर्द्धन (२०) इष्ट भजन पचीसी (२१) जगनिर्वेद पच्ची (२२) पद (२३) प्रार्थना पचीसी (२४) राधा जन्म उत्सव बेलि (२५) वृषभानु जस पचीसी (२६) राधा बाल विनोद (२७) लाड़ली जी की जन्म

बधाई (२८) हित कल्पतरु (२९) भक्त सुजस बेलि (३०) करुणा बेलि (३१) भँवर गीत (३२) लीला (इसमें छोटे छोटे ४५ ग्रंथ हैं) (३३) हरि-कला बेलि (३४) लाड़ सागर (३५) सेवक जी की विरुदावली (३६) छद्म प्रोढ़शी (३७) रसिक अनन्य (३८) खपाल विनोद (३९) ब्रज विनोद (४०) बेलि (४१) हितरूप चरितावली (४२) सेवक जी की परिचर्यावली ।

इनके सिवा इन्होंने अष्टयाम, समय प्रबन्ध, अष्टक, बेली, पचीसी आदि भी कई लिखे हैं ।

स्वामी वृन्दावन दास भगवान् कृष्ण के अनन्य उपासक थे । इन्होंने श्रीकृष्ण के भोजन, शयन, रास आदि का बड़ा विशद वर्णन किया है । सब से बड़ी विशेषता जो इनकी रचना में हमें दीख पड़ती है वह है इनकी शुद्ध, सरल और व्यवस्थित ब्रज भाषा इनकी पदावली में कान्ति, माधुर्य और कोमलता है । पद विन्यास भी बहुत ललित तथा सुन्दर है । भावुक कवि के आराध्य देव के प्रति उठने वाली भाव तरंग का हृदय-ग्राही दृश्य हमें इनकी कविता में देखने को मिलता है ।

इनका एक पद यहाँ दिया जाता है :—

हौं बलि जाऊँ मुख सुख रास ।

जहाँ त्रिभुवन रूप सोभा, रीझि कियो निवास ॥
प्रतिबिम्ब तरल कपोल कमनी, जुग तरौना कान ।
सुधा सागर मध्य बैठे, मनो रबि जुग न्हान ॥
छबि भरे नव कंज दल से, नेह पूरित नैन ।
पूतरी मधु मधुप छौना, बैठि भूले गैन ॥
कुटिल भृकुटी अमित सोभा, कहा कहाँ बिसेल ।
मनहुँ ससि पर स्याम बदरी, जुगुल किंचित रेख ॥
लसत भाल बिसाल ऊपर, तिलक नगनि जराय ।
मनहु चढ़े बिमान ग्रह गन, ससिहि भेंटत जाय ॥
मन्द मुसुकनि दसन दमकनि' यामिनी दुति हरी ।
वृन्दावन हित रूप स्वामिनि, कौन बिधि रचि करी ॥

(१३) सूदन—हिन्दी के वीर रस के कवियों में सूदन का स्थान बहुत ऊँचा है। कोई कोई तो चन्द बरदाई के बाद इन्हीं को वीर रस का सर्वोत्कृष्ट कवि मानते हैं। पर दुःख है कि इनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में हिन्दी संसार को बहुत कम बातें अभी तक मलूम हुई हैं। इनके रचे सुजान चरित्र ग्रन्थ से भी केवल इतना ही सूचित होता है कि ये जाति के माथुर एवं मथुरा के निवासी थे और इनके पिता का नाम बसंत था :—

मथुरा पुर सुभ धाम, माथुर कुल उत्पत्ति वर ॥

पिता बसंत सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि ॥

सूदन भरतपुर के राजा सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने सुजान चरित्र नामक एक काव्य-ग्रन्थ की रचना की, जिसमें सूरजमल के युद्धों का वर्णन है और संवत् १८०२ से १८१० तक की घटनाएँ कही गई हैं। इस ग्रन्थ के अध्ययन से स्पष्ट विदित होता है कि सूदन कई वर्षों तक राजस्थान में रहे थे, जिससे चारण कवियों का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा; और अंत में उन्हीं की काव्य पद्धति पर इन्होंने भी अपने सुजान चरित्र की रूपरेखा तैयार की। यह ग्रन्थ जंगों में विभक्त है। प्रत्येक जंग में भी कई अंक हैं, जिनको किसी खास नियम के अनुसार नहीं रखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि सूदन ने आँखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है, पर फिर भी काव्य ग्रन्थ होने से सुजान चरित्र का ऐतिहासिक महत्व उतना नहीं है, जितना कि होना चाहिये था। इतिहास-विरुद्ध बहुत सी बातें इसमें दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, एक स्थान पर सूदन ने सूरजमल का मेवाड़ को जीतना लिखा है जो निराधार है। वस्तुतः वि० सं० १८०२ और १८१० के बीच में किसी महाराणा का युद्ध ही सूरजमल के साथ नहीं हुआ। हार-जीत तो बहुत दूर की बात है।

सूदन की भाषा शुद्ध व्रजभाषा नहीं है। इस में राजस्थानी, पूरबी, पंजाबी आदि कई भाषाओं का पुट लगा हुआ है। केशवदास की तरह इन्होंने भी छंद बहुत जल्दी जल्दी बदले हैं और जिस स्थान पर जिस छंद का प्रयोग किया है वहाँ छंद-शास्त्र के नियमों का पूरी तरह से पालन किया है। अतएव एक तो छंदोभंग इनकी कविता में बहुत कम है, दूसरे गति भी अच्छी

है । इनकी वर्णन-शैली साधारण रूप से सजीव एवं कविता ओजस्विनी है, पर जैसा कि युद्ध की तैयारी के समय हथियारों तथा दिल्ली की लूट के समय बाज़ार के वर्णन में देखा जाता है, वस्तुओं की नामावली प्रस्तुत करने में कहीं कहीं ये इतने आगे बढ़ गये हैं कि पढ़ते पढ़ते जी ऊब जाता है ।

इनकी कविता का थोड़ा सा अंश हम यहाँ देते हैं :—

जुटे रहेले जट्टहीं । न कोई वीर हट्टहीं ॥
 सुएक एक डट्टहीं । भपट्टहीं लपट्टहीं ॥
 अनेक अग बाट्टहीं । कितेक मार छाँट्टहीं ॥
 किते परे कराट्टहीं । हकार सौं रपट्टहीं ॥
 कहुँक हथ्य हथ्यहीं । भरै कहुँक बथ्यहीं ॥
 परे सुलथ्य पथ्यहीं । समट्टि कै चपट्टहीं ॥
 उताल चाल हाल सौं । धवंत कोह ज्वाल सौं ॥
 गहै कृवाल ढाल सौं । अरीनु कौ कपट्टहीं ॥
 धमकि धिग धावहीं । तमकि तेग आवहीं ॥
 भमकि कै चलावहीं । गुलावहीं बलक्कि कै ॥
 कटंत कंध कुंडला । छटंत बाहु डुंडला ॥
 फटंत पेट रुंडला । दुलावहीं डलक्कि कै ॥
 लरै कहुँ छुरा छुरी । परै कबन्ध रातुरी ॥
 कितेक टूटि जावुरी । हुलावहीं हलक्कि कै ॥
 भलक्कि भाल भालहीं । भलक्कि भाल भालहीं ॥
 रलक्कि घाव घालहीं । घुलावहीं घलक्कि कै ॥

लुटियौ लडुआ बहु भाँतिन के । नुकतीअर मोदक पाँतिन के ॥
 कलकंद सुमैथिय मूँग दला । सिमई सत सूत मगइ भला ॥
 सुठि सेव सुअौरिहु गौंद गिरी । खुरमा मठरी भरि ली गठरी ॥
 गुप चुप्प गुना गुल पापरियाँ । खजला सु खजूरि खड़ा परियाँ ॥
 अमृती रु जलेबिनु पुंज लुटे । खिर सादर भिस्ति लुटे सुफुटे ॥
 गुफिया गुल कंद गुलाब करी । तिरकौनु सुहारिन मोट भरी ॥

बहु घेवर बाबर मालपुवा । अरु सेव कचौरिन लेत हुवा ॥
 हलुआ हिसमी बहु फेननु की । कतरी रसनासुख चैननु की ॥
 कहुँ लैत निवात बतासन कौं । सु गिंदौरन ए रनवासिन कौं ॥
 अरु खोवन ढेर बखेर दरा । बहु खांड खिलौनन लेत भरा ॥
 अरु लाइचदाननु गोद भरैं । दधि दूधन के परसाद करैं ॥
 कुजतीतिल सक्कर रेवरियाँ । बहु पाक पुडार जु सेवरियाँ ॥
 पकवान जथा रुचि और घना । बुहरी परमरुल सुखोल चना ॥

१४—सुन्दर कुँवरि बाई राजस्थान की कवयित्रियों में सबसे प्रचुर कृति सुन्दर कुँवरि बाई की है । ये किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह की पुत्री थीं । महाराजा राजसिंह ने दो विवाह किये थे । इनकी पहली रानी के गर्भ से सावंतसिंह उपनाम नागरी दास और वहादुरसिंह का जन्म हुआ था । जब महाराज की अवस्था लगभग ४५ वर्ष की थी तब, उक्त रानीजी का देहान्त होगया, जिससे इन्होंने जयपुर राज्य के लिवाण ठिकाने के जागीरदार आनन्द राम कछवाहा की कन्या से दूसरा विवाह फिर किया था । इनके उदर से वि० सं० १७६१ में सुन्दर कुँवरि बाई का जन्म हुआ । जब बाई जी चौदह वर्ष की थीं, इनके पिता का देहावसान हो गया और तदनन्तर किशनगढ़ के राज्य सिंहासन के लिये इनके भाइयों में झगड़े होने लगे, जिससे इनका विवाह न हो सका और ३१ वर्ष की आयु तक ये कुँवारी रहीं । बाद में जब इनके भतीजे सरदार सिंह गद्दी पर बैठे तब उन्होंने इनका विवाह राधोगढ़ के राजा बलभद्र सिंह के पुत्र बलवन्त सिंह के साथ किया ।

इनका देहान्त अनुमानतः सं० १८५३ के आस पास हुआ था ।

सुन्दर कुँवरि बाई साहित्यिक वायुमंडल में पली थीं; और कविता इन की प्रैतुक सम्पत्ति थी । इनके पिता राजसिंह, माता ब्रजदासी, भ्राता नागरी दास और भतीजी छत्र कुँवरि बाई सभी साहित्य-रुचि-सम्पन्न एवं प्रकुष्ट कवि थे । इस वातावरण से इन्हें सत्काव्य-रचना में बड़ी सहायता मिली । पन्द्रह वर्ष की आयु में बाई जी बहुत अच्छी कविता करने लग गई थीं और बाद में तो काव्य-रचना का इन्हें ऐसा व्यसन पड़ गया था कि जिस दिन थोड़ा बहुत भी न

लिख लेतीं, इन्हें कल न पड़ती थी। इन्होंने ग्यारह ग्रन्थों की रचना की जिनके नाम ये हैं:—

(१) नेह निधि (२) वृन्दा गोपी महात्म्य (३) संकेत युगल (४) रंग सर ।
(५) गोपी महात्म (६) रस पुंज (७) प्रेम संपुट (८) सार संग्रह (९) भावना-
प्रकाश (१०) राम रहस्य (११) पद तथा स्फुट कवित्त ।

सुन्दर कुँवरि बाई की कविता में भक्ति और प्रेम का प्राधान्य है। इनकी रचना से स्पष्ट विदित होता है कि रस, छंद, अलङ्कार आदि का इन्हें प्रौढ़ ज्ञान था, और भाषा तथा भाव के सामञ्जस्य को अच्छी तरह से समझती थीं। इनकी भाषा बड़ी शिष्ट, स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित है। इन्होंने काव्य के कलापक्ष तथा भावपक्ष दोनों ही का बड़ी सुन्दरता से निर्वाह किया है।

इनके दो कवित्त यहाँ दिये जाते हैं:—

श्याम रूप-सागर में नैर वार पारथ के,
नचत तरंग अंग अंग रगमगी है ।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बैन,
नागिन अलक जुग सोधै सगमगी है ॥
भँवर त्रिभङ्गताई पान पै लुनाई तामैं,
मोती मणि जालन की जोति जगमगी है ।
काम पौन प्रबल धुकाव लोपी पाज तातैं,
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है ॥१॥

गागरि गिरी हैं कोऊ सीस उघरी हैं कोऊ,
सुध बिसरी हैं ते लगी हैं दुम डारिकै ।
डग मग है के भुज धारी गर द्वै के काहू,
बैठि गई कोऊ सीस मटकी उतारि कै ॥
मैन-सर पागि कोऊ घूमन हैं लागि कोऊ,
मोती मणि भूषन उतारैं डारैं वारि कै ।
ऐसी गति हेरि इन्हैं ग्वार कहैं टेरि टेरि,
मदन दुहाई जीति मदन मुरारि कै ॥२॥

महाराजा प्रतापसिंह—जयपुर नगर के बसाने वाले महाराजा सवाई जयसिंह जी से तीसरी पीढ़ी में महाराजा माधवसिंह हुए जिनके दो पुत्र थे, पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह। पृथ्वीसिंह का जन्म सं० १८१९ में और प्रताप सिंह का सं० १६२१ में हुआ था। माधवसिंह के बाद पृथ्वीसिंह जयपुर के उत्तराधिकारी हुए। परन्तु सं० १८३३ में इनकी अकाल मृत्यु हो गई। इनके कोई सन्तान न थी, इसलिये प्रतापसिंह जी को राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

महाराजा प्रतापसिंह जी क्षत्रियोचित गुणों से विभूषित थे। इनके समय में मरहटों का राजस्थान में बड़ा आतंक और जोर था। इसलिये उनका दमन करने के लिये महाराजा को कई युद्ध करने पड़े और दो-एक बार इन्होंने उन्हें पराजित भी किया। पर राजपूतों की अनेकता तथा अन्तः कलह के कारण राजस्थान का राजनैतिक वातावरण उस समय कुछ ऐसा बिगड़ा हुआ था कि इन्हें अपने प्रयत्न में सफलता न मिली। निरन्तर युद्ध में लगे रहने के कारण इनकी धन-जन से ही हानि नहीं हुई, बल्कि इनके स्वास्थ्य को भी भारी धक्का पहुँचा और अंत में सं० १८६० में इनके जीवन का अंतिम अभिनय हो गया।

महाराजा प्रतापसिंह का शरीर सुडौल, रंग गेहूँआ तथा आकृति सुंदर थी। ये बड़े मिलनसार, हँसमुख एवं गुण ग्राही थे और काव्य, संगीत, चित्रकारी आदि कलाओं के संरक्षक थे। कवियों, विद्वानों, और गायकों का इनके दरबार में बड़ा सम्मान होता था। इन्होंने आईने अकबरी, दीवाने हाफिज़ आदि ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद करवाया और ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वैद्यक, संगीत आदि विषयों पर भी बहुत से ग्रंथ लिखवाये, जो जयपुर के राज पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इनके सिवा इन्होंने कविता के संग्रह ग्रंथ भी बहुत से तैयार करवाये थे, जिनमें प्रताप वीर हज़ारा और प्रताप विंगार हज़ारा मुख्य हैं।

महाराजा स्वयं भी बहुत अच्छी कविता करते थे। इन्होंने बहुत से ग्रंथ बनाये जिनका काव्य प्रेमियों में बड़ा आदर है। कविता में ये अपना नाम ब्रजनिधि लिखते थे। इनके ग्रंथों के नाम नीचे दिये जाते हैं। ये सभी ग्रंथ नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा ब्रजनिधि ग्रन्थावली के नाम से प्रकाशित

हो चुके हैं। ग्रन्थों के नाम ये हैं—(१) प्रीतिलता (२) स्नेह संग्राम (३) फाग रंग (४) प्रेम प्रवाश (५) बिरह सलिला (६) स्नेह बहार (७) मुरली बिहार (८) रमक-जमक-बत्तीसी (९) रास का रेखता (१०) सुहाग रैनि (११) रंग-चौपड़ (१२) नीति-मञ्जरी (१३) शृंगार-मञ्जरी (१४) वैराग्य मञ्जरी (१५) प्रीति पच्चीसी (१६) प्रेमपथ (१७) ब्रज शृंगार (१८) श्री ब्रजनिधि मुक्तावली (१९) दुखहरणवेलि (२०) मोरठा खयाल (२१) ब्रजनिधि पद संग्रह (२२) हरि पद संग्रह (२३) रेखता संग्रह।

ब्रजनिधि की भाषा ब्रजभाषा है और कविता के विषय हैं—शृंगार, नीति और वैराग्य। इनकी कविता बहुत सरल, परिमार्जित एवं उल्लास-पूर्ण है। वर्णन शैली बहुत सहज और मार्मिक है। कृष्ण-लीला के विविध दृश्य जो इन्होंने अंकित किये हैं वे बहुत मर्याद-पूर्ण तथा लोक-रंजककारी हैं, और उनसे इनकी अखंड कृष्ण-भक्ति ही झलकती है। पर राधा के चित्रांकन से इनकी इन्द्रिय-लिप्सा व्यंजित होती है। ब्रजनिधि की राधा एक भक्त कवि की राधा नहीं, वरन किसी कामुक शृंगारी कवि की राधा प्रतीत होती है।

इनकी दो कविताएँ यहाँ उद्धृत करते हैं :—

बिधिवेद-भेदन बतावत अखिल बिस्व,
 पुरुष पुरान आप धार्यौ कैपो स्वाँग बर।
 कहलास बासी उमा करति खवासी दासी,
 मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर॥
 निज लोक छुँड्यौ ब्रजनिधि जान्यौ ब्रजनिधि,
 रंग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर।
 ब्रह्मलोक वारौ पुनि शिवलोक वारौ और,
 विष्णुलोक वारि डारौ होरी ब्रज-फाग पर॥
 राधे बैठी अटारियौ, झँकत खोलि किवार।
 मनौ मदन गढ़ तैं चली, द्वै गोली इकसार॥
 द्वै गोली इकसार, आनि आँखिन मैं लागीं।
 छेदे तन-मन-पान, कान्हकी सुधि बुधि भागीं॥

ब्रजनिधि है बेहाल, विरह-बाधा सौं दावे ।

मन्दमन्द मुसकाइ, सुधा सों सींचति राधे ॥

(१६) मंछाराम—ये जोधपुर के रहने वाले जाति के सेवग थे । इन्होंने संवत् १८३१ में रघुनाथ रूपक नामक डिंगल का एक रीति ग्रंथ लिखा था । इसमें डिंगल में प्रयुक्त गीतों के लक्षण तथा वयणसगाई आदि अलंकारों पर प्रकाश डाला गया है । उदाहरणों में रामायण की कथा क्रम से वर्णित की गई है । इसकी भाषा शुद्ध डिंगल है और विषय प्रतिपादन शैली भी बहुत उत्तम है । डिंगल की काव्य-रीति पर यह पहला प्रयत्न है और इस दृष्टि से मंछाराम का स्थान डिंगल साहित्य में बहुत महत्व का है । इनका एक उदाहरण :—

रुले उक्त को रूप अंध सो नाम उचारै,
कहै बले छवकाल विरुद्ध भाषा विस्तारै ।
हीण दोष सो हुवै जात पित मुदो न जाहर,
निनङ्ग जेण ने' निरख विकल बरणान बिन ठौरै ॥
पांगलो छंद भाखै प्रकट बद्ध कला बखानै जै,
बिच अवर अवर द्वालौवणै, जात विरुधसो जाण जै ।
अपस अमूझ्यो अरथ शब्द पिण विण हित साजै,
नाल छेद जिणनाम जथा हीणौ' गुण साजै ॥
कहै दोष पखतूट जोड़ पतली अर जालम,
बहरो सो सुभ वयण मुडै, अण शुभ द्वै मालम ।
मरु भूम पाठ पिंगल मतां साहित वैदक सार नै,
कहै मंछभलां रूपकरो ऐ दस दोष निवारनै ॥

(१७) महाराजा मानसिंह—ये महाराजा विजयसिंह जी के पौत्र और गुमानसिंह जी के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १८३९ में हुआ था । इक्कीस वर्ष की अवस्था में ये मारवाड़ की गद्दी पर बैठे । कुछ सरदारों के षड्यन्त्रों, नाथों तथा मरहटों के कारण इनके राज्य में बड़ी अव्यवस्था रही और इन्हें बड़े कष्ट भेलने पड़े । मरहटों आदि से तो इन्होंने खूब लोहा लिया और बड़ी चतुराई से उनका दमन किया, पर नाथ संप्रदाय के प्रति

अत्यधिक भक्ति होने से नाथों का दमन ये न कर सके। यही नहीं, तत्कालीन पोलिटिकल एजेंट लड़कों ने जब दो-एक उपद्रवीनाथों को पकड़ कर अजमेर भेज दिया तब इन्हें असीम दुःख हुआ और उनके छुड़वाने की चेष्टा करने लगे। अंत में अपने इस प्रयत्न में जब इन्हें सफलता न मिली तब इन्होंने अनाज खाना छोड़ दिया और सन्यास लेकर इधर उधर भटकने लगे। इनका देहान्त सं० १९०० की भादों सुदी १३ को जोधपुर में हुआ।

महाराजा मानसिंह बड़े समझदार, गुणाढ्य, कविता प्रेमी एवं सरस्वती-सेवक थे। विशेषतः काव्यकला को इन्होंने बड़ा प्रोत्साहन दिया। ये इसके रहस्य को भी भली प्रकार समझते थे, और स्वयं भी काव्य रचना में प्रवीण थे। कवियों, विद्वानों एवं पण्डितों का ये इतना आदर करते थे कि वे पाल-कियां में बैठे फिरते थे। इन्होंने जोधपुर में 'पुस्तक प्रकाश' नामक पुस्तकालय की स्थापना की जिसमें आज संस्कृत की १६७८ और डिंगल आदि की १०९४ हस्त लिखित पुस्तकों का सुन्दर संग्रह है। इसमें सबसे प्राचीन पुस्तक सं० १४७२ की लिखी हुई है। महाराजा की गुणग्राहिता के विषय में यह दोहा आज भी मारवाड़ में प्रसिद्ध है :—

जोध बसाई जोधपुर, ब्रज कीनी ब्रिज पाल ॥

लखनेऊ, काशी, दिली, मान करी नेपाल ॥

इनके रचे हिन्दी तथा संस्कृत के ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) नाथ चरित्र (२) विद्वज्जन मनोरञ्जनी (३) कृष्ण विलास (४) (टीका भागवत की मारवाड़ी भाषा की टीका) (५) चौरासी पदार्थ नामावली (६) जलन्धर चरित्र (७) नाथ चरित्र (८) जलंधर चन्द्रोदय (९) नाथ पुराण (१०) नाथ स्तोत्र (११) सिद्ध गंगा, मुक्ताफल सम्प्रदाय आदि (१२) प्रश्नोत्तर (१३) पद संग्रह (१४) शृंगार रस की कविता (१५) परमार्थ विषय की कविता (१६) नाथाष्टक (१७) जलंधर ज्ञान सागर (१८) तेजमंजरी (१९) पंचावली (२०) स्वरूपों के कवित्त (२१) स्वरूपों के दोहे (२२) सेवा सागर (२३) मान विचार (२४) आराम रोशनी (२५) उद्यान वर्णन ।

महाराजा मानसिंह डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे। नाथ संप्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति होने से इन्होंने उक्त पंथ के सिद्धान्तों, उसकी महिमा आदि के विषय में अधिक लिखा है। पर इनकी शृंगार रस की कविताएँ भी थोड़ी सी मिली हैं जो काव्यकला एवं विचार-मौलिकता दोनों ही दृष्टियों से बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं।

इनकी कविता देखिये:—

सरसर बरसत सलिल, धरर धरर घन घोरं
 भररर भरना भरत, दसा दिसी बोलत मोरं
 भर पावस चहुँ दिसि, प्रचंड दामिनि दमकाई
 सर डार जल भरत, सरित जल निधिहिं मिलाई

किलकारि करत जित तितहिं, विहँग मधुर सबद मन भावहीं
 नृप मान कहत या विधि, प्रबल घन बरपा रितु आषहीं

सीत मंद सुखद समीर ते चलत मृदु,

अंबन के मंजर सुबास भरे चारों ओर ।

जिनतें उठत परिमल की लपट अति,

ललित सुचित जौन भौरन को लेत चोर ॥

आयो कुसुमाकर सोहायो सब लोकन को,

हेरत ही हियरे उठत सुख की हिलोर ।

अति उमदाने रहैं महामोद साने रहैं,

और लपटाने रहैं जिन पर साँझ भोर ॥

(१६) कविराजा बांकी दास—ये आशिया शाखा के चारण थे।

इनका जन्म मारवाड़ राज्य के पंचभदरा परगने के भाड़ियावास नामक गांव में सं० १८२८ में हुआ था। इनके पिता का नाम फतह सिंह और दादा का शक्तिदान था। अलकारों के प्रख्यात ग्रंथ जसवन्त जसोभूषण के रचयिता मुरारिदान इनके पौत्र थे। छोटी अवस्था में बांकीदास ने अपने गांव में थोड़ा सा पढ़ना-लिखना सीखा और सोलह वर्ष की आयु में जोधपुर चले गये; जहाँ भिन्न २ गुरुओं से काव्य, व्याकरण, इतिहास आदि विभिन्न विषयों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर अपने ऊँचे व्यक्तित्व एवं ऊँची

योग्यता के सहारे महाराजा मानसिंह के प्रीति पात्र बन गये। महाराजा मान सिंह बांकीदास की कवित्व शक्ति और विद्वता पर मुग्ध थे। उन्होंने इन्हें अपना काव्य गुरु बनाया और कालान्तर में कविराजा की उपाधि, ताजीम, पाँव में सोना, बाँहपसाव आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। गुरु शिष्य का सम्बन्ध सूचित करने के अभिप्राय के उक्त महाराज ने इन्हें कागज़ों पर लगाने की मोहर रखने का मान भी दे रक्खा था, जिस पर निम्न लिखित शब्द अंकित थे:—

श्रीमन् मान धरणि पति, बहु गुन रास ।

जिन भाषा गुरु कीनौ, बांकीदास ॥

बांकीदास संस्कृत, डिंगल, फ़ारसी तथा ब्रज भाषा के प्रकाण्ड परिङ्कत थे और आशुकवि होने के साथ साथ इतिहास के भी भारी ज्ञाता थे। कहा जाता है, एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष में भ्रमण करता हुआ जोधपुर आया और महाराजा मानसिंह से मुलाकात करते समय उनसे यह प्रार्थना की कि यदि आपके यहाँ कोई अच्छा इतिहासवेत्ता हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ। इस पर महाराजा ने बांकीदास को उसके पास भेजा। बांकीदास के ऐतिहासिक ज्ञान, उनकी स्मरण शक्ति और उनके काव्य-चमत्कार को देखकर वह दंग रह गया और जिस समय जोधपुर से जाने को रवाना हुआ महाराजा से कह गया कि जिस आदमी को आपने मेरे पास भेजा था वह इतिहास ही का पूर्ण ज्ञाता नहीं, वरन् उच्चकोटि का कवि भी है। इतिहास का ऐसा पूर्ण और पुख्ता ज्ञान रखने वाला कोई दूसरा व्यक्ति मेरे देखने में अभी तक नहीं आया। इसे समस्त भूमण्डल के इतिहास का भारी ज्ञान है। मैं ईरान का रहने वाला हूँ, पर ईरान का इतिहास भी मुझसे अधिक वह जानता है।

बांकीदास का अंतकाल सं० १८१० में श्रावण सुदी ३ को जोधपुर में हुआ था। इनकी मृत्यु से महाराजा मानसिंह को असीम दुःख हुआ और निम्नलिखित शब्दों द्वारा उन्होंने अपने शोकोद्गार प्रगट किये:—

सद्विद्या बहुसाज, बांकी थी बांकाबसु ।

कर सुधी कवराज, आज कस्यगो आशिया ॥

विद्याकुल विख्यात, राजकाज हर रहसरी ।
बांका तो बिण बात, किण आगल मनरी कहाँ ॥

इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं :—

(१) सूर छत्तीसी (२) सहिछत्तीसी (३) वीर विनोद (४) धवल पच्चीसी (५) दातार बावनी (६) नोति मंजरी (७) सुवह छत्तीसी (८) वैसक वार्ता (९) मावड़िया मिजाज (१०) कृपण दर्पण (११) मोह मर्दन (१२) चुगल मुख चपेटिका (१३) वैस वार्ता (१४) कुकवि बत्तीसी (१५) विदुर बत्तीसी (१६) भुरजाल भूषण (१७) गज लक्ष्मी (१८) अमाल नख शिख (१९) जेहल जस जड़ाव (२०) सिद्ध राव छत्तीसी (२१) संतोष बावनी (२२) सुजस छत्तीसी (२३) वचन विवेक पच्चीसी (२४) कायर बावनी (२५) कृपण पच्चीसी (२६) हमरोट छत्तीसी (२७) स्फुट संग्रह ।

उपरोक्त ग्रन्थों को नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने तीन भागों में प्रकाशित किया है। इनके सिवा बाँकीदास के पांच-सात दूसरे ग्रन्थों और २८०० के लगभग ऐतिहासिक वार्ता का पता भी हाल ही में लगा है।

बाँकीदास सुधारवादी कवि और यथार्थ भाषी सज्जन थे। अपनी कविता में इन्होंने जहाँ वीरों, दानियों, भक्तों आदि का यशोगान किया है वहाँ मूर्खियों, चुगलखोरों, धोखेबाज़ व्यापारियों, कायरों, धन लोलुप कवियों पर व्यंग्योक्तियाँ कसकर उनकी भी बहुत बुरी तरह से खबर ली है। भावावेश में कहीं-२ तो ये इतने आगे बढ़ गए हैं कि अश्लीलता की बू तक आ गई है। इनकी समस्त रचनाएँ काव्य-कला-कलित, भावापन्न एवं स्फूर्ति वर्द्धक हैं, और प्रसाद गुण तो इनकी एक ऐसी विशेषता है जो डिंगल के कवियों में कम पाई जाती है। भाषा इनकी सालंकार, सरस तथा विषयानुकूल है। और उसमें प्रवाह गत स्वाभाविकता एवं सरसता है। अलंकारों पर बाँकीदास की दृष्टि विशेष रहती थी, मुख्यतः अर्थालंकारों पर। यों तो दूढ़ने से साहित्य प्रसिद्ध सभी अलंकार इनकी रचना में मिल जायेंगे। परन्तु उदात्त, हेतु आदि अलंकारों की ओर इनका झुकाव अधिक दृष्टिगोचर होता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे देते हैं:—

कृपण कहै ब्रह्मा किया, मांगण बड़ी बलाय ।
 विसव वसावण वासते, फाटक दिया बणाय ।
 दियो सबद सुणियो दुसह, लागो तन मन लाय ।
 सूं ब दियो न करै सदन, परब दिवाली पाय ॥
 सन मुख अति मीठा सबद, मेह समैरो मोर ।
 उगलै विष परपूढ ओ, चुगल दर्ई रो चोर ॥
 पनग लड़ो कीड़ा पड़ो, सड़ो झड़ो दुख संग ।
 जग चुगलारी जीभड़ी, वायस भखो विहंग ॥
 कूकर लाय जलै नहीं, जुड़े न कायर जंग ।
 विदुर न ठहरे विपत में, संपत में हीज संग ॥
 ऊँडा जल सूकै अवस, नीलो बन जल जाय ।
 चुगल तणा पग फेर सूं, बसती ऊजड़ थाय ॥
 सूरज खांखल रतनसल, पोहमी रिण जल पंक ।
 कायर कटक कलंक इम, कुकवी सभा कलंक ॥

पारस की परवाह नहीं, परवाह रसायन की न रही है ।
 बंक सौ दूर रहो सुरपादप, चाह मिटी कित मेरु मही है ॥
 देवन की सुरभी दिस दौर, थकी मनकी सब सांची कही है ।
 मांग हों एक मरुपति मान कौं, नाथ निभायगो टेक गही है ॥

किशन जो आढ़ा—ये राज स्थान के प्रसिद्ध कवि दुरसा जी की वंश-
 परंपरा में थे और मेगाड़ के महाराणा भोमसिंह जी के आश्रित थे । इनके पिता
 का नाम दूल्हा था, जिनके छः पुत्रों में ये तीसरे थे । रघुवर जस प्रकाश
 में इन्होंने अपना वंश परिचय इस प्रकार दिया है:—

दुरसा घर किसनेस, किसन घर सुकवि महेस्वर ।
 सुत महेस खुंमाण, खान साहिब सुत जिण घर ॥
 साहिब घर पनसाह, पना सुत दुल्ह सुकव पुण ।
 दुल्ह धरे षट पुत्र, दान^१ जस^२ किसन^३ बुधोभण^४ ॥

सारूप^५ चमन^६ मुरधर उत्तन, घण्ट नगर पाँचेटियो ।

चारण जात आड़ा विगत, किसन सुकवि पिंगल कियो ॥

किशन जी को हिन्दी तथा संस्कृत के रीति ग्रंथों का प्रौढ ज्ञान था और डिंगल-पिंगल दोनों में कविता करने के अभ्यासी थे। इतिहास की ओर इनकी रुचि विशेष थी। इतिहास सम्बन्धी सामग्री को एकत्र करने के लिए जब कर्नल टाड ने मेवाड़ में भ्रमण किया था तब ये उनके साथ थे और चारण भाटों के घरों में पड़ी हुई बहुत सी सामग्री इन्हीं के अविश्रान्त उद्योग से कर्नल टाड को प्राप्त हुई थी। इनकी लिखी सैकड़ों फुटकर कविताएँ तथा भीम विलास और रघुवर जस प्रकास नामक दो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। भीमविलास महाराणा भीमसिंह जी की आज्ञा से सं० १८७६ में लिखा गया था। इसमें उक्त महाराणा का जीवन - वृत्तान्त है। इतिहास की दृष्टि से यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण रचना रघुवर जस प्रकास है। इसमें डिंगल के छंद शास्त्र का विस्तृत विवेचन है। यह सं० १८८१ में पूरा हुआ था। इसमें हिन्दी, संस्कृत और डिंगल में प्रयुक्त प्रधान २ छन्दों के लक्षण बहुत सरल भाषा में समझाये गये हैं और उदाहरणों में, जैसा कि मंछाराम कुत रघुनाथ रूपक में हैं, भगवान रामचन्द्र का यशोगान किया गया है। मात्रा, गण, प्रस्तार, वैण सगार्द, काव्य दोष आदि पर लिखी हुई इनकी व्याख्याएँ वास्तव में बहुत मौलिकतापूर्ण और अपने रंग ढंग की अनुपम हैं।

इनकी कविता का नमूना देखिये:—

अष्टादस संमतह वरस गुनयासी जानहु ।

रित वसंत अरु चैत सुदि दुतिया तिथ मानहु ॥

भीम रान करि कृपा हुकम श्रीमुख फरमाय ।

दुल्ह सुतन कवि किसन नाम यह ग्रंथ बनाय ॥

सुनि रीझ भीमअरि सिंघ सुत कुरब कृपादत अधिक दीय ।

यह ग्रन्थ नाम सहुलास चित भीम विलास प्रकास कीय ॥

हय अरोह कहा लगत, सर्प सिर पै कहा सोहत ।

कहा न दाटा कहत, सिद्ध कहि काकौ सेकत, ॥

नर सेवक कहा नाम, कवित्त के आदिः धरत किहि ।
का घटते को कहत, बनिक संचत का कहि वहि ॥
दख चलत खाग कहाँ लरतदल, दसरथ सुत कौ हैं बरन ।
कवि कृष्ण इहै उत्तर कियौ, रामनाम जग ऊधरन ॥

(२०) महाराव राजा विष्णुसिंह जी—इनका जन्म वि० सं० १८३० में हुआ था। ये बूंदी नरेश महाराव राजा उम्मेदसिंह जी के पौत्र और अजीतसिंहजी के पुत्र थे। जब ये साढ़े चार माह के थे तब इनके पिता का देहान्त हो गया। जिससे इनके दादा उम्मेदसिंह जी ने, जो पहले राज्याधिकार अपने पुत्र अजीतसिंह को सौंप कर वानप्रस्थ में चले गये थे, पुनः शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया लिया और जब तक विष्णु सिंहजी नाबालिग रहे तब तक सुचारु ढंग से सभालते रहे। बड़े होने पर इन्होंने राज्य कार्य करना प्रारम्भ किया और जहाँ तक बन सका अपनी तरफ से राज्य को उन्नत करने में कोई कसर न रखी। महाराव राजा को मृगया का बड़ा शौक था और अपने हाथों से सहस्रों सिंहों का शिकार किया था। इसी मृगया में आवश्यकता से अधिक लिप्त रहने के कारण इनका एक पांव टूट गया था, जिससे ये चिरकाल तक लंगड़े रहे और बहुत छोटे दीख पड़ते थे। इनके समय में बूंदी राज्य और अंगरेजी सरकार के बीच में संघि हुई। इन्होंने ७ वर्ष तक राज्य किया, और अपने पीछे दो पुत्रों को छोड़ कर ४५ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए।

विष्णु सिंह जी बड़े वीर, विचारशील, उदार एवं समयोचित कार्य करने वाले व्यक्ति थे, और विद्वानों तथा कवियों का बड़ा सम्मान करते थे। इसके सिवा ये स्वयं भी उच्चकोटि के कवि थे। इनके बनाये हुए दस हज़ार के लगभग कवित्त सवैया इत्यादि मौजूद हैं, जिनसे इनके अद्भुत काव्य-कौशल और अगाध भगवद्भक्ति का परिचय मिलता है। इनकी भाषा और भाव दोनों जैसे सरल हैं, वैसे ही व्यंजना भी चुम्बी हुई, आकर्षक है।

इनकी कविता के दो नमूने यहाँ दिए जाते हैं:—

होरी में गोरी किशोरी सबै मिलि दौरी सुपौरि पै कान पयेरी ।
हो हो कै हाक करी हँसिकै बसिकै रसिकै चसिकै सचयेरी ॥

चन्दन चोबेन चर्चित है चितथौ पियकी करिकै रिझयेरी ।

मार मची अति ही सुकुमार सुलाल गुलाल तँ लाल भयेरी ॥

चन्दभयो विष कन्द हमैं अब सूल सहेली समीर लखीरी ।

भाजन भौन भये भय भूखन भोजन भोग भलेन भखीरी ॥

जाखिनतै नँद नँद लख्यो कहि ता दिनतै सब बात नखीरी ।

नैनन सैनन सौर लगी उर प्रीत नहीं बिपरीत सखी री ॥

(२१) गोस्वामीकृष्णलाल—ये बूदी के प्रसिद्ध गोस्वामी गदाधरलाल जी के वंश में महन्त श्री मोहनलाल जी के पुत्र थे । इन्होंने सं० १८७२ में नायिका भेद का एक ग्रंथ कृष्ण विनोद और सं० १८७४ में दूसरा ग्रंथ अलंकारों का रस भूषण नाम का बनाया । महाराज राजा विष्णु सिंह जी की राणी राठोड़ जी की आज्ञा से भक्तमाल की टीका भी इन्होंने लिखी थी । इनकी भाषा सानुप्रास और कविता मधुर है । एक उदाहरण देखिये:—

सुखि सफेद भई बिरहै जरि, सोई गंगे गति ऊरध दैनी ।

अंग मलीन अँगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी ॥

ताहि समै भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी ।

कृष्ण कहै तब ही वर बालकै, आय कही ततकाल त्रिवैनी ॥

(२२) महाराणा जवान सिंहजी—ये महाराणा भीमसिंह जी के पुत्र और महाराणा हमीरसिंह जी (दूसरे) के पौत्र थे । इनका जन्म वि० सं० १८५७ मार्गशीर्ष सुदि ३ को हुआ था । अपने पिता के स्वर्गवासी होने पर वि० सं० १८८५ में ये मेवाड़ की गद्दी पर बैठे । इतिहास प्रसिद्ध रूपवती कृष्णा कुमारी इनकी बहिन थी । महाराणा का क्रुद मझोला, रंग गेहूँआ, शरीर पुष्ट, आँखें बड़ी तथा पेशानी चौड़ी थी, और ये बड़े हँसमुख, मृदुभाषी, कोमल हृदय एवं स्वरूपवान थे । काव्यरचना इनका अभ्यस्त विषय था । इन्होंने सैकड़ों कवित्त, सवैये, पद, दोहे आदि बनाये, जो अर्थ गौरव, काव्योत्कर्ष एवं कोमलकान्त पदावली की दृष्टि से परम प्रशंसनीय हैं । महाराणा की डिंगल में भी अद्भुत गति थी, परन्तु अपनी कविताएँ इन्होंने डिंगल में न लिखकर ब्रजभाषा में ही लिखी हैं । इनकी भाषा परिमा-

जित, कल्पनाएँ सुघर और रचना पद्धति सरस है। इनके काव्य में आत्म-समर्पण की झलक है, और शृंगार-भक्ति का अच्छा स्फुरण हुआ है।

वि० सं० १-१५ भाद्रपद सुदि १० को जवानसिंह जी का गोलोक-वास हुआ।

इनकी कविता के दो नमूने नीचे उद्धृत हैं :—

उद्धव आय गये ब्रज में सुनि गोपिन के तन में सुख छायाँ ।
आनंद सौं उमगी सगरी चलि प्रेमभरी दधि आन बँधायौ ॥
पृच्छति है मन मोहन की सुधि बोलतही दृग नीर चलायौ ।
देखि सनेह सखा हरि कै घनस्याम वियोग कलू न सुनायौ ॥

गज गोध ग्राह कीर गोतम की नार अरु,
कैते जीव तारे स्याम ल्योही अब तारौगै ।
सदन कसाई नामदेव और कबीर कहौ,
नरसी को सारथी काज ल्योही काज सारौगै ॥
रावरो कहाय और कौन पै पुकार करौ,
एहो वृजराज तुम विरद विचारौगै ।
संकट कौं टारौ प्रतपाल ज्यों न पारौ नाथ,
मेरे अपराध ही कौं चित्त में न धारौगै ॥

(२३) राजिया—इनका रचनाकाल सं० १८६० के आसपास माना जाता है। इनके सम्बन्ध में मत भेद है। चारण लोगों का कहना है कि राजिया के नाम से प्रचलित सोरठे स्वयं राजिया के लिखे हुए नहीं, बल्कि शेखाटी वा (जयपुर राज्य) के कृपाराम नामक एक चारण के रचे हुए हैं। राजिया कृपाराम का नौकर और जाति का रावणा राजपूत था। उसकी सेवा और स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर उसके नाम को अमर रखने के लिए उक्त चारण ने इन सोरठों की रचना की थी। इसके विरुद्ध रावणा राजपूत महासभा तथा कुछ दूसरे लोगों का कथन है कि इन सोरठों का रचयिता राजिया, जिसका पूरा नाम राजाराम था, है न कि कृपाराम चारण। कृपाराम राजाराम के सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय प्रमाण अभी तक नहीं मिला। ऐसी

दशा में उपरोक्त मतों में से एक को ग़लत और दूसरे को सही बतलाना कठिन है। हाँ, हिन्दी काव्य परम्परा तो यही बतलाती है कि कवि अपनी रचना में अपना ही नाम देता है, श्रोता अथवा आश्रयदाता का नहीं। उदाहरणार्थ, कबीर एवं रहीम के दोहों में उन्हीं के नाम हैं और न कि दूसरों के। पर राजस्थान में श्रोताओं को सम्बोधित करके कविता करने की प्रथा भी है और रही है। किसनिया, भेरिया, नाथिया आदि के दोहे इसी प्रकार से लिखे गये हैं। अतः संभव है, राजिया के नाम से जिन सोरठों का आज कल प्रचार है वे कृपाराम के बनाये हुए हों। पर यह कहकर कि सिवा चारण के कोई दूसरा ऐसे भावपूर्ण सोरठे लिख ही नहीं सकता, उन्हें कृपाराम के बनाये हुए प्रमाणित करना हमारे ज़्याला से प्रतिभा का ठेका लेना है।

राजिया के लिखे हुए बहुत से सोरठे कहे जाते हैं। पर ये सब ग्रंथाकार में नहीं मिलते; यों ही काव्यानुरागियों के मुँह से यत्र तत्र सुने जाते हैं और सो भी सब नहीं केवल सौ-दो सौ। जन साधारण से प्राप्त होने तथा प्राचीन हस्तलिखित प्रति के अभाव में यह भी नहीं कहा जा सकता कि इनका वास्तविक रूप कैसा था। पर जितने भी सोरठे, जिस रूप में भी प्राप्त हुए हैं, उनकी भाषा सीधी और भाव व्यंजना हृदय ग्राही हैं। राजस्थान के बाल, युवा, वृद्ध, निर्धन, धनिक, शिक्षित, अशिक्षित, सभी बात बात में इन सोरठों का प्रयोग करते हैं और श्रोताओं पर इनका प्रभाव भी जादू का सा पड़ता है। अर्थ चमत्कार और सारल्य राजिया के प्रधान गुण हैं। इनका प्रत्येक सोरठा सांसारिक अनुभव का भंडार है, काव्य दक्षता का द्योतक है।

पाठकों के विनोदार्थ कुछ सोरठे यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

मुख ऊपर मिठियास, घट माँही खोटा घड़े।
 इसड़ा सूं इखलास, राखी जै नहिं राजिया ॥
 कारज सरे न कोय, बलप्राकम हिम्मत बिना।
 हलकारयाँ की होय, रंग्या स्याँला राजिया ॥
 गुणो सपत सुरगाय, कियो कि सब मूरख कने।
 जाणो रूनो जाय, रण रोही में राजिया ॥
 खूंट गधेड़ा खाय, पैलारी बाड़ी पड़े।
 आ अण जुगती आय, रङ्गके चित्त में राजिया ॥

ऊँचे गिरवर आग, जलती सह देखे जगत ।

पर जलती निज पाग, रती न दोसे राजिया ॥

(२४) दीन दरवेश—मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर से १३ मील उत्तर में मेवाड़ के महाराणाओं के इष्टदेव श्री एकलिंग जी का मन्दिर है । जिस गाँव में यह मन्दिर है उसे अब कैलाशपुरी कहते हैं । दीनजी इसी गाँव के रहने वाले थे । ये जाति के लोहार थे । इनके जन्म एवं मृत्यु के संवत् का ठीक पता नहीं, पर इनके ग्रंथों से इनका रचना-काल सं० १८६३—८८ ठहरता है । मिश्र बंधुओं ने दीन जी का काठियावाड़ी होना बतलाया है, जो एक भारी भ्रम है । वास्तव में दीनजी नहीं, बल्कि इनके गुरु जिनका नाम बाल गुरु था, गिरनार (काठियावाड़) के रहने वाले थे । इस विषय में दीन जी ने स्वयं एक स्थान पर लिखा है— सत्त कहत है दीन गुरु स्थान गिरनार, हौं उदेपुर देस एकलिंग बासी । दीन जो जात-पात, छुआ-छूत इत्यादि के घोर विरोधी थे और हिन्दू-मुसलमानों के भेद को वृथा और हानि कारक समझते थे । ये थे तो साधु पर अपनी रहन-सहन से पूरे गृहस्थ प्रतीत होते थे । ये बढ़िया खाते, बढ़िया पहनते और बढ़िया घोड़े पर सवार होकर बाहर निकलते थे । इनके योग चमत्कार की एक कथा प्रसिद्ध है ।

कहते हैं, एक बार दीनजी डूंगरपुर राज्यान्तर्गत बणकोड़े नामक गाँव में गये और कई दिन तक वहाँ के ठाकुर साहब के पास रहे । एक दिन ठाकुर साहब जब कहीं बाहर गये हुए थे तब इन्होंने उनके एक भिट्टी के घड़े में से जल लेकर पी लिया । नौकरों को उनका यह व्यवहार कुछ बुरा मालूम हुआ । परंतु वे उन्हें कह कुछ भी न सके । संव्या समय जब ठाकुर साहब घर लौटे उन्होंने दीनजी से घड़ा छू जाने की बात उनसे कही । ठाकुर साहब छुआ-छूत को मानने वाले व्यक्ति थे । दीनजी का यह व्यवहार उन्हें भी ठीक न ज़चा । उस वक्त तो वे कुछ न बोले पर दूसरे दिन सुबह जब दीनजी भ्रमणार्थ कहीं बाहर गये हुए थे उन्होंने अपने एक नौकर को कहा कि घड़े को उठाकर फेंक दो । नौकर ने उठा कर उस घड़े को झरोखे में से फेंक दिया । परन्तु घड़ा बहुत देर तक तो शून्य में अटका रहा और बाद में धीरे धीरे उतर कर ज़मीन

पर इस तरह से आ कर टिका मानो किसी ने लाकर उसे धीरे से वहाँ रक्खा हो। सब लोग इस घटना को देखकर आश्चर्य-चकित हो रहे थे कि इतने में दीन जी भी वहाँ आगये। ठाकुर साहब ने घड़े की बात उनसे कही और अपनी विचार संकीर्णता पर पश्चात्ताप करते हुए बार बार क्षमा-याचना करने लगे। यह सुन कर दीनजी ने थोड़ा सा हँस दिया और बाद में इस संबंध की यह कविता लिखी:—

बणकोड़े ऐसी बनी, करन हार करतार ।
भरी मट्टकी नीर की, दर्ई गोखतै डार ॥
दर्ई गोखतै डार, नैकु यह बात नई है ।
ऊँची हाथ हकीस, भरी रहि दुरी नहीं है ॥
कहै दीन दरवेस रखे ताकौं कुण फोड़े ।
दीनानाथ दयाल बात रखी बणकोड़े ॥

मेवाड़ के महाराणा भीम सिंह जी (सं० १८३४—८८) दीन जी को बहुत मानते थे। इसलिये जब तक उक्त महाराणा जीवित रहे तब तक ये विशेष रूप से मेवाड़ में ही रहे। पर बाद में कोटे चले गये, जहाँ एक दिन जब ये चँबल में स्नान करने के लिये गये हुए थे, डूब कर मर गये। यह घटना सं० १८९० के आस-पास हुई थी।

दीनजी के लिखे हुए छोटे छोटे बहुत से ग्रंथ और सैकड़ों फुटकर कविताएँ मिली हैं। इनकी भाषा बहुत अस्तव्यस्त है और कविता में छन्दो भङ्ग भी बहुत मिलता है। पर इनके विचार बहुत ऊँचे तथा मनन करने योग्य हैं।

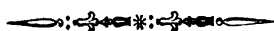
इनकी कविता देखिए :—

जितना दीसै थिर नहीं, थिर है निरँजन नाम ।
ठाट पाट नर थिर नहीं, नाहीं थिर धन धाम ॥
नाहीं थिर धन धाम, गाम धर हस्ती घोड़ा ।
नजर आत थिर नाहि, नाहि थिर साथ संजोड़ा ॥

कहै दीन दरवेश, कष्टा इतने पर इतना ।
थिर निज मन सत शब्द, नार्हीं थिर दीसे जितना ॥

बूझै कूप समंद कूं, अब्धौ सनमुख आय ।
तुव में जल कितनोक है, हम कूं देय बताय ॥
हम कूं देय बताय, समंद कै हैं सुन भाई ।
भोले जल मत भूल, नाहि अपनी सर खाई ॥
कहै दीन दरवेश, तु होवे तैसा सूझै ॥
सुनौ सुग्यानी संत, कूप समंद कूं बूझै ॥

छठवां अध्याय



आधुनिक काल (पद्य)

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल स्थूल रूप से संवत् १९०० के पास से प्रारंभ होता है। इस काल को मोटे ढंग से हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—परिवर्त्तन और उत्तर परिवर्त्तन। प्रारंभ के २०-३० वर्षों का समय परिवर्त्तन और उसके बाद से आज तक का उत्तर परिवर्त्तन कहा जाना चाहिये। परिवर्त्तन काल में सबसे बड़े कवि बूंदी के सूर्यमल हुए जिन्हें कोई कोई राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। निःसन्देह सूर्यमल एक प्रतिभावान कवि थे। अपने समकालजीवी कवियों पर इनका इतना ही गहरा प्रभाव था जितना बंगाल के कवियों पर अधुना श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर का देखा जाता है। रवीन्द्रनाथ की तरह सूर्यमल की प्रखर प्रतिभा ने भी राजस्थान के तत्कालीन कवियों की मौलिकता नष्ट कर दी और उन्हें न पनपने दिया। छोटे-मोटे सैकड़ों कवि इनकी काव्य धारा के प्रचंड वेग में विलीन हो गये। सूर्यमल की कविता इतनी भाव पूर्ण, इतनी सुन्दर और इतनी उच्च कोटि की होती थी कि कुछ कवियों ने तो इन्हीं के भावों को ला ला कर अपनी रचनाओं में उतारना शुरू किया और कुछ स्वतंत्र कविता करना छोड़ इनके पद्यों को सुना सुना कर वाद वादी लूटने लगे। छोटे २ कई सूर्यमल उस समय पैदा हो गये थे। कवि समुदाय में, राजदरबारों में साहित्य सभाओं में, जहाँ देखो वहाँ सूर्यमल की चर्चा सुनाई पड़ती थी। अतः सूर्यमल के रचना काल के इस समय को यदि सूर्यमल-युग भी कह दिया जाय तो इसमें कुछ अनुचित न होगा।

सूर्यमल के बाद से राजस्थानी कविता का प्रवाह मंद पड़ गया और उसमें कोई विशेष आकर्षण न रहा । इसके मुख्य कारण दो थे—हिन्दी गद्य का अधिकाधिक प्रचार और कवियों को प्रोत्साहन की कमी । फिर भी कुछ कवियों ने राजस्थानी साहित्य की अच्छी सेवा की जिनमें से स्वामी स्वरूपदास, प्रतापकुँवरि बाई, जीवन लाल नागर, स्वामी गणेशपुरी, कविराजा मुरारिदान (बूंदी), कविराव गुलाबसिंहजी, चन्द्रकलाबाई, बिड़दसिंह, कविराजा मुरारिदान (जोधपुर) बख्तावरजी, ऊमरदान, महाराज चतुरसिंह जी, केसरीसिंह जी बारहट, पंडित उमाशंकर जी द्विवेदी और दिनेशनदिनी चोर-डिया के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

(१) कविराजा सूर्यमल—ये चारणों की मिश्रण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में वि० सं० १८७२ में बूंदी में पैदा हुए थे । इनके दादा बदन कवि और पिता चंडीदान की बूंदी दरबार के प्रसिद्ध कवियों में गणना थी । चंडीदान को तो बूंदी नरेश महाराव राजा विष्णुसिंह जी की ओर से होसूदा नामक एक गाँव, लाख पसाव और कविराजा की उपाधि भी मिली थी । सूर्यमल ने छः विवाह किए थे पर इनके कोई संतान नहीं हुई जिससे इन्होंने मुरारिदान जी को गोद लिया था । अपने पिता एवं स्त्रियों के विषय में सूर्यमल ने अपना वंश परिचय देते हुए स्वयं ही वंशभास्कर में लिखा है:—

बदन सुकवि सुत कवि सुकुट, अमर गिरा मतिमान ।

पिंगल डिंगल पट्ट भये, धुरंधर चंडिदान ॥

दोला, सुरजा, विजयका, जसारु पुष्पा नाम ।

पुनि गोविन्दा पट्प्रिया, अर्कमल्ल कवि बाम ॥

सूर्यमल बड़े विलासी, मद्यप, तुनुक मिर्जाज एवं स्वतंत्र प्रकृति के पुरुष थे और अपने व्यवहार में इतने रूखे थे कि लोग उनके पास जाना भी पसंद नहीं करते थे । ये दिन रात शराब के नशे में चूर रहते थे और इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि बिना मदिरा-पान के भी कोई मनुष्य ठीक तरह से अपना काम कर सकता है । प्रवाद है कि जिस समय इनकी एक स्त्री का देहान्त हुआ उस समय भी ये शराब पीकर उसकी दाह किया के

लिए घर से बाहर निकले थे। सूर्यमल का जीवन ही शराब पर निर्भर था। पर फिर भी नशे में ये इतने उन्मत्त नहीं हो जाते थे कि शरीर की सुषुप्ति ही न रहे। इतना ही नहीं, नशे की हालत में इनकी कल्पना शक्ति और भी सजग हो उठती थी और दो आदमी जो इनके दाहिनी तथा बाईं तरफ बैठे रहते बड़ी कठिनता से उनकी उस समय की कविताओं को लिख पाते थे। सहृदय कवि होने के अतिरिक्त सूर्यमल उच्चकोटि के विद्वान् थे और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल आदि कई भाषाएँ जानते थे। राजस्थान तथा मालवे के राज दरबारों में इनका बड़ा सम्मान था और इनकी टक्कर का दूसरा कवि उस समय न था।

इनका देहान्त सं० १६२० में बूँदी में हुआ था।

सूर्यमल ने वंश भास्कर, बलवंत विलास, छंदो मयूख, और वीर सप्तशती ये चार ग्रंथ बनाये। इनके सिवा इनके लिखे फुटकर कवित्त सवैये भी बहुत से मिलते हैं। ग्रंथों में 'वंश भास्कर' इनकी सर्वश्रेष्ठ और सर्व प्रिय रचना है। बूँदी नरेश महाराव राजा रामसिंह जी (सं० १६७८—१९४५) की आज्ञा से इन्होंने सं० १८९७ में इस ग्रन्थ को लिखा था। इसमें प्रधानतः बूँदी राज्य का इतिहास वर्णित है, पर प्रसंगवश राजस्थान की दूसरी रियासतों का इतिहास भी थोड़ा बहुत आ गया है। कवि कृष्णसिंह जी बारहट ने इसकी टीका की है और टीका सहित ४३६८ पृष्ठों में समस्त ग्रन्थ छप कर तैयार हुआ है। वंश भास्कर की भाषा के संबन्ध में थोड़ा सा मत-भेद है। कुछ लोग इसकी भाषा को डिंगल और कुछ पिंगल बतलाते हैं। परन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो वंश भास्कर की भाषा न तो शुद्ध डिंगल है, न शुद्ध पिंगल। वह चारणों की खिचड़ी भाषा है जिसमें संस्कृत, प्राकृत, पेशाची, अपभ्रंश, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है और क्रियापद, संयोजक शब्द, कारक-चिन्हादि भी डिंगल और पिंगल दोनों के मिलते हैं।

वंश भास्कर की भाषा कठिन भी बहुत है। सूर्यमल ने कहीं २ तो अपने निज के गड़े हुए शब्द रख दिये हैं और कहीं २ ऐसे अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दों का व्यवहार किया है कि एक साधारण योग्यता वाले पाठक का वंश

भास्कर को समझना तो दूर रहा उसे हाथ में लेने का साहस भी कम होता है। इनकी क्लिष्ट भाषा का थोड़ा सा नमूना देखिये :—

कट्टिल कर्णिकावली भटा हृदावली भये,
अरिष्ठ के अरिष्ठ वृन्द लोम कन्द उन्नये।
बने अरी पलास वान अन्दु नाग बटलरी,
कलेज पीलु पर्णिका कपेरु तोर इक्करी ॥

चारण कवियों तथा वंश भास्कर के दूसरे प्रशंसकों का कहना है कि सूर्यमल जैसा प्रतिभावान कवि हिन्दी में न तो हुआ है और न होगा। वंश भास्कर के साथ ही वे सच्ची कविता की इति श्रो समझते हैं। चारण लोगों का यह मत कुछ लोगों का अत्युक्ति पूर्ण प्रतीत हुआ होगा और कुछ अंशों में वह अत्युक्ति पूर्ण है भी। परन्तु इतना तो फिर भी कहना ही पड़ेगा कि वीर रस का जैसा भावानुरंजित और पुरस्सर वर्णन सूर्यमल ने किया है वैसा हिन्दी के किसी दूसरे कवि की रचना में देखने को अभी तक नहीं मिला। उदाहरण स्वरूप भूपण ही को लीजिये। ये वीर रस के सर्वोच्च कवि माने जाते हैं। भूपण राष्ट्रीय कवि हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। वे हिन्दू धर्म के उपासक हैं, इसमें कोई मतभेद नहीं। उनकी कविता में औरङ्गजेब के अत्याचारों से प्रताड़ित हिन्दू जाति के हाहाकार की प्रतिध्वनि हैं, इसमें भी कोई अत्युक्ति नहीं। परन्तु इतना होने हुए भी कहाँ सूर्यमल और कहाँ भूपण ! दोनों में आकाश-पताल का अन्तर है। वीर-वीरांगनाओं के हृदयस्थ भावों का विश्लेषण और काव्यमय निरूपण भूपण की कविता में कहाँ, जिसके दर्शन सूर्यमल की रचना में पग पग पर होते हैं। सच तो यह है कि सूर्यमल की स्वभाव-सिद्ध स्वर-जहरी के गामने भूपण के वागाडंबर-पूर्ण कवित्त-सवैयेप्राण-विहीन पंजर की तरह शुष्क और निर्जीव प्रतीत होते हैं।

किसी राजपूत महिला का पति शत्रुओं से लड़ने के लिये रणभूमि में गया हुआ है। वह उमी की चिन्ता में मग्न है, पर यह नहीं चाहती कि उसका पति भाग कर घर आ जाय जिससे सती होने की उसकी लालसा पर पानी फिर जाय और संसार के सामने उसे लज्जित होना पड़े। इतने में उसे सूचना मिलती है कि उसका पति रणक्षेत्र की तरफ से भागा हुआ घर की

और आ रहा है। अब उसके दुःख का क्या ठिकाना ! इतने में पति भी आ पहुँचता है। कायर पति को अपनी आँखों के सामने खड़ा देख एक लंबी साँस खींच कर वह कहती है :—

की घर आवे थें कियौ, हणियाँ बळती हाय ।

घण थारे घण नेहड़ै, लीधो बेग बुलाय ॥

भावार्थ—हाय, घर आकर तुमने क्या किया ? यदि मारे जाते तो मैं भी तुम्हारे साथ सती होती। इस पर पति उत्तर देता है—प्रिये, तेरे प्रेमाधिक्य ही ने तो मुझे शीघ्र बुला लिया।

पूतां रे बेटा थिया, घर में बधियो जाळ ।

अब तो छोड़ो भागणो, कंत लुभायो काळ ॥

भावार्थ—पोतों के भी पुत्र होकर अब घर में बहुत जाल बड़ गया है और काल तुम्हारी अवस्था पर लुभा रहा है। कंत, अब तो युद्ध से भागना छोड़ दो।

धव जीवे भव खोवियो, मो मन मारियो आज ।

मो नूँ ओछे कँचुवै, हाथ दिखाताँ लाज ॥

भावार्थ—प्रीतम इस प्रकार से जी कर तो तुमने सचमुच जन्म खो दिया। तुम्हारी यह दशा देख आज मेरा तो मन ही मर गया। अब तो इस (सौभाग्य चिन्ह) ओछी कँचुकी मैं हाथ दिखाते हुए भी मुझे लज्जा मालूम होती है।

यो गहणों यो बेस अब, कीजै धारण कंत ।

हूँ जोगण किए कामरी, चूड़ा खरच मिटंत ॥

भावार्थ—कंत ! यह मेरा वेश और ये आभूषण अब आप ही धारण कीजिये। मैं तो योगिनी हो चली। अब आपके किस काम की। अच्छा ही हुआ आपके भी चूड़ियों का खर्च मिटा।

कंत सुपेती देखताँ, अब की जीवण आस ।

मो थण रहणै हाथ हूँ, घाते मुँहड़े घास ॥

भावार्थ—हे कंत, बालों की सफेदी देखते हुए अब और कितने दिन

जीने की आशा है। आश्चर्य होता है कि मेरे स्तनों पर रहने वाले हाथों से तुम कैसे शत्रु के सामने मुँह में तिनका लेते हो।

विश्व के उन समस्त कवियों में जिनकी रचना में युद्ध-वर्णन मिलता है, पाश्चात्य विद्वान महाकवि होमर का स्थान सबसे ऊँचा मानते हैं। और तो और, होमर की तुलना में व्यास और वाल्मीकि के युद्ध-वृत्तान्तों को भी उन्होंने अस्वाभाविक, अतिशयोक्ति पूर्ण एवं आवश्यकता से अधिक अलंकारों से लदे हुए बतलाया है।* यह अपना अपना मत है और इस संबंध में यहाँ कुछ कहना विषयान्तर ही होगा। पर होमर के युद्ध-वृत्तान्तों की यह विशेषता है कि उन्हें पढ़ते समय पाठक यह नहीं महसूस करता कि वह किसी पुस्तक में युद्ध का वर्णन पढ़ रहा है, बल्कि ग्रीस और ट्राय की धावा मारती हुई सेनाओं की पद-ध्वनि, सैनिकों की खुंखवार हँकार आदि स्पष्ट रूप से कानों से सुनता और रणक्षेत्र के रोमांचकारी दृश्यों को अपनी आँखों से देखता है। यही गुण हम सूर्यमल की रचना में भी पाते हैं। वंशभास्कर में कई स्थानों पर युद्ध का वर्णन है और शायद इसीलिये वह काव्य ग्रंथ माना भी जाता है। नहीं तो इसके अधिक भाग का संबंध काव्य की अपेक्षा अधिक इतिहास से है। जिस समय सूर्यमल युद्ध का वर्णन करना प्रारंभ करते हैं, वे किसी भी बात को अधूरी नहीं छोड़ते; युद्ध संबंधी किसी भी विषय को अल्पता से नहीं देखते। सेनाओं की मुठ-भेड़, वीरों का जयनाद, कायरों की भगदड़, घायल वीरों का करुण-क्रन्दन इत्यादि के सिवा जिस समय योद्धा वार करता है उसकी तलवार कैसी दीख पड़ती है, रक्त की सरिता किस प्रकार खल खल शब्द करती हुई समर स्थली में प्रवाहित होती है और माँस के लोभ से लाशों पर बैठे हुए गोध दूर से कैसे दीख पड़ते हैं आदि बातों का नाना प्रकार की उपमा—उत्प्रेक्षाओं द्वारा वे ऐसा सुन्दर, ऐसा स्पष्ट और ऐसा सबल मज़मून बाँधते हैं कि पढ़ते ही हृदय सहसा हिल जाता है :—

*It must be admitted that in Sanskrit poems there is a great redundancy of epithets, too liberal a use of metaphor, simile and hyperbole and far too much repetition, amplification and prolixity.

—Sir M. Monier-Williams; Indian Wisdom, P. 423

नीचे हम सूर्यमल की कविता का थोड़ा सा अंश उद्धृत करते हैं —

उम्मेद सिंह के युद्ध का वर्णन

(दोहा)

ससि अंबर वसु इक समा, विक्रम सक गतवेर ॥

बुंदिय पुर बाज़ार बिच, भरिग बाढ़ असि भेर ॥

(मुक्तादाम)

अमावसि सावन मास अनेह, मच्यो इम बुंदिय खगन मेह ॥
छई नभ गिद्धनि चित्दनि छत्ति, घुमंडत गूढ़न चंचुव घत्ति ॥
लगी लुभि घुम्मन अछरि लैन, गुथ्यो रस भाव विभावन गैन ॥
रच्यो इत तंडव नारद रागि, भुक्क्यो षट्पि व्हों महती भनकारि ॥
उड़े सिर भेलत उद्धहि^१ ईग, वदेँ इत्त चंडिय के भुज बीस ॥
चट्टहि^२ रक्त खिलेँ चउसट्टि^३, बचकहि^४ बावन गावन गट्टि ॥
चुरैलिनि मंडत फालन चाल, लगावत डाइनि घुम्मरताल ॥
बजैँ लगि खगन खगन बाढ़, गिरैँ भट भीरु भजैँ तजि गाढ़ ॥
उमेद दिनेस रच्यो खग खेल, तुरयो सठ घुग्घुव दुग्ग दलेल ॥
फवैँ असि खुपरि टोपन फारि, बहेँ जनु सञ्जु व तंनि विदारि ॥
किरैँ कटि हड्डन खंड करकि, भरैँ उड़ि धारन बूर भरकि ॥
कटैँ सह सत्थिन जानुव जंघ, सुज्योँ गज सुंडिन खंडन संघ ॥
फदकहि^५ कट्टहि^६ कालिक फिफ^७, भचकहि^८ टोप कपालन भिफ^९ ॥
उड़े सिर फुटत भेजन ओघ, मनो नवनीत मटकिय मोघ^{१०} ॥
मचकहि^{११} रीढ़क बंक^{१२} अमाप, चटकहि^{१३} ज्योँ भिथिलापुर चाप ॥
धसैँ कडि लोचन सौनित धार, चटैँ सिम्सु मच्छ विलोमकिवार^{१४} ॥
कटैँ गल स्वास बजैँ बिकरार, धमैँ धमनी जनु लगि लुहार ॥
कटैँ हिय छत्रिय फट्टि किवार, सुज्योँ तद^{१५} लोहित कंज^{१६} सुहार ॥
परैँ कडि अंत अपुव्य प्रकारि, फनी गन जानि टिपारन फारि ॥

१ ऊपर ही । २ रक्त पीकर चौसठ यागिनियें सुश होती हैं । ३ कलेजे और फेंफड़े । ४ कपालों को भेदकर । ५ मानो मरपन की मटकी फूटी हो । ६ रीढ़ की हड्डी । ७ जैसे छोटी मछली पानी में उलटी चढ़ती हो । ८ जलारथ । ९ लाल कमल ।

परं छुटि संधित प्रान अपान^१, मनो पय पानिय लोन मिलान^२ ॥
 बनै फटि डाच कहे रद बडु, किधौ धृत डडिबय रंक कबडु^३ ॥
 गिटै रसना कहि भगन ग्राम, चहै नचि नागिन ज्यो पय आम ॥
 लगै दग मुच्छ फरकत लान, मनो उरभी बनसी मुखमीन ॥
 छलै छत^४ रत्त छछकन छुटि, फवै जनु गगरि जावक^५ फुटि ॥
 भुकै असि मत्त दुहथन भारि, मनो रजकालि सिला पट मारि^६ ॥
 छुटै फटि पेटिय लेटिय लंब, तनै पट जानि कुविंद कदम्ब^७ ॥
 मचै रव टोप उई फटि मत्थ, अलाबुव जानि अतीतन हत्थ^८ ॥
 कहै दग लगि कर्नानिय काल^९, मनो कुबलोहित^{१०} भौरन माल ॥
 चनै फटि ढाल बकत्तर चीर, सुज्यो तरु ताडन पत्त समीर ॥
 धरै हिय गोलिय गावत गित्त, मनो पटवा बटवा बिच बित्त ॥
 रटै फटि कोच^{११} करी रतनकि, भरै घन बादन^{१२} ज्यो भननकि ॥
 घटै दम मत्त बकै छकि घाय, मनो मद पामर जीह जडाय ॥
 कहै बपु छेकि बरच्छिन घात, नृणध्वज^{१३} अगकि गज प्रपात ॥
 लगै निकषै छिकि पट्टिस^{१४} लाल, मनो परतीयन के कर जाल ॥
 सुहै फटि हड्ड चटचट संधि, चटकत प्रात गुलाब कि गंधि ॥
 उठै विनु मत्थ किते तनु तुंग, थेइ थेइ नचचत थुंगत थुंग ॥
 बबकत डाच किते कन वैन, मनो बड़ बकर टकर मैन ॥
 गिरै बर रक्त पंसुलि गात, मनो कठ छप्पर पत्थर पात ॥
 छुटै पल जानु कहै नल हड्ड, मनो रद बारन बंगर बड्ड ॥
 लटकत पाय रकावन रुक्कि, मनो तप सिद्ध अथो मुख भुक्कि ॥
 मलंगत छत्तिन के क्रम मप्पि, मनो नट पट्टरि पाय मलप्पि ॥

१ मिले छुप श्वास और निश्वास की संधि छूटती है । २ मानो नमक मिलाने से दूध और पानी फट गया हो । ३ मुँह के फटने से बड़े बड़े दाँत दीखते हैं, वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसी दरिद्री ने टिबिया में कोड़ियों रखी हो । ४ घाव । ५ जावक का घटा । ६ मानो धोबियों की पंक्ति काड़े पछाड़ रही है । ७ मानो जुलाहों के समूह वस्त्र फैलाते हैं । ८ मानो जोगियों के हाथ से तूँधे गिरने हैं । ९ नेत्रों की काली पुतली । १० लाल कमल । ११ कनच । १२ काँसा आदि धातु के वाद्य । १३ बॉस । १४ कटार ।

छुटै घन घायक^१ सायक सोक, उडै^२ सरधा^३ गन ज्यों तजि ओक^४ ॥
 छकै कति वृत्त फिरै सुधि छोरि, बनै^५ जनु बालक भंभह भोरि^६ ॥
 गिरै सर बिद्ध घने^७ सिर तत्त, मनो सरधान तजे मधु छत्त ॥
 सरै^८ घन संगिन भिन्न सरीर, कुमारिन के जनु उज्ज करीर ॥
 बकै^९ बहु प्रेत मिल गल बत्थ, किधौ रन मल्ल अपूरब कथ ॥
 जगावत हाक रचावत जंग, लगावत भैरव नट्ट मलंग ॥
 घसै^{१०} चढि डाकिनि के मृत छत्ति^{११}, मनौ कि बिदूसक^{१२} को तियमत्ति ॥
 अटै पय इक किये छरु ओप, किये इक नैन लखै भरि कोप ॥
 करै^{१३} कटि जीह किये इक कान, घने मुख अद्द रचै घमसान ॥
 किये इक हथ किये गन केस, बनें^{१४} बहुरूप^{१५} मनौ नव बेस ॥
 मिलै^{१६} रसना कटि नकट^{१७} मूल, फरै^{१८} भुजगी कि लगी तिल फूल ॥
 किये कर टेकि उटै^{१९} रन रत्त, मनौ मद छाकन पामर मत्त ॥
 रहै^{२०} कति गिद्धन कौ गललाय, कहै^{२१} कति हूख अंचत हाय ॥
 बकै^{२२} कति मात पिता तिय बैन, गिरै^{२३} कति मोहित उच्छलि गैन ॥
 श्रवै^{२४} घन सावन को इत तुट्टि^{२५}, बरूथ घटा इत अयुध बुट्टि ॥
 बहै^{२६} पुर बुंदिय सोन^{२७} बजार, धपो^{२८} जनु, जोहि सरस्वति धार ॥
 गिरै^{२९} जल बदल गंग सुगाथ, पुर खिय अंसुव जामुन^{३०} पाथ^{३१} ॥
 बही इम बेनिय पत्तन बीच^{३२}, मिलै^{३३} बहु मुक्ति जहाँ लहि मीच ॥
 बन्यो रन बुंदिय सावन अद्द, दुधौ असि ज्वाल भयो पुर दद्द^{३४} ॥
 चुहट्टन लगिय लुत्थन लुत्थि, बिथारिग हट्टन बट्टन बुत्थि ॥
 समाकुल रूंड परे खिलि खंड, ढरे बनिजारन के जनु टंड ॥
 डडकत डाहल^{३५} के डमरूक, घुरावत घाय घने जनु घूक^{३६} ॥
 रटै^{३७} सिर मार अटै^{३८} कति रूंड, मिटै^{३९} कति जोर फटै^{४०} कति मुंड ॥

१ घाव करने वाले । २ मधुमक्खियाँ । ३ घर । ४ बच्चों का एक खेल विशेष (भौंभा भोली) । ५ मरे हुआ की छानियाँ । ६ कामी पुरुष । ७ भौंड । ८ नाक । ९ प्रसन्न होकर । १० रस । ११ बही । १२ जमुना । १३ जल । १४ इस प्रकार नगर में बिबेयी बही । १५ दग्ध हो गया । १६ भैरव । १७ उल्लू ।

बरै^१ सिर मंगि भरै^२ हर बैल, छुकै^३ कति छोह हकै^४ रन छैल^५ ॥
 लगै^६ कति कंठ लरत्थर पाय, जगै^७ कति प्रेत ठगै^८ भट जाय ॥
 लखै^९ कति हूर चखै^{१०} मिलिलाह, नखै^{११} नभ फूल रखै^{१२} गिनि नाह ॥
 किरै^{१३} कहुं कोच खिरै^{१४} लगि खग, फिरै^{१५} कति मत्त भिरै^{१६} जनु फग ॥
 घिरै^{१७} सिर बाढ गिरै^{१८} अति चोट, धिरै^{१९} नद सोन तिरै^{२०} कहुं घोट ॥
 जरै^{२१} उड़ि अग भरै^{२२} असि जोर, ढरै^{२३} भट केक टरै^{२४} जिमि ढोर ॥
 दरै^{२५} कति कुप्ति धरै^{२६} धक दाव, भरै^{२७} कति भूरि करै^{२८} मृतभाव ॥
 मरै^{२९} थकि स्वास परै^{३०} कहुं मूढ, अरै^{३१} कहुं हूर बरै^{३२} नवऊढ ॥
 ररै^{३३} हरि केक लरै^{३४} धकि रोस, हरै^{३५} जिय केक सरै^{३६} तजि होस ॥
 फटै^{३७} धर प्रेत बटै^{३८} सिर फांक, लटै^{३९} मन केक कटै^{४०} उर लांक^{४१} ॥
 खुलै^{४२} कहुं नैन डुलै^{४३} कहुं खग, भुलै^{४४} कहुं उद फुलै^{४५} मुख भग ॥
 छुलकत घायन रत्त छुलक, उरज्झत केस बनै^{४६} अकबक ॥
 अहकत तंतनि सिंधुव तार, दहकत भूतल देत दरार ॥
 भनंकत पक्खर बेधित बंट, घमकत घुग्घर घंटन घण्ट ॥
 बढी कुणपावल^{४७} उग्र बखान, मनो बड़पत्तन^{४८} दिग्घ मसान ॥
 गवाचन जालिन के पट डारि, रही रन बुंदिय नारि निहारि ॥
 बढी घनमार मची हथ बाह, रक्खो रवि जंपत^{४९} वाह सिराह ॥
 अरचो नृप छोनिय लैन उमेद, खिज्यो इम देत हलेलहि खेद ॥
 बढे गढ़ सम्मुह छेकि बजार, मिली तह सनु हजारन मार ॥
 चले सर चंड^{५०} चटटुत चाप, मचावत पंखन सोक अमाप ॥
 बहै^{५१} बरछी असि तोमर तोम, बनै^{५२} नर कातर लोम विलोम ॥
 उरज्झत अंत्र^{५३} कटारन तारि, गही जनु नागिन अंकुस डारि ॥
 लगै^{५४} खर खंजर पंजर लीन, मनो प्रतिलोम^{५५} धरै^{५६} जल मीन ॥
 चलै^{५७} फटि पात गदा सिर चीर, मनो तरवुज हनै^{५८} करकीर ॥
 चलै^{५९} तजि ग्यान छुरी पल चाह^{६०}, मनो पिचकारिन बारि प्रवाह ॥

१ रण रसिक । २ डाल कर । ३ गिरते है । ४ बाँटते है । ५ मुड़ कर ।

६ कमर; लंक । ७ मुदों की पंक्ति । ८ बड़ा नगर । ९ प्रशंसा का बचन कहता हुआ । १० भयंकर । ११ अंत । १२ उल्टा । १३ मांस की इच्छा से ।

भरप्पर चितहनि गिद्धनि भुण्ड, मरोरत चंचुन अंचत मुंड ॥
 किलोलत स्यार सिवा गन^१ कंक^२, नचै^३ बहु डाकिन प्रेत निसंक ॥
 घनै हननंकत घोटक घुमि, भिरै कति भिन्न गिरै छकि भुमि ॥
 कुसा^४ गल छुटत तुटत तंग, भभक्त मारुत प्रोथन भंग ॥
 परै प्रजरै जर जीन पलान, किते कबिका^५ बिनु लेत उडान ॥
 बहै पुर तदिन रत्त रु बार, धपी बड़ि बीथिन बीथिन धार ॥
 मनो यह दुग छुधातुर पाय, दये बलि मानव^६ संभरराय ॥
 समाकुल लुथिन बुथिन बट्ट, चढै पल चिकन हट्ट चुहट्ट ॥
 सद्यो घन चोरन को दुख जाय, लगै अय बुंदिय भूपति हीय ॥
 घनै दिन भुगि वियोगज भार, कियो जनु सोजित रंग सिंगार ॥
 दलेल लखी तप की तरवारि, भुज्यो छन दुग पलायन धारि ॥
 सुन्यो यह जैपुर जामिप^६ भार, कियो निज मंत्रिय आत तयार ॥

(दोहे)

समली और निसंक भख, जंबुक राह मजाह ॥

पण धण रौ किम पैख ही, नमण विण्टा नाह ॥

भावार्थ—ऐ चील्ह ! और २ अग तो तू भले ही निस्संकोच होकर खा;
 परन्तु शृगाल के मार्ग का अनुगमन मत कर (शायें मत निकाल) क्योंकि
 यदि तू प्राणनाथ को नेत्र विहीन कर देगी तो वे अपनी पत्नी का सनी होने
 का प्रण-पालन कैसे देखेंगे ।

निधड़क सूतो कोहरी, तो भी विमुहा पाव ॥

गज-गैडा धीर न धरै, वज्र पड़े बघ घव ॥

भावार्थ—केसरी गहरी नींद में सोया हुआ है, तो भी हाथी और गेंडे
 धैर्य धारण नहीं करते । और उनके पांव पीछे ही पड़ते हैं । उन्हें व्याघ्र
 गंध क्या आती है मानों उन पर वज्र पड़ रहा है ।

नायण आज न मांड पग, काल सुणी जे जंग ॥

धारां लागी जै धणी, तो दीजै घण रंग ॥

१ गीदड़ियाँ । २ पत्नी विशेष । ३ बाग । ४ लगाम । ५ मनुष्यो का बलिदान ।

६ बहनोई ।

भावार्थ—हे नाइन ! आज मेरे पैरों को (मेहँदी से) चित्रित मत कर; कल युद्ध सुना है। उसमें यदि पति धारा तीर्थ में स्नान करै (तलवार के घाट उतरें) तो फिर खूब रंग देना।

ऊभी गोख अवेखियौ, पेलां रो दल सेर ॥

पड़ियो धव सुणियो नहीं, लीधो धण नालेर ॥

भावार्थ—भरोखे में खड़ी हुई ने देखा कि शत्रु-सेना प्रवल है। बस, पति के देहावसान का संवाद नहीं सुना तो भी पत्नी ने इसे अवश्य भावी मान कर सती होने के लिये नारियल हाथ में ले लिया।

दरजण लंबी अंगियाँ, आणीजै अब मूरु ॥

तव टोटे मोनू दया, दूण सिवाई तूरु ॥

भावार्थ—दरजिन, अब मेरे लिये लंबी अंगियाँ लाया करना। मेरे सधवापन की पोशाकें अब न सीने से जो तुझे घाटा रहेगा उसकी पूर्ति के लिये मैं तुझे दुगनी सिलाई दूंगी।

सखिहारी जारी सखी, अब न हवेली आव ॥

पीव मुवा घर आविया, विधवा किसा वणाव ॥

भावार्थ—सखि मनिहारिन, अब मेरी हवेली पर मत आना। मृतक से पति घर आगये हैं; विधवाओं को शृङ्गार कैसा ?

सूरे इम रंगरेजणी, कूड़ा ठाकुर काय ॥

वसन सती धण रँगतौ, दीधी आस छुड़ाय ॥

भावार्थ—रंगरेजिन रोती है कि ऐ निकम्मे ठाकुर ! युद्ध से भाग कर तू ने यह क्या ग़ज़ब किया ! तेरी सती पत्नी के लिये सुन्दर वस्त्र रँगने की मेरी आशा पर तूने पानी ही फेर दिया।

गंधण कूकी रे गज़ब, भूँडां आगम भौण ॥

बलण कढ़ायो अतर धण, मुँहगौ लेसी कौण ॥

भावार्थ—गंधिन चिल्ला उठी—ग़ज़ब हुआ। उसका घर आगमन मेरे लिये तो बड़ा अशुभ है। उसकी पत्नी ने सती होने के लिये जो महँगा इत्र निकलवाया था, उसे अब बौन लेगा।

सोनारी भूरै कहै, रे ठाकुर कुल खोय ॥

मूझ घड़ाई खोवणा, तूझ मड़ाई होय ॥

भावार्थ—सुनारिन रोती हुई कहती है कि मेरी जीविका नष्ट करने वाले, रे कुल नाशक ठाकुर ! तेरा नाश हो ।

कंत लखीजै दोहि कुल, न थी फिरंती छाँह ॥

मुडियाँ मिलसी गीदवो, बल न धररी बाँह ॥

भावार्थ—हे कन्त, अपने दोनो कुलो को देखना, न कि अपनी फिरती हुई छाया को । ईश्वर न करे यदि आप युद्ध से मुड़ आये तो सिरहाने के लिये तकिया भले ही मिल जाय, पर पत्नी की भुजा तो फिर कभी नहीं मिलेगी ।

पहल मिले धण पूछियौ, किण कीधा किणहाथ ॥

बीजल साहे बोलियौ, इण डाकण भू आथ ॥

भावार्थ—पत्नी ने प्रथम मिलन के समय पूछा कि नाथ ! ये हाथ में कठोर चिन्ह किस ने किये ? तलवार लेकर पति बोला कि प्रिये ! इस डाकिनी ने, और पृथ्वी के लिये ।

पीहर पूछे खोलणी, पेई भूषण केर ॥

हेवियौ बाभी हँसी, नगन्द कनै नालेर ॥

भावार्थ—पीहर पहुँचने पर खोली जाने वाली भूषणों की पेटी खोलने पर भावज हँसी कि ओ हो ! ननद के पास तो (सती होने का) नालेर भी मौजूद है ।

(२) बाबा स्वरूप दास—ये जाति के चारण थे । इनका जन्म अजमेर के पास बड़ली नामक गाँव में हुआ था । इन्होंने दादू पंथ को स्वीकार कर लिया था । ये संस्कृत के अच्छे विद्वान और धर्म-सिद्धान्तों के अच्छे जानकार थे । रतलाम, सीतामऊ, सैलाना आदि के राजदरबारों में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी । अधिक क्या, सीतामऊ के तत्कालीन नरेश राजसिंह जी के पुत्र, महाराज कुमार रत्नसिंह जी की तो इनके प्रति इतनी भक्ति थी कि उन्होंने अपने ग्रंथ नटनागर-विनोद के प्रारंभ में ईश्वर की वन्दना न कर के इन्हीं की वन्दना की है । इनका देहान्त सं० १६२० में हुआ था ।

बाबा जी चरित्र दृढ़ महात्मा एवं व्यक्तित्व-संपन्न पुरुष थे और राजनीति में भी कुशल थे। काव्य रचना तो इनका अभ्यस्त विषय था। इन्होंने हृन्नयनजीन, उक्तिचंद्रिका, वृत्तिबोध आदि ६ काव्य ग्रंथों की रचना की, जिनमें पांडवयशेन्दुचंद्रिका इनका सब से अच्छा ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रंथ सं० १८९२ में लिखा गया था और स्वामी जी की जीवित अवस्था में ही सं० १९०९ में पहली बार प्रकाशित हुआ था। इसमें महाभारत की कथा का सारांश है और सोलह अध्यायों में समाप्त हुआ है। ग्रन्थारंभ में रस, अलंकार, छन्द आदि काव्यांगों पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। इसकी भाषा डिंगल है, पर ब्रजभाषा का प्रभाव भी उस पर स्पष्ट रूप से झलकता है। राजस्थान में इस ग्रन्थ का पहले बहुत प्रचार था, पर अब उतना नहीं है। स्वामी जी की कविता बहुत सरल एवं परिमार्जित है और हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव तथा विषय गत लालित्य का उसमें अच्छा संयोग हुआ है।

इनकी दो कविताएँ हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

भीम को द्यौँ हौ विष ता दिन बयौ हौ बोज,
लाखागृह भएँ ताको अँकुर लखायो है।
शूत-क्रीड़ा आदि विस्तार पाइ बड़ो भयौ,
द्रौपदी-हरन भएँ मंजरि साँ छाँयौ है॥
मत्स्य गाय घेरी जब पुष्प-फल-भार भर्यौ,
तैनै ही कुमन्त्र-जल सीँचि कै बढ़ायौ है॥
बिदुर के बचन-कुठार ते न कय्यौ वृच्छ,
वाको फल पाकौ भूप ! तेरी भेट आयौ है॥

काली को सो चक्र कै फनाली को सो फूँतकार,
लोचन कपाली को सो भय कैसो है उदोति।
आयुध सुरेस को सो मानहुँ प्रलै को भानु,
कोप को कृसानु किधौँ मीचहू की मानै सोति॥
सुयोधन दुसासन दुर्मुख दुहदगन,
दाहिबो प्रमानि दोसि दूनी हू तैं दूनी होति।

जेठ-ज्वाल-भाल है कि जिन्हा जमराज की सी

ज़हर हलाहल कै भीम की गदा की जोति ॥

(३) जीवन लाल—ये बूंदी राज्य के निवासी जाति के नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८७० में हुआ था। ये बूंदी के महाराव राजा रामसिंह जी के प्रीति पात्र थे। इन के पिता का नाम तुलाराम था। ये कई वर्षों तक बूंदी के प्रधान मंत्री रहे और अपनी कार्य कुशलता तथा ईमानदारी से बूंदी राज्य को बड़ा लाभ पहुँचाया। सं० १९१४ के गदर में इन्होंने बूंदी राज्य का बहुत ही चतुराई से प्रबंध किया जिससे खुश होकर उक्त महाराव राजा ने इन्हें ताज़ीम, कटार, हाथी आदि पुरस्कार में दिये थे। इनका देहान्त सं० १९२६ में ५६ वर्ष की अवस्था में हुआ।

ये संस्कृत तथा फारसी के प्रौढ़ विद्वान थे। सोलह वर्ष की आयु में इन्होंने बारह हजार श्लोकों का एक बहुत बड़ा ग्रंथ संस्कृत में बनाया था जिसका नाम कृष्ण-खंड है। इसके बाद इन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत में सात ग्रंथ और लिखे, जिनके नाम ये हैं—ऊपाहरण, दुर्गा चरित्र, भागवत भाषा, रामायण, गंगा शतक, अवतार माला और संहिता भाष्य।

जीवनलाल की रचना में भक्ति तथा शृंगार की प्रधानता है। इनकी कविता सरल, रोचक और मधुर है। इनका एक कवित्त देखिये :—

निरखि निरखि नैन सुनि सुनि गान बैन,

हरखि हरखि मैन सैन रचिबौ करै ।

फिरि फिरि फेरि लै लै इत उत आतु जातु,

उठि उठि बैठि बैठि अति पचिबौ करै ॥

सुनहु सुजान प्यारी आँखें अनियारी वारी,

रोकै हू कहाँ लगियो ता पै बचिबौ करै ।

उमंगि अनंग राग-रङ्ग मधु भृङ्ग भयो,

तेरे संग-संग मन मेरो नचिबौ करै ॥

(४) प्रताप कुँवरि बाई—इनका जन्म वि० सं० १८७३ के लगभग मारवाड़ राज्य के जाखण गाँव में यदुवंशियों की भाटी शाखा के एक प्रसिद्ध परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम गोयन्ददास था। बाई जी

जब सोलह वर्ष की थीं तब इनका विवाह मारवाड़ के महाराजा मानसिंह जी के साथ हुआ। इनके कोई संतान नहीं थी। वैसे ईश्वर भक्ति की ओर बाई जी का झुकाव बाल्यवस्था ही से था, पर जब से इनके पतिदेव का स्वर्गवास (सं० १६००) हुआ तब से सांसारिक कार्यों से इनका मन उचट गया और अपना अधिक समय भगवद् भजन एवं पूजा पाठ में व्यतीत करने लगीं। इनकी रहन सहन सादी और प्रकृति सरल थी। राज्य की ओर से इन्हें कई गाँव मिले हुए थे जिनकी आय का अधिक भाग ये दान पुण्य तथा साधु-सेवा में खर्च किया करती थीं। संत-महात्माओं के अतिरिक्त कवियों, विद्वानों तथा चारण-भाटों को भी बाई जी ने बहुत सा धन दान दिया था। इनका देहान्त सं० १६४६ में ७६ वर्ष की आयु में हुआ।

प्रताप कुँवर बाई मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र की उपासक थीं। महाकवि तुलसीदास की तरह इन्होंने भी दोहे-चौपाइयों में राम भक्ति की महिमा कही है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है जिसमें राजस्थान की बोली चाल की भाषा के शब्द का प्रयोग भी प्रचुरता से हुआ है, जैसे—पुत्र, डडोट, हौद, जाँबू, आंवा इत्यादि। कहीं कहीं अर्बी-फारसी के शब्द भी मिलते हैं। इनकी कविता प्रसादपूर्ण, सजावोत्पादक तथा राम भक्ति से परिपूर्ण है और कला उसमें अपने प्रकृत सौन्दर्य के साथ विहार कर रही हैं।

इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं :—

(१) ज्ञान सागर (२) ज्ञान प्रकाश (३) प्रताप-पच्चीसी (४) प्रेम सागर (५) रामचन्द्र नाम महिमा (६) राम गुण सागर (७) रघुवर स्नेह लीला (८) राम प्रेम सुख सागर (९) राम सुजस पच्चीसी (१०) रघुनाथ जी के कवित्त (११) भजन पद हर जस (१२) प्रताप विनय (१३) श्री रामचन्द्र विनय (१४) हरि जस-गायन आदि।

इनकी कविता के दो-एक उदाहरण देखिये :—

आस तो काहू की नाहिं मिटी जग में भये रावण से बड़ जोधा ।
सायँत सूर सुयोधन से बल से नल से रत बादि विरोधा ॥

के ते भये नहिं जाय बखानत जूझ मुये सबही करि क्रोधा ।
आस मिटे परताप कहै हरि-नाम जपेरु बिचारत बोधा ॥

अवधपुर घुमड़ि घटा रहि छाया ॥टेक ॥

चलत सुमंद पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाय ॥१॥

दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराय ॥२॥

भूमि निकुंज सघन सरुवर में लता रही लिपटाय ॥३॥

सरजू उमगत लेत हिलोरै' निरखत सिय रघुराय ॥४॥

कहत प्रतापकुंवरि हरि।ऊपर बार बार बलि जाय ॥५॥

(५) गणेशपुरी—ये पदमजी चारण के पुत्र थे और वि० स० १८८३ में मारवाड़ राज्य के चारवास नामक गाँव में पैदा हुए थे । इनका जन्म नाम गुप्त जी था । बचपन में ये बड़े उदंड और उपद्रवी थे । पड़ोस के बालकों को मारने पीटने की एक आध शिकायत इनके पिता के पास प्रति दिन पहुँच जाती थी । परन्तु बड़े होने पर इनकी उदंडता जाती रही और ये बड़े गंभीर प्रकृति एवं सुशील हो गये । इनके संबंध में प्रसिद्ध है कि वंशभास्कर के रचयिता सूर्यमल का नाम सुनकर उन से मिलने के लिये ये एक बार बूँदी गये । जिस समय ये कविराजा जी के मकान पर पहुँचे उस समय वहाँ उनका एक नौकर द्वार पर बैठा हुआ था । उसने जाकर सूर्यमल जी को सूचना दी कि एक चारण आपसे मिलना चाहता है और वह आपकी आज्ञा के लिये द्वार पर खड़ा है । सूर्यमल जी अपढ़ व्यक्तियों से प्रायः कम मिलते थे । उन्होंने नौकर से कहा कि बाहर जाकर उससे पूछो कि वह पढ़ा हुआ है अथवा नहीं । इस पर नौकर लपका हुआ बाहर आया और वही प्रश्न गुप्त जी से किया । वे सुनकर मुन्न रह गये । कुछ क्षण तक तो प्रस्तर मूर्ति की तरह खड़े रहे फिर गर्दन हिला कर बोले—“नहीं” । इस “नहीं” की ध्वनि अंदर बैठे हुए कविराजा जी के कर्णगोचर हुई और वहीं से चिह्ना कर उन्होंने कहा—“सूर्यमल एक अपढ़ चारण का मुँह देखना नहीं चाहता ।” तुम जैसे आये हो वैसे ही यहाँ से चले जाओ । सूर्यमल जी के शब्द गुप्त जी के हृदय में धाव कर गये । उन्हें लजा भी आई, पर अधिक कुछ न कह कर वहाँ से लौट पड़े । यह घटना उस समय की है जब इनकी

अवस्था २७ वर्ष की थी। यहीं से इनके जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। ये साधु हो गये और अपना नाम बदल कर गणेशपुरी रख लिया। वहाँ से ये सीधे काशी पहुँचे और लगभग दस वर्ष तक वहाँ रह कर हिन्दी संस्कृत आदि का ज्ञान प्राप्त किया।

काशी से लौटने के पश्चात् गणेशपुरी जी कुछ वर्ष तक इधर उधर राजपूताने में घूमते रहे, और अंत में मेवाड़ के गुण ग्राही महाराणा सज्जन सिंह जी के आग्रह से स्थायी रूप से मेवाड़ को अपना निवास स्थान बनाया। महाराणा ने इनका बड़ा सम्मान किया और इनके लिये भोजन-वस्त्र आदि का प्रबंध कर कई वर्षों तक अपने पास रक्खा। स्वामी जी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी और काव्य कुशल व्यक्ति थे। इनके साहचर्य में महाराणा सज्जनसिंह जी भी अच्छी कविता करना सीख गये थे। गणेशपुरी जी का संस्कृत, ब्रजभाषा एवं डिंगल का उच्चारण बहुत शुद्ध तथा स्पष्ट होता था और कविता पढ़ने का ढंग भी ऐसा आकर्षक तथा प्रभावशाली होता कि रसोन्मत्त होकर श्रोता गण गज-शुंड की तरह भूमने लगते थे। साधारण से साधारण कोटि की कविता भी जब इनकी ज्ञान से निकलती वह उच्च श्रेणी की प्रतीत होती थी।

ये डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे। इनके रचे हुए फुटकर कवित्त-सवैया और वीर 'विनोद नामक' एक काव्य ग्रंथ राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। वीर विनोद महाभारत के कर्ण-पर्व का अनुवाद है। अनुवाद में मौलिकता, भावों की स्पष्टता तथा शब्द योजना के सौष्ठव का अच्छा आनन्द मिलता है। पर क्लिष्ट शब्दों की बहुलता के कारण कहीं कहीं प्रसाद गुण को बड़ा धक्का लगा है। स्वामी जी की फुटकर कविताएँ बड़ी जोरदार, चमत्कार पूर्ण एवं मार्मिक हुई हैं। पर प्रसाद गुण का अभाव इनमें भी खटकता है और शायद यही कारण है कि काव्य-कला-कलित होते हुए भी इनका इतना प्रचार नहीं है जितना कि होना चाहिये। सच तो यह है कि गणेशपुरी जी की कविताएँ उनके मस्तिष्क की उपज है, हृदय की अनुभूति नहीं। अतएव उनके भाव तक पहुँचने के पूर्व पाठकों को भी पर्याप्त मानसिक श्रम करना पड़ता है।

इनकी कविता के दो-एक उदाहरण देखिये :—

चाली नृप भीम पै कराली नृप-भीम-चमू,
 नक्रमुखी तोपन के चक्र-चरराटे वहाँ ।
 आपनौ रु औरन को सोर न सुनात, दौर,
 घोरन की पोरन के घोर घरराटे हँ ॥
 मीर^१ हमगीरन^२ के तीर-तरराटे बर,
 बीरन-बपुच्छद^३ के बाज बरराटे हँ ।
 हूर - हरराटे धर-यूज - धरराटे सेस-
 सीस-सरराटे कोल^४ - कंध-करराटे हँ ॥
 हरि-सुत-श्रौन हरि-श्रौन हरि दैदे कर,^५
 घरी-घरी घोर धनु-घंट-घननाटे तें ।
 भेरि-रव-भूरि भट-भोर-भार भूमि भरि,
 भूधर भरै^६गे भिदिपाल^७ - मननाटे तें ॥
 खप्पर-खनक हँ न खेटक के खप्पर हँ,^८
 खेटकी^९ खिसकि जैहँ खग-खननाटे तें ।
 चूकि जैहँ जान-धर^{१०} जान को चलान, बान,
 बान-धर^{११} मेरे पान-बान^{१२} -सननाटे तें ॥
 बाढ़ी बीर हाक हर डाक भुव चाक चढी,
 ताक ताक रही हूर छाक चहुँ कोद में ।
 बौलि कै कुबोल हय तोल बहलोल खँ पै,
 बागो आन कत्ता राण पत्ता को बिनोद में ॥
 टोप कटि टोपी लाल टोपा कटि पीत पट,
 सीस कटि अंग मिली उपमा सुमोद में ।
 राहू गोद मङ्गल की मङ्गल गुरु की गोद,
 गुरु गोद चन्द की रु चन्द रवि गोद में ॥

१-शूरवीर । २-साधियों । ३-कवच । ४-बराह । ५-अर्जुन और घेड़ो के कानों को भगवान् हाथों से ढाँकेंगे । ६-गोफन । ७-खप्पर की गनखनाइट नदी होगी क्योंकि ढालों के खप्पर होंगे । ८-ढालों वाले । ९-सारथी । १०-अर्जुन । ११-हाथ का बाण ।

(६) कविराव बख्तावर जी—ये दसोदी राव जाति में टांक शाखा के राव थे । इन का जन्म सं० १८७० में मेवाड़ राज्य के बसी नामक ठिकाने में हुआ था । इनके पिता का नाम सुखराम था । जब ये बहुत छोटे थे तब सुखराम जी की मृत्यु हो गई जिससे बसी के ठाकुर अर्जुनसिंह जी ने इनकी देख-रेख की और पढ़ा-लिखा कर होशियार किया । संवत् १९०६ में किसी घरेलू झगड़े के कारण ये उदयपुर आये । इस अवसर पर इनकी महाराणा स्वरूप सिंह जी से भेंट हुई । इनकी असाधारण काव्य-प्रतिभा देख कर उक्त महाराणा ने इन्हें अपने पास रख लिया और कुछ कालोपरान्त मिहारी एवं डांगरी नामक दो गाँव, बैठ ६, पाँव में सोना और रहने के लिये एक मकान देकर इनका मान बढ़ाया । महाराणा स्वरूपसिंह जी के बाद के तीन महाराणाओं—महाराणा शम्भुसिंह, महाराणा सजनसिंह और महाराणा फतहसिंह—के शासन काल में भी इनकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी रही । इनका देहान्त सं० १९५१ में उदयपुर में हुआ । राजकीय दग्ध स्थान, महासतियों में महाराणा अमरसिंह (प्रथम) की छतरी के सामने इनकी भी छतरी बनी हुई है ।

बख्तावर जी ने कुल मिला कर ग्यारह ग्रन्थ बनाये जिनके नाम ये हैं—
 केहर प्रकाश, रसोत्पत्ति, स्वरूप यश प्रकाश, शंभु यश प्रकाश, सजन यश प्रकाश, फतह यश प्रकाश, सजन चित्र चंद्रिका, संचारणव, अन्योक्ति प्रकाश, रागनियों की पुस्तक और सामंत-यश-प्रकाश । इनमें केहर प्रकाश इनका प्रधान ग्रंथ है । इसमें कमल प्रसन्न नाम की एक वेश्या के प्रेम का वर्णन है । यह सं० १९३६ में लिखा गया था । इसमें दस प्रकरण हैं और कुल मिला कर १४८६ छन्दों में समाप्त हुआ है । इसकी भाषा-डिङ्गल है । कमल प्रसन्न एवं उसके प्रेमी कुँवर केसरी सिंह के चरित्र वर्णन में स्थान स्थान पर कवि ने रमणीय उद्भावनाओं तथा अनेक कोमल सूक्तियों का समावेश किया है । अतः केहर प्रकाश की प्रशंसा में कही हुई किसी सहृदय पाठक की यह उक्ति सचमुच ही ठीक प्रतीत होती है:—

श्रवणां नाहि सुणोइ, निज नैणा दीठी नहीं ।

बाता मुकुट बणीइ, राव बखत रचना सरस ॥

इनके दो फुटकर कवित्त देखिये:—

जुरेई जँजीरन सें द्वार को उदारता दे,
 हलें निज दल के सिंगार वहीजियतु है ।
 विकट जु बाटन पै महानद घाटन पै,
 भुरज कपाटन पै हूल दीजियतु है ॥
 'बखत' भनत भूमिपालन की रीति ये ही,
 रौद्रता प्रचण्ड सों सदाही रीक्षियतु है ।
 येक मतवारो होय अंकुश न मानें तो का,
 द्विर्द दरबार दूजे दूर कीजियतु है ॥

दारिद्र पै विधिना बनाई हुती चिन्तामनि,
 जाकों हरि कंठ कीनी भूषण में भायके ।
 'बखत' बनाये तब पारिजात कामधेनु,
 ताकों सुरलोक राखे सुरन रिम्भायके ॥
 तबजु हमाऊ पच्छी दायक बनाये जेऊ,
 छिपे कहुँ ठौर पंख छावत न आयके ।
 तब रान सज्जन बनायो तासों भूतल तें,
 भाजि गयो दारिद्र पताल-पथ पायके ॥

(७) राव गुलाब जी—ये बूंदी राज्य के दरबारी कवि थे । इनका जन्म सं० १८८७ में अलवर में हुआ था । ये जाति के भाट थे । इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी जिससे बहुत छोटी अवस्था में इन्होंने काव्य प्रकाश, सारस्वत चंद्रिका आदि ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन कर लिया था और बहुत अच्छी कविता करने लग गये थे । जब ये ४१ वर्ष के थे तब अलवर से बूंदी चले आये और आजीवन वहीं रहे । बूंदी के महाराव राजा रामसिंह जी ने इन्हें दो गाँव जीविकार्थ दिये थे और दुशाला, हाथी, तार्जाम इत्यादि प्रदान कर इन्हें गौरवान्वित किया था । ये बूंदी स्टेट कौंसिल तथा वाल्टर राजपूत हितकारिणी सभा के सदस्य थे और महकमा रजिस्टरी के भी हाकिम थे । इनका देहान्त सं० १९१८ में हुआ था ।

राव गुलाब जी बड़े मिलनसार, व्यवहार-कुशल तथा सहृदय व्यक्ति थे और कविता करने तथा समझने में निपुण थे। इनके संसर्ग से कई लोग अच्छी कविता करना सीख गये थे, जिनमें बिड़रसिंह और चन्द्रकला बाई के नाम प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविताएँ प्रायः छपा करती थीं, जिससे राजस्थान के सिवा बाहर के लोग भी इन्हें जानते थे। रसिक सभा, कानपुर ने गुलाब जी को 'साहित्य भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था।

गणेशपुरी जी की तरह राव गुलाब जी का भी पिंगल और डिंगल दोनों भाषाओं पर समतुल्य अधिकार था, परन्तु पिंगल में वे जैसी सरसता ला सकते हैं वैसी डिंगल में नहीं। इन की कविताओं का राजस्थान में बहुत आदर है, और काव्य प्रेमी उन्हें बड़े चाव से पढ़ते, सुनते और सराहते हैं।

इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं:—(१) रुद्राष्टक (२) रामाष्टक (३) गङ्गाष्टक (४) बालाष्टक (५) पावस पच्चीसी (६) प्रन पच्चीसी (७) रस पच्चीसी (८) समस्या पच्चीसी (९) गुलाब कोप (१०) नाम चन्द्रिका (११) नाम सिंधु कोप (१२) व्यङ्ग्यार्थ चन्द्रिका (१३) बृहद् व्यगाथ चंद्रिका (१४) भूषण चंद्रिका (१५) ललित कौमुदी (१६) नीति सिंधु (१७) नीति मंजरा (१८) नीति चंद्र (१९) काव्य नियम (२०) वनिता भूषण (२१) बृहद् वनिता भूषण (२२) चिंता तन्त्र (२३) मूर्ख शतक (२४) ध्यान रूप सवतिका बद्ध कृष्ण चरित्र (२५) आदित्य हृदय (२६) कृष्ण लीला (२७) राम लीला (२८) सुनोचना लीला (२९) विभोषण लीला (३०) दुर्गा स्तुति (३१) लक्षण कौमुदी (३२) कृष्ण चरित्र (गौलोक खड, वृन्दावन खण्ड, मथुरा खण्ड, द्वारका खण्ड, विद्यान खण्ड आदि) (३३) कृष्ण चरित्र सूची।

इनके दो कवित्त देखिये:—

मृग से मरोरदार खंजन से दौर दार,
चंचल चकोरन से चित्त चोर पाके हैं।
मीनन मखीनकार जलजन दीनकार,
भंवरन खीनकार अमित प्रभा के हैं ॥

सुकवि गुलाब सेत चिकन विशाल लाल,
 श्याम के सनेह सने अति मद छाके हैं ।
 बरुनी विशेष धारें तिरछी चितौनि वारे,
 मैन बानहू तै पैनै नैन राधिका के हैं ॥

छेहैं बक मंडली उमड़ि नभ मंडल में,
 जुगनू चमक ब्रजनारिन जरै हैं री ।
 दादुर मयूर कीने कींगर मचै हैं सोर,
 दौरि दौरि दामिनी दिसान दुख दै हैं री ॥
 सुकवि गुलाब हूँ हैं किरचै करेजन की,
 चौकि चौकि चौपन सौ चातक चिचै हैं री ।
 हंसन लै हंस उड़ि जै हैं ऋतु पावस में,
 पे हैं घनश्याम घनश्याम जो न पे हैं री ॥

(८) ऊमरदान—ये मारवाड़ राज्य के परगना फलौधी के ढाढरवाड़ा ग्राम में वि० सं० १९०८ में उत्पन्न हुए थे और जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम बख्शीराम और दादा का मेघराज था। बाल्यावस्था में पिता माता की मृत्यु हो जाने से इनकी देख रेख करने वाला कोई घर में न रहा जिससे ये अत्यन्त उद्दंड हो गये और अपने ज्येष्ठ भ्राता नवलदान के कहने सुनने की परवा न कर राम स्नेही साधुओं में जा मिले। इन्हीं लोगों ने इनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया। अठारह वर्ष की आयु तक ये साधुओं के साथ रहे। पर जब कुछ ज्ञान-सम्पन्न हुए और अग्नी विगत भूल का स्मरण आया तब रामस्नेहियों का साथ छोड़कर पुनः गृहस्थ बन गये।

ऊमरदान का क्रुद मझोला, शरीर सुदृढ़ और रंग गेहुँआ था। ये अत्यन्त सरल प्रकृति के जीव थे। मोटे वस्त्र एवं छुटनों तक धोती पहन कर जब हाथ में डण्डा लिये घर से बाहर निकलते तब पूरे कृपक प्रतीत होते थे। ये बड़े निःशङ्क एवं हास्य-प्रिय व्यक्ति थे। खूब प्रसन्न रहते थे। सबसे हँसकर मिलते-जुलते और ऐसी चटपटी बातें करते थे कि सुनने वालों के दिल खुश हो जाते थे। इनके व्यवहार में बड़ी मधुरता और बातों में अजीब चुलबुलापन था। एक बार भी यदि कोई इनसे मिल लेता तो उम्र

भर नहीं भूलता था। जो ठीक समझते उसे वे निर्भय होकर तत्काल कह डालते थे। संसार उन्हें क्या समझता है अथवा समझेगा, इसकी उन्हें लेश मात्र भी चिन्ता न थी। अपने इस स्वभाव का परिचय उन्होंने स्वयं ही इस प्रकार दिया है :—

जोगी कहो भव भोगी कहो, रजयोगी कहौ कौ कैसेइ हैं ।
न्यायी कहो अन्यायी कहो, कुकसाई कहौ जग जैसेइ हैं ॥
मीत कहो वो अमीत कहो, ज्युँ पलीत कहौ तन तैसेइ हैं ।
उत कहो अवधूत कहो, लो कपूत कहो हम हैं सोइ हैं ॥

इनका स्वर्गवास संवत् १६६० में हुआ था।

कवि ऊमरदान की रचनाओं का एक संग्रह 'ऊमर काव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमें ईश्वरोपासना, भजन की महिमा, दयानन्द दर्शन, जसवन्त जस जलद, धर्म कसौटी, प्रताप प्रशंसा, असंता की आरसी, अमल का ओगण, दारु का दोष आदि अनेक फुटकर प्रसंग हैं। भाषा की स्वच्छता की अपेक्षा काव्यत्व की सरसता ऊमर-काव्य में प्रधान रूप से पायी जाती है। ये सुधारवादी कवि थे। इनकी कविता से रसज्ञता तो झलकती है, पर उद्दंडता की मात्रा अधिक होने से कहीं कहीं भद्दापन आगया है। धर्मध्वज साधु-महात्माओं का छिद्रोद्घाटन जिस ढंग से इन्होंने किया वह भी सभ्यरुचि के प्रतिकूल होने से कुछ ही लोगों को प्रभावित कर सकता है, सर्व साधारण को नहीं। हास्यरस पूर्ण इनकी कोई २ उक्तियाँ बड़ी चुभती हुई हैं। भाषा ऊमरदान की राजस्थानी है, जिसमें साहित्यिकता कम और ग्रामीणता विशेष है। शिक्षित समुदाय की अपेक्षा राजस्थान के अपठित लोगों में इनकी कविताओं का प्रचार अधिक है।

इनकी कविता का नमूना देखिये :—

गायन भीन सुरावलि में गहि, ज्युँ बधिरादर बीन बजाई ।
फूल दियो नकटे कर में फिर, रीस करी रख राख रुखाई ॥
पोल में उत्तम काव्य पढ़्यौ, पुनि गोल कपूत की कीरति गाई ।
अंध के अग्रिम ज्युँहि गई वह, चूनरि बांधन की चतुराई ॥

रोग को भवन ज्यूं कुजोग को समन जानो,
 दया को दमन ओ गमन गरुवाई को ।
 हिम्मत को हासकारी विद्या को विनाश कारी,
 तितित्ता को तासकारी सीरू भरवाई को ॥
 ऊमर विचार सिख पाप रिख श्रापन में,
 विषै विष व्यापन में पौन परवाई को ।
 भगतन को भाई ओ कसाई निज कामनी को,
 शत्रु सुखदाई सुरा हेतु हरवाई को ॥

(६) बिड़दसिंह—ये अलवर इलाके के गाँव किसनपुरे के जागीरदार थे, और जाति के चौहान थे । इनका जन्म संवत् १८९६ में आषाढ़ सुदी २ को हुआ था । इनके पिता का नाम कृपाराम, दादा का नाहरसिंह और पितामह का फतहसिंह था । कविता करना इन्होंने बूढ़ी के प्रसिद्ध कवि राव गुलाबसिंह से सीखा था । ये बहुत अच्छे कवि एवं बड़े भारी गुण ग्राहक थे । इनके यहाँ कवियों का मण्डली बराबर जमी रहती थी । ग्रन्थ तो इन्होंने कोई नहीं लिखा; पर फुटकर कवित्त-सवैये सैकड़ों की संख्यामें रचे हैं । इनकी कविता शृङ्गार रस प्रधान है और उसमें कला पक्ष खूब निभाया है ।

इनकी कविता का नमूना देखिये :—

सोहत है किसलैक फनोवर बेलि बिनान कौं फैंट बनायो ।
 कुन्द कली करि कौड़िन माल विभूति ज्यों अंग पराग लगायो ॥
 माधव केलि प्रसून लै खप्पर कोकिल कृक सदा कै सुनायो ।
 प्रान की भीख वियोगिनि पै ऋतुराज फकीर ह्वै मांगन आयो ॥

काहू कर्म मुख्य राख्यो काहू नै उपायना कौं
 विविध विधान करि जतायो सुडौल है ।
 काहू पंच भूत मन बुधि चित अहंकार
 और हू प्रकृतिन सौं लियो करि तोल है ॥
 सत्य सरबज्ज सर्वव्यापक अखंड एक
 अलख अतेख ऐमें बद्यो काहू बोल है ।

है न आदि अंत जाकौ ताकौ कहि सकत कौन
दृष्टि करि देखौ तौ दिखात गोल मोल है ॥

(१०) कविराज मुरारिदास जी (बूँदी)—ये सूरजमल जी के दत्तक पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८६५ में और देहान्त सं० १९६४ में हुआ था। अपने पिता की तरह ये भी पट्टभाषा में प्रवीण और काव्य कुशल कवि थे। वंश भास्कर लिखते समय जब सूरजमल जी ने महाराव राजा रामसिंह जी के गुण दोषों का भी विवेचना करना प्रारम्भ किया तब राव राजा उनसे सहमत न हुए और विवश होकर उन्हें अपने ग्रंथ को अधूरा छोड़ना पड़ा। इसे सूरजमल जी की मृत्यु के बाद मुरारिदास जी ने पूरा किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने डिगन कोष और वंश समुच्चय नामक दो और ग्रंथ बनाये, जिनका राजस्थान में बड़ा आदर है। मुरारिदास प्राकृत मिश्रित ब्रजभाषा लिखते थे, जिसमें थोड़ा बहुत पुट राजस्थानी का भी रहता था। कविता इनकी हृदय वेधक एवं स्वतंत्र होती थी।

एक उदाहरण देखिये :—

सेस अमरेस औ गनेस पार पावै नाहि,
जाकै पद देखि देखि आनंद लियो करें ।
अन्तर है मूल फेरि व्यक्त और अव्यक्त भेद,
ताही के सहाय सब उपमा दियो करें ॥
अव्यय है संज्ञा तीनों काल मैं अमोघ क्रिया,
वाके रस लीन होय पीथूप पियो करें ।
रचना रचावै केहि भौति तैं मुरारिदास,
ऐसे शब्द ईश्वर कौ नमन कियो करें ॥

(११) चंद्रकला बाई—ये बूँदी के प्रसिद्ध कवि राव गुलाब जी के घर की दासी थीं। इनका जन्म सं० १९२३ में और देहान्त सं० १९६० और १९६५ के बीच में हुआ था। उक्त कवि राव जी के संसर्ग से इन्होंने अच्छी कविता करना सीख लिया था। पढ़ी-लिखी तो चन्द्रकलाबाई विशेष न थीं, पर कविता के मर्म को समझने की इनमें विलक्षण शक्ति थी और स्मरण शक्ति भी बहुत तीव्र थी जिससे इन्होंने सैकड़ों कवित्त-सवैयाे मुख्याग्र कर लिए

थे। अपने गुरु गुलाब सिंह जी की तो प्रायः सभी अच्छी २ कविताएँ इन्हें कंठस्थ थीं। समस्या पूर्ति का इन्हें विशेष शौक था और इस कला में थीं भी ये बहुत निपुण। एक समस्या की पूर्ति कई प्रकार से कई रसों में कर सकती थी और काव्य-चमत्कार सभी में एक सा होता था। हिन्दी के रसिक मित्र, काव्य सुधाकर आदि पत्रों में इनकी कविताएँ प्रकाशित हुआ करती थीं। इनकी रचनाओं से मुग्ध होकर सीतापुर जिले के बिसवाँ नामक ग्राम के कवि मंडल ने इन्हें 'वसुन्धरा-रत्न' की उपाधि से विभूषित किया था।

इन्होंने करुणा-शतक, पदवी प्रकाश, राम चरित्र, महोत्सव प्रकाश आदि ग्रंथ लिखे, पर इनकी ख्याति शृंगार रसात्मक फुटकर कवित्त-सवैयाँ के कारण ही से विशेष है। इनकी भाषा सरल, सरस तथा व्यवस्थित है, और इन्होंने अपने भावों को सरल से सरल ढंग से अभिव्यक्त करने का उद्योग किया है। हिन्दी की कवयित्रियों में कला की दृष्टि से इतनी अधिक श्रेष्ठता किसी ने प्रदर्शित नहीं की जितनी चन्द्र कला बाई ने। ये करुण रस के लिखने में भी सिद्ध हस्त थीं। विपाद की एक हृदय वेधक रेखा इनके करुणा-शतक में चित्रित दीख पड़ती है।

आगे हम इनकी दो कविताएँ उद्धृत करते हैं:—

नख ते'ं सिख लौं सब साजि सिंगार, छुटा छुबि की कहि जात नहीं ।
सँग लाय अलो न लली ललचाय चलो, पिय पास महा उमही ॥
कहि चन्द्रकला मग आवत ही, लखि दौरि तिया पिय बांह गही ।
नहि बोल सकी सरमाय लली हरपाय हिये मुसकाय चली ॥

जो अति दुर्लभ देवन कैं तन मानुष सो निज पुन्य न पावै ।
इद्रिन् के सुख में लय होय जु ईश्वर और न नैकु लखावै ॥
चन्द्रकला भिक हैं तिहि जीवन नारि सुतादिक में मन लावै ।
है मति-हीन प्रवीन बन्यौ वह कांच के लालच लाल गमावै ॥

(१२) कविराजा मुरारिदान (जोधपुर)—ये आशिया शाखा के चारण जोधपुर नरेश महाराजा जसवंत सिंह जी (दूसरे) के आश्रित थे। इनके दादा का नाम बाँकीदास और पिता का भारतीदान था। मुरारिदान जी जोधपुर राज्य सभा (स्टेट कौंसिल) के मेम्बर थे और साहित्य शास्त्र के

पूर्ण मर्मज्ञ थे। महाराजा जसवंत सिंह जी का नाम जगत विख्यात करने के अभिप्राय से पंद्रह वर्ष तक कठोर परिश्रम कर इन्होंने ‘जसवन्त जसो भूषण’ नामक एक रीति ग्रंथ बनाया, जो अलंकारों पर एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। सं० १९५० में जब यह ग्रन्थ बन कर तैयार हो गया तब मेवाड़, कोटा, बूंदी आदि राज्यों के राजदरबारों से बड़े २ कवि और विद्वान जोधपुर बुलाए गये थे और इन सब की उपस्थिति में महाराजा जसवन्त सिंह जी ने इसे सुना था। इसकी कविता पर सुग्ध होकर उक्त महाराजा ने मुरारि-दान को कविराजा की उपाधि और कई बहुमूल्य वस्तुएँ पुरस्कार में दीं, जिनका वर्णन उन्होंने ग्रंथ के अंत में किया है:—

इक गज द्वै हयराज, कनक भूपन सौं भूषित ।
मुक्तमाल सिरपेच, रत्न जटित जु कर अति हित ॥
कुंडल कंकन वसन, खड्ग जमदङ्ग जुत भूपन ।
पंच सहस्र मुद्रिका, अपर परिजन हित दिय गन ॥
प्रति वर्ष सहस्र पट उपज के, लक्ष पूर्ति कों ग्राम दिय ।
निज ग्रंथ रीझ जसवन्त नृप, यह विध जग धिर नाम किय ॥

‘जसवन्त जसो भूषण’ ८५२ पृष्ठों का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इसका सारांश रूप ‘जसवन्त भूषण’ है, जो ३५१ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। ये दोनों ग्रन्थ मारवाड़ स्टेट प्रेस जोधपुर की ओर से छप चुके हैं। हिन्दी साहित्य के रीति ग्रन्थों में ‘जसवन्त जसो भूषण’ सबसे बड़ा है। इसकी सर्वोपरि विशेषता यह है कि कवि ने अलंकारों के नामों को ही उनका लक्षण माना है और गद्यमय परिभाषाएँ देकर उन्हें स्पष्टतः समझाने की पूरी २ चेष्टा की है। इसमें सन्देह नहीं कि इसके लिखने में कवि ने संस्कृत और हिन्दी के बहुत से प्राचीन तथा प्रसिद्ध ग्रंथों से सहायता ली है। पर नाम में ही लक्षण की कल्पना करने से उन्हें बहुत से स्थानों पर खींचातानी का आश्रय लेना पड़ा है और ऐसे उद्योग में सर्वत्र सफलता भी नहीं हुई है। इन्होंने अतुल्ययोगिता, अनवसर तथा अपूर्व-रूप ये तीन नये अलंकार बनाये हैं और प्रमाण को अलंकार ही नहीं माना है। ‘जसवंत जसो भूषण’ की रचना-शैली, काव्य-माधुर्य एवं विषय-विवेचना हृदय ग्राही है तथा

इससे मुरारिदान के साहित्य विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है ।
इनका देहान्त सं० १६७० में हुआ था ।

इनकी कविता देखिये :—

गोकुल जनम लीन्हौ, जल जमुना को पीन्हौ,
सुबल सुमित्र कीन्हौ, ऐसो जस-जाप है ।

भनत 'मुरार' जाके जननी जसोदा जैसी,
उद्धव ! निहार नंद तैसो तिह बाप है ॥

काम-वाम तैं अनूप तज वृज-चन्द-मुखी,
रीझे वह कृवरी कुरूप सों अमाप है ।

पंचतीर-भय को न बीर नेह-नय को न,
बय को न, पूतना के पय को प्रताप है ॥

सुर-धुनि-धार धनसार पारवती-पति,
या बिधि अपार उपमा को थौंभियतु है ।

भनत 'मुरार' ते बिचार सों विहीन कवि,
आपने गँवारपन सों न छौंभियतु है ॥

भूप - अवतंस, जसवन्त ! जस रावरो तो,
अमल अतंत तीनों लोक लौंभियतु है ।

सरद पून्हों निसि जाए हंस को है बंधु,
छीर-सिंधु-मुक्ता समान सौंभियतु है ॥

(१३) महाराज चतुरसिंह जी—मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह (दूसरे) के चार पुत्र थे—जगतसिंह, नाथसिंह, बाघसिंह और अर्जुनसिंह ज्येष्ठ पुत्र होने से जगतसिंह संग्रामसिंह के बाद मेवाड़ की गद्दी पर बैठे और इनके शेष भाइयों को क्रमशः बागोर, करजाली तथा शिवरती की जागिरें और महाराज की उपाधि मिली । महाराज चतुरसिंह जी करजाली के स्वामी बाघसिंह के वंशज थे और उनसे छठवीं पीढ़ी में हुए थे । इनका जन्म सं० १६३३ माघ कृष्ण १४ को हुआ था । इनके पिता का नाम सुरतसिंह और दादा का अनूरसिंह था । अपने पिता के चार पुत्रों में चतुरसिंह जी सबसे छोटे थे ।

महाराज साहब के पिता बड़े धर्मात्मा एवं भगवद्भक्त पुरुष थे और दिन रात पूजा-पाठ तथा भजन-स्मरण में लगे रहते थे। इसलिये चतुरसिंह जी के हृदय में भी भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य के अंकुर जन्म ही से मौजूद थे। अठारह वर्ष की आयु में इनका विवाह हुआ जिससे इनके दो कन्याएँ हुईं। परन्तु १० वर्ष बाद इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इससे सांसारिक विषय-वासनाओं से इनका मन उचट गया और दूसरा विवाह करने का विचार छोड़ अपना अधिक समय योगाभ्यास, ईश-भजन, शास्त्राध्ययन आदि में व्यतीत करने लगे। घर में रहने से स्वाध्याय में बाधा पड़ती थी इसलिये इन्होंने घर भी छोड़ दिया और उदयपुर शहर के बाहर सुकेर नामक गाँव के पास एक भोंपड़ी बना कर रहने लगे।

इस भोंपड़ी में महाराज साहब कई वर्षों तक रहे। प्रकृति के दीर्घ कालीन मनन ने इनके व्यक्तित्व को भी प्रकृतिमय बना रखा था। ये बड़े सरल हृदय, साधु प्रकृति एवं उदार थे। ऊँच-नीच का विचार छोड़ कर सभी श्रेणियों के लोगों से बड़ी विनम्रता और प्रेमभाव से मिलते और संभाषण करते थे। सरलता तो इनके जीवन का मूल मंत्र ही था। सरल जीवन और उच्च विचार के ये ज्वलन्त उदाहरण थे, जीवित प्रतिमा थे। इनके अंग-प्रत्यंग से, वेश-भूषा से, वार्तालाप से, व्यवहार से, जहाँ देखो वहाँ से सादगी प्रस्फुटित होती थी। बातचीत करते समय ये इतनी सरल एवं मधुर भाषा का प्रयोग करते थे कि देखते ही बनता था। कठिन से कठिन विषय को सरल करके लोगों को समझा देना इनके नीचे था। कैसा भी कठिन विषय क्यों न हो, महाराज साहब की प्रतिभा-खराद पर चढ़ कर वह नया रूप धारण कर लेता था और उसकी दुरुहता हवा हो जाती थी।

विक्रम संवत् १९८६ में महाराज साहब को सोज़िश की तकलीफ़ हुई और करीब दस दिन बीमार रहने के बाद आपाढ़ वदि ६ को, प्रातःकाल नौ बजे इन्होंने अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। मृत्यु के कुछ ही समय पहले इन्होंने निम्नलिखित पद बनाया था जिसमें ईश्वर और अपने विभिन्न गुरुओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई है :—

जगदीश्वर जीवाय दियो, थेंही थारो काम कियो ।
 दरशण योग दियो कर दाया, मरतलोक में अमर कियो ।
 एक एक अत्तर ईंरा ने देख देख ने दंग रियो ।
 ईं जग जंगल रा भटका ने पल ही में पलटाय दियो ।
 माँगूँ कई कई अब बाकी अण माँग्या ही अभय ब्हियो ।
 आवा रे कागद साथे ज्यूँ आखर पढ़ताँ आय गियो ।
 पाराशर्य, पतंजल जोगी, कीके, कपिल, गुमान, कियो ।
 कर करूँया थूँ ही दीनों पे भीपम, ईश्वर कृष्ण ब्हियो ।
 चौड़े खुल्यौ कमाड़ खजानो देने भी कोनेक दियो ।
 मनख शरीर दियो थे मालक शागे जनम सुधार दियो ।
 'चातुर' चोर चाकरी रो पण आखर थें अपणाय लियो ।
 जगदीश्वर जीवाय दियो, थे ही थारो काम कियो ।

चतुरसिंह जी संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और हिन्दी के सिवा गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाएँ भी जानते थे । इन्होंने ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य, रामानुज भाष्य, उपनिषद्, श्री मद्भगवद् गीता, योगवासिष्ठ, पंच-दशी, आत्मपुराण, विचार सागर, श्रीमद्भावत, महाभारत आदि ग्रन्थों का खूब मनन कर रखा था । हिन्दी के कवियों में कबीर, तुलसी, मीरा, दादू, और नानक की कविता इन्हें बहुत पसंद थी । इन्होंने छोटे मोटे १६ ग्रंथ बनाये, जिनके नाम ये हैं:—

(१) भगवद्गीता की समश्लोकी सार दर्शावणी और गंगा जली टीका
 (२) परमार्थ विचार (भाग १—७) (३) योग सूत्र की हिन्दी और मेवाड़ी टीका (४) सांख्य तत्व समास की टीका (५) सांख्य कारिका की टीका (६) मानव मित्र राम चरित्र (७) शेष चरित्र (८) अलख पचीसी (९) तुँही अष्टक (१०) अनुभव प्रकाश (११) चतुर चिन्ता-मणि (भाग १—३) (१२) महिम्न स्तोत्र—मेवाड़ी समश्लोकी अनुवाद (१३) चन्द्रशेखराष्टक—मेवाड़ी समश्लोकी अनुवाद (१४) हनुमान पंचक (१५) समान बत्तीसी (१६) चतुर प्रकाश ।

महाराज साहब ने राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों में कविता की है ।

इनकी भाषा बहुत सरल, संयत तथा सादी है और इनकी कविता से इनका व्यक्तिगत जीवन प्रतिबिम्बित होता है। इन्होंने भक्ति और वैराग्य पर प्रधान रूप से लिखा है, और जो भी लिखा है वह दूसरों से लेकर नहीं, बल्कि अपने अनुभव के आधार पर। इसलिए इनके काव्य में सच्चाई और स्वाभाविकता है। एक बहुत बड़ी विशेषता जो महाराज साहब की कविता में दीख पड़ती है, वह यह है कि अत्यन्त भावमयी एवं मौलिकता-पूर्ण होने साथ साथ वह सदुपदेशों से श्रोत-श्रोत है और मनुष्यों को उच्च आदर्शों के दर्शन कराती है। ऐसे सत्यं, शिवं और सुन्दरं साहित्य के रचयिता बहुत कम पैदा होते हैं।

इनकी कविता के दो-एक नमूने देखिये:—

(दोहे)

रहँट फरै चरख्यौ फरै, पण फरवा में फेर ॥

वो तो वाड़ हरयौ करै, वो छूँता रा ढेर ॥

भावार्थ—रहँट फिरता है और कोलहू भी, मगर दोनों के फिरने में (फिरने के उद्देश्य में) अंतर है। वह (रहँट) तो (पानी देकर) गन्ने के खेत को हरा भरा करता है और वह (कोलहू) गन्नों को पेल कर छोई का ढेर लगा देता है।

वाला वचे विरोध जी, करे फूँकरयौ चाड़।

वासूँ तो भाटा भला, रूप न मेटे राड़ ॥

भावार्थ—उन लोगों से जो दो प्रेमियों को उकसा कर उनमें मन मुटाव पैदा करते हैं, तो वे पत्थर (मीनारे) अच्छे हैं जो दो सीमाओं के बीच में गड़ कर भगड़े का अंत कर देते हैं।

चावै जतरा छोल जे, वेर भले ही वाड़।

मंदर रा ग्हारा कदी, करजे मती कमाड़ ॥

भावार्थ—(लकड़ी सुतार से कहती है) हे सुतार, तेरी इच्छा हो उतनी तू मुझे छीलना और काटना। पर कभी मंदिर के किवाड़ तो मेरे मत बनाना।

भावे जी भुगताय, दूजा दुख दीजे सभी ।

खोळा सूं खिसकाय, मत दीजे मातेश्वरी ॥

भावार्थ—हे मातेश्वरी, तेरी मर्जी हो वे दुख तू मुझे देना । पर कम से कम तेरी गोदी में से तो मुझे मत खिसकाना ।

कारड़ तो कइतौ फरै, हर कीने हक नाक ।

जींरी व्है बीने कहै हिये लिफाफो राक ॥

भावार्थ—कारड़ तो हर किमी को व्यर्थ ही अपनी बात कहता फिरता है । पर लिफाफा तो जो बात जिसको कहने की होती है उसी को कहता है ।

(सवैया)

व्याह की चाह उठे मन मांहि तो वर्ष पचीस वा बीस में कीजै ।

तीस मों फेरहु जोड़ सके मिल चार की शून्य पै नाम न लीजै ॥

शीश नटे अरु काँपे कलेवर दूबरी देह छिनो छिन छीजै ।

फेर भी चाह उठे उर माँहि तो खोलि उपान कपाल में दीजै ॥

(पद)

रे मन छन ही में उठ जाणो ।

ईं रो नी है ठोड़ ठिकाणो, अरे मन छन ही में उठ जाणो ।

साथे कई न लायो पेली, नी साथे अब आणो ।

वी वी आय मलेगा आगे, जी जी करम कमाणो ॥ १ ॥

सो सो जतन करे ईं तन रा, आखर नी आपाणो ।

करणो वे सो भटपट कर ले, पछे पड़े पछताणो ॥ २ ॥

दो दनरा जीवारे खातर, क्यूँ अतरो एठाणो ।

हाथा में तो कई न आयो, वार्ता में बेकाणो ॥ ३ ॥

कणी सँम पे गान वसावे, कणी नीम कमठाणो ।

ईं तो पवन पुरुष रा मेली, चानुर भेद पछाणो ॥ ४ ॥

(१४) केसरी सिंह जी बारहठ—बारहठ जी मेवाड़ के निवासी हैं ।

इनके पिता का नाम खेमराज था । आदि में इनके पूर्व पुरुष गुजरात के रहने वाले थे । लगभग छ सौ वर्ष हुए, तब वे वहाँ से मेवाड़ में आकर

बसे। केसरी सिंह जी का जन्म सं० १९२७, आपाढ़ वदि २ को चारण जाति के सोदा बारहठ कुल में हुआ।

केसरी सिंह जी बड़े सचरित्र, शील-स्वभाव तथा निरभिमानी पुरुष हैं और सुकवि होने के साथ २ इतिहास के भी भारी विद्वान हैं। अब तक इन्होंने बहुत सी फुटकर कविताएँ तथा प्रताप चरित्र, दुर्गादास चरित्र, जस-वंत सिंह चरित्र और राजसिंह चरित्र नाम के चार बाव्य ग्रंथ बनाये हैं, जिनमें से प्रताप चरित्र के सिवा दूसरे अप्रकाशित हैं। प्रताप चरित्र में महाराणा प्रताप का जीवन-इतिहास वर्णित है। पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, बाबू श्याम सुन्दर दास जी, पं० अयोध्या सिंह जी उपाध्याय आदि विद्वानों ने इस ग्रन्थ की भूरि २ प्रशंसा की है और डाक्टर पीताम्बर दत्त जी बर्थवाल ने तो इसके आधार पर बारहठ जी को इस युग का 'भूषण' बतलाया है। संवत् १९६२ में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से 'प्रज्ञाकर पुरस्कार' तथा 'बलदेव दास पदक' भी इन्हें इस ग्रंथ पर मिले हैं। बारहठ जी की कविता ओजस्विनी, शब्द योजना ललित एवं वर्णन शैली सरस तथा नल स्पर्शिणी होती है और वीर रस का उसमें अच्छा परिपाक मिलता है।

दो-एक नमूने देखिये:—

बोली वीर भगिनी मैं तो पै बलिहारी वीर
जगावत शूर और जरी मम जी की है।
जननी हमारी जन्म भूमि हेत जावत तू
कीरति अपार कहीं केती या घर की है ॥
कै तो जीत ऐह, कै पयान कर देहू प्रान
सुनत अथाह चतुरंगिनी अरी की है।
मो कौँ सरमावै मत, सासरे समाज बीच
तेरे भुज भाई आज लाज चूनरी की है ॥
मैं तो अधीन सब भांति सौ तुम्हारे सदा,
तापै कहा फेर जयमत्त हूँ नगारो दे।
करनो तू चाहै कछु और नुकसान कर,
धर्मराज मेरे घर एतो मत धारो दे ॥

दीन होइ बोलत हूँ पीछो जियदान देहु,
 करना निधान नाथ ! अबके तो ठारे दे ।
 बार बार कहत प्रताप मेरे चेटक कों,
 एरे करतार ! एक बार तो उधारो दे ॥

(१५) पंडित उमाशंकर जो द्विवेदी, साहित्यरत्न—पंडित जी का जन्म मेवाड़ राज्य के राजनगर ज़िले के पीपलान्तरी गाँव में सं० १९४९ में हुआ था । ये जाति के पालीवाल ब्राह्मण हैं । इनके पिता का नाम नानजी राम था, जो संस्कृत के अच्छे विद्वान और यशस्वी वैद्य थे । पंडित जी के गाँव में कोई स्कूल न था । इसलिए इनके पिता ने अपने घर ही पर इन्हें शिक्षा दी । इन्होंने आरंभ में हिन्दी और फिर संस्कृत आदि भाषाओं में अभ्यास करके शीघ्र ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । शिक्षा समाप्त करने के बाद इन्होंने मेवाड़ के दो-एक ठिकानों में कार्य किया और तदनंतर उदयपुर में चले आये, जहाँ आज कल सेटलमेंट के महकमें में हेडक्लर्क का काम कर रहे हैं ।

पंडित जी एक सहृदय साहित्य सेवी और राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति हैं । सरकारी नौकरी के बाद जितना भी समय शेष रहता है उसका अधिकांश ये साहित्य चर्चा में व्यतीत करते हैं । ये हिन्दी गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं । ग्रन्थ तो इन्होंने अभी तक कोई नहीं लिखा पर फुटकर लेख तथा कविताएँ प्रचुर परिमाण में लिखी हैं । पंडित जी वीर रस के बड़े भक्त हैं, पर शृंगार, शान्त आदि अन्य रसों में भी बड़ी मार्मिक कविता करते हैं । इनकी भाषा भावों के साथ चलती है और परिश्रम की झलक न इनके भावों में दृष्टिगोचर होती है, न भाषा में । पंडित जी की कविता में वन है, क्योंकि उसमें सच्चाई और भावना है ।

इनकी कविता देखिये:—

अंगनि उधारि सान बान मरजाद छीनी
 पंत पंथियों ने चीर खींच के उधारी लाज ।
 रस हीन, भाव हीन, व्यंग व्यंजना से हीन;
 भूषण विहीन कीन्ह, कीन्ह नटनी को साज ।

सूर है न तुलसीन, देव पदमाकर है;
गावै दुखड़े को कहाँ कौन पै करत नाज ।
कबैं भोज सिवा छत्रसाल को पुकारे कबैं
रोवत है ज़ार ज़ार कविता बिचारी आज ॥

उद्गम कैधौ रौद्र-रस की नदी को भोम,
कैधौ यह ताली मु'डमाली की विभूती की ।
कैधौ दृढ़ साहस की सीम को मिनार गङ्गो,
कैधौ विसराम थली कोरति अछूती को ॥
'विरही' विराजमान कैधौ अभिमान हिन्द,
कैधौ है निसानी प्रलैकाल करतूती की ।
कैधौ गढ़ बाँको गहिलोतन को चित्रकूट,
कैधौ धरि धीर बैठी धाकरजपूती की ॥

(१५) कुमारी दिनेशनदिनी चोरड़िया—बाई जी का जन्म सं० १९७३ में उदयपुर में हुआ । आपके पिता श्रीयुत श्यामसुन्दर लाल जी चोरड़िया, एम. ए., अंग्रेज़ी के प्रौढ़ विद्वान, भातुक कवि एवं हिन्दी भाषा के प्रेमी हैं और उदयपुर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में गिने जाते हैं । इस समय आप मॉरिस कॉलेज नागपुर में अंग्रेज़ी के प्रोफेसर हैं । बाई जी के दादा मोतीसिंह जी कन्याओं को स्कूलों में भेजने के पक्षपाती नहीं थे, इसलिए इनका पाठारंभ घर ही पर हुआ । परन्तु जब इन्होंने हिन्दी अंग्रेज़ी, गणित आदि विषयों में अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली तब इनका ध्यान उच्च शिक्षा की ओर गया और सन् १९३८ में नागपुर विश्वविद्यालय से मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा पास की । आजकल आप इन्टरमीडिएट की परीक्षा के लिए तैयारी कर रही हैं । अपने स्वतंत्र विचारों के कारण बाई जी अभी तक अविवाहित हैं । कहा जाता है कि इनको योगाभ्यास का भी अच्छा अनुभव है ।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने से बाई जी का भुकाव हिन्दी कविता की ओर हुआ और आपने गद्य-काव्य लिखना शुरू किया जो माधुरी, सुधा, हंस, विशाल भारत, कल्याण आदि हिन्दी के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में समय

समय पर छुपते रहे। धीरे २ बाई जी का नाम चारों ओर फैल गया और आज तो हिन्दी-साहित्य के गद्य-काव्य लेखकों में इनका एक खास स्थान माना जाता है। इनके गद्य-काव्यों के तीन संग्रह—गुरु संदेश, शबनम तथा मौक्तिक माल प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से शबनम पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की तरफ से 'सकसेरिया पुरस्कार' भी इन्हें मिला है।

प्रारंभ में बाई जी के गद्य-काव्यों में संस्कृत शब्दों की बहुलता रहती थी। पर जब से हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दोस्तानी का सवाल एक राजनैतिक समस्या के रूप में देश के सामने आया है, इन्होंने हिन्दोस्तानी को अपनी भाव-व्यंजना का माध्यम बना लिया है। इनकी रचना का प्रधान विषय है, प्रेम। इसमें संदेह नहीं कि भावुकता से ओत-प्रोत इनके इस प्रेम-वर्णन से इन्द्रियनिपसा झलकती है, पर साथ ही उसमें एक विशेष तल्लीनता, म्त्रियोचित कोमलता भी पायी जाती है जो इन्हें हिन्दी के अन्यान्य गद्य-काव्य रचयिताओं से बहुत ऊँचा उठा देती है। बाई जी के गद्य-काव्यों में सौन्दर्य, यौवनोल्लास और भावना मय जीवन का प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष है।

इनका एक गद्य-काव्य यहाँ दिया जाता है:—

ऐ मेरे चित्रित शयन-मन्दिर की खिड़की को स्पर्श करने वाले स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे मेरे बीच कोई रोज़ का पर्दा नहीं है !

कोयल के मञ्जुल सङ्गीत को सुन कर मैंने तेरे अंग अंग में कामाग्नि प्रज्वलित होते देखी है;

मैंने तेरी दिव्य आत्मा के देवता पवन को तेरे कोमल हृदय को स्पर्श करते, और तेरे चिरपिपासित ओंछाधरों पर अपने अतृप्त अधरों को रख कर तुझ में राग का उबार लाते देखा है !

तैने भी मुझे प्रेम-प्रेम में झूलती देखा है, संयोग और वियोग में हँसते और कलपने देखा है, और प्रीतम-प्यारे के साथ दान-लीला और मान-लीला करते देखा है।

ऐ शीतल, स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे मेरे बीच कोई रोज़ का पर्दा नहीं है !

सातवां अध्याय



आधुनिक काल (गद्य)

राजस्थान में गद्य लिखने की परंपरा बहुत प्राचीन काल से है। हिन्दू-पति महाराज पृथ्वीराज चौहान के समय के कुछ पट्टे-परवाने और सनदें मिली हैं, जो राजस्थानी गद्य में लिखी हुई हैं। इनके सिवा कुछ जैन लेखकों के लिखे हुए गद्य-ग्रन्थों का पता भी लगा है। संवत् १६८० के आस पास जटमल नाम का एक कवि हुआ था। इसने 'गोरा-बादल की बात' नामक एक छोटा सा ग्रंथ बनाया। इस ग्रन्थ की कई प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनमें से एक प्रति में पद्य के साथ साथ गद्य भी दिया हुआ है। इससे मालूम होता है कि वह गद्य और पद्य दोनों के लिखने में सिद्धहस्त था। जटमल के बाद दामोदर दास नामक एक दादू पथी साधु का लिखा हुआ गद्य ग्रन्थ मिलता है, जो मार्कंडेय पुराण का अनुवाद है। यह संवत् १७१५ के लगभग बना था। इसके अनन्तर राजस्थान का गद्य-साहित्य खयातों^१ और बातां^२ के रूप में विशेषकर के मिलता है, जिनका इतिहास और भाषा-विज्ञान को दृष्टि से बड़ा महत्व है। इन खयातों में 'मुँहणोत नैणसी री खयात,' 'जोधपुर रा राठोड़ों री खयात,' 'बोकानेर रा राठोड़ों री खयात' आदि सर्व प्रसिद्ध हैं। बात-साहित्य तो बहुत विस्तृत है। ये बातें ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक आदि विविध विषयों पर लिखी गई हैं और कोई कोई

१—इतिहास और यश सम्बन्धी ग्रन्थ।

२—कहानी को राजस्थानी में बात कहते हैं।

तो साहित्यिक उत्कर्ष के दृष्टि-कोण से भी बहुत मार्मिक तथा सुन्दर बन पड़ी है। सब से अधिक बातें मारवाड़ के कविराजा बांकीदास ने लिखी हैं। इनकी लिखी बातों की संख्या २८०० के लगभग हैं। ये सब अभी तक अमुद्रित हैं।

विक्रम संवत् ११०० के आस पास तक राजस्थान में राजस्थानी गद्य में साहित्य-निर्माण करने की परम्परा रही। पर इसके अनन्तर जब से भारत में राष्ट्रीयता की लहर उठी और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का पद दिया जाने लगा तब से प्रान्तीय भाषा के मोह को छोड़ कर राजस्थान के लेखकों ने हिन्दी-गद्य में लिखना शुरू कर दिया और फलस्वरूप शुद्ध साहित्यिक राजस्थानी गद्य का विकसित होना रुक गया। अतएव इस समय से राजस्थानी गद्य का इतिहास एक तरह से राजस्थान में हिन्दी गद्य ही का इतिहास है। इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण देश होने से यहां के विद्वानों ने अधिकतः इतिहास ग्रन्थ बनाये जिनमें से कुछ का राजस्थान और भारत में ही नहीं, बल्कि भारत के बाहर भी बहुत से देशों में अच्छा आदर हुआ। इन विद्वानों में महामहोपाध्याय राय बहादुर पंडित गौरीशंकर द्वीराचन्द जी ओझा का स्थान सर्व प्रथम है। ओझा जी राजस्थान के प्रमुख हिन्दी-लेखक और हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार हैं। इनके जोड़ का इतिहासवेत्ता हिन्दी में अभी तक कोई दूसरा नहीं हुआ। अंग्रेजी साहित्य में जो आदरणीय स्थान प्रसिद्ध इतिहासकार गिबन (Gibbon) का है वही हिन्दी साहित्य में ओझा जी को प्राप्त है। राजस्थान के लिये यह बड़े गौरव की बात है। ओझा जी के अलावा भी राजस्थान में कुछ ऐसे इतिहासवेत्ता हुए और आज भी विद्यमान हैं जिनके ग्रन्थ किसी भी साहित्य को गौरव दे सकते हैं। इनमें सर्वा श्री कविराजा श्यामलदास, मुंशी देवीप्रसाद, दीवान बहादुर हरबिलास सारड़ा, पं० विश्वेश्वरनाथ रेड और पं० रामकर्ण आसोपा के नाम प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान के प्राचीन गौरव तथा ऐतिहासिक वैभव को प्रकाश में लाने के लिए जितना परिश्रम ओझाजी प्रभृति विद्वानों ने इतिहास और पुरातत्व पर किया करीब करीब उतना ही उद्योग जयपुर के पुरोहित श्री हरिनारायण जी ने यहाँ के प्राचीन काव्य साहित्य, विशेषतः संत साहित्य को एकत्र कर ने

में किया। लगभग चालीस वर्ष तक घोर परिश्रम कर इन्होंने दादू, सुन्दरदास आदि सन्त कवियों को इधर उधर बिखरी हुई कविताओं का संग्रह किया तथा उनकी प्रामाणिक जीवनियाँ लिखीं और उनके संबन्ध में फैली हुई अनेकों गलतफ़हमियाँ दूर कीं। पुरोहितजी द्वारा संपादित सुन्दर-ग्रन्थावली, ब्रजनिधि ग्रन्थावली आदि संग्रह-ग्रन्थों की भूमिकाएँ इस कथन के प्रौढ़ प्रमाण हैं। ये भूमिकाएँ बड़ी छान बीन के बाद लिखी गई हैं और पंडितजी के अनवरत अध्ययन, सतत श्रम और असामान्य साहित्य प्रेम का परिचय देती हैं। पं० हरिनारायणजी की तरह ठाकुर भूरसिंहजी शेखावत, बाबू रामनारायणजी दूगड़, मुंशी देवीप्रसादजी, पंडित रामकर्णजी आसोपा, सूर्यकरणजी पारीक, ठाकुर रामसिंहजी, स्वामी नरोत्तमदासजी आदि विद्वानों ने भी प्राचीन काव्यों का संग्रह और सम्पादन कर उनके रचयिताओं की कीर्ति को विनष्ट होने से बचाने का बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। इनमें से कुछ ने समालोचना का काम भी किया है। पर ये आलोचनाएँ बहुत दूर तक नहीं जातीं; आलोचना शास्त्र की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। क्योंकि इनमें किसी ने भी काव्यों के गुण-दोषों का विवेचन कर उनके मर्म को समझाने की कोशिश नहीं की, केवल मात्र उनके बाह्य रूप को परखा है। वस्तुतः ये आलोचनाएँ एक तरह से ग्रन्थ-प्रणेताओं के गुणानुवाद और उनकी कृतियों पर दी हुई अपनी एकांगी सम्मतियों के रूप में हैं। हाँ, सूर्यकरण जी पारीक की आलोचनाएँ अवश्य ऊँचे ढंग की हुआ करती थीं और यह आशा थी कि आगे चल कर वे इस दिशा में और भी अधिक प्रवीणता प्राप्त कर लेंगे। पर पारीक जी अब नहीं रहे। उनकी मृत्यु से राजस्थान को भारी धक्का पहुँचा है।

अच्छे औपन्यासिक और नाटककार राजस्थान में बहुत कम हुए हैं—पं० लज्जाराम जी मेहता, ठा० कल्याण सिंह जी और श्री जर्नादन राय जी। पं०, लज्जाराम जी ने धूर्तरसिकलाल, हिन्दू गृहस्थ, आदर्श दंपती, विपत्ति की कसौटी आदि बहुत से उपन्यास लिखे थे। ये सभी उपन्यास सामाजिक हैं। इनमें आदर्श समाज की कल्पना की गई है और क्या चरित्र-चित्रण, क्या कथानक और क्या घटना वैचित्र्य सभी दृष्टियों से खरे सिद्ध हुए हैं। कुछ वर्ष हुए जब ठाकुर कल्याणसिंह जी (खारचियावास) ने सत्यानन्द तथा शुक्र और सोफिया नाम के दो उपन्यास लिखे थे। कला के विचार से ये उपन्यास भी

बहुत सुन्दर बन पड़े थे और इस लिये इनका प्रचार भी अच्छा हुआ। पर न मालूम क्यों, ठाकुर साहब ने बाद में कोई उपन्यास नहीं लिखा। श्री जना-दर्नराय ने दो उपन्यास और चार-पाँच नाटक लिखे हैं। ये कहानियाँ भी अच्छी लिखते हैं। इनसे हिन्दी का हित होने की बड़ी आशा है। नाटक शिवचन्द्र भरतिया के भी अच्छे हैं। पर ये राजस्थानी में लिखे हुए हैं। गद्य-काव्य लेखकों की तो राजस्थान में एक तरह से बाढ़ सी आ गई है। हिन्दी में जितने गद्य-काव्य लेखक इस समय विद्यमान हैं, उनमें आधे से अधिक तो अकेले राजस्थान ही के हैं।

राजस्थान के सामयिक पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास एक दुख भरी कहानी है। बगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में जहाँ उच्चकोटि के कई दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र निकलते हैं वहाँ राजस्थान से एक भी दैनिक पत्र नहीं निकलता और 'राजस्थान', 'नवज्योति' आदि दो-एक साप्ताहिक पत्र जो अजमेर से निकल रहे हैं उनकी भी आर्थिक स्थिति कोई बहुत संतोषजनक नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि ये पत्र रियासती जनता को स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाना चाहते हैं जिसे यहाँ के राजा-महाराजा सहन नहीं कर सकते। राजस्थान में इस समय छोटी बड़ी कुल मिला कर २३ रियासते हैं। इन में से प्रायः सभी बड़ी बड़ी रियासतों की ओर से पत्र निकलते हैं। पर इन पत्रों में सिवा इशतहारों और सरकारी विज्ञापितियों के और कुछ नहीं रहता। इन के द्वारा न तो प्रजा के दुख-दर्द राजा तक पहुँचाये जा सकते हैं, न वहाँ के शासन की अलोचना हो सकती है और न भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राज-नीति पर विचार-प्रदर्शन हो सकता है। 'सरस्वती', 'सुधा', 'विशालभारत' आदि के ढग का कोई मासिक पत्र भी यहाँ से नहीं निकलता। कुछ वर्ष पहले 'त्याग भूमि' नाम का एक मासिक पत्र श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय ने निकाला था। इसका राजस्थान की जनता ने अच्छा स्वागत किया। पर यह भी राष्ट्रीयता के रंग में डूबा रहता था जिसका परिणाम यह हुआ कि आज उसके संबंध की कहानी मात्र कहने को रह गई है। बात यह है कि इस बीसवीं शताब्दी में कोई आराष्ट्रीय पत्र भारत में जा नहीं सकता और राष्ट्रीयता से राजा-महाराजाओं का ३६ का सम्बन्ध है, इसलिये कोई राष्ट्रीय पत्र यहाँ चल नहीं सकता। दुख तो यह है कि जिन प्रकार के विचारों का अंग्रेजी इलाकों में

आग की छोटी २ चिनगारियों का सा मूल्य भी नहीं है, वही विचार राजस्थान में बम के भयंकर गोले समझे जाते हैं। यह बात ज़रा विचारणीय है। सारांश, पत्रकारिता की दृष्टि से राजस्थान आज भी क़रीब क़रीब उसी जगह पर है, जिस जगह पर पचास वर्ष पहले था और निकट भविष्य में भी इस दिशा में बहुत अधिक उन्नति की आशा नहीं है।

पत्रकारिता को छोड़ कर अन्य क्षेत्रों में हिन्दी-प्रगति का कार्य यहाँ बड़े वेग से हो रहा है। विश्वविद्यालयों से उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए बहुत से नवयुवक लेखक बड़ी लगन के साथ हिन्दी-साहित्य की सेवा कर रहे हैं। राजस्थानी ग्रंथ माला (पिलाणी), राजस्थान रिसर्च सोसाइटी (कलकता), राम विलास पोद्दार स्मारक ग्रंथ माला (नवलगढ़), राजस्थानी साहित्य परिषद (बीकानेर), संत-ग्रंथ-माला (जयपुर) आदि संस्थाओं की स्थापना हुई है, जहाँ से उच्च कोटि का साहित्य निकल रहा है। अभी तक इन संस्थाओं की ओर से संग्रह-ग्रंथ ही अधिकतः प्रकाशित हुए हैं। पर आगे चल कर विभिन्न विषयों के मौलिक ग्रंथों का प्रकाशन भी इनके द्वारा होगा, ऐसी आशा है।

(१) कविराजा श्यामलदास—ये दधिवाड़िया गोत्र के चारण मेवाड़ राज्य के ढोकलिया ग्राम के निवासी थे। इन के पूर्वज मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ते परगने के गाँव दधिवाड़ा में रहते थे और रूण के सांखले राजाओं के 'पोलपात' थे। जब राठोड़ों ने सांखलों से उनका राज्य छीन लिया तब वे मेवाड़ में चले आये। उनके साथ श्यामलदास जी के पूर्वज भी यहाँ आकर बसे। दधिवाड़ा गाँव से आने के कारण ये दधिवाड़िया कहलाये।

श्यामलदास जी का जन्म स० १८६३ आषाढ़ कृष्ण ३ मंगलवार को हुआ था। इनके दादा का नाम रामदीन और पिता का कमजी (कायमा सिंह जी) था। ये चार भाई थे—ओनाड़सिंह, श्यामलदास, ब्रजलाल और गोपाल सिंह। इन्होंने दस वर्ष की आयु में व्याकरण का सारस्वत ग्रंथ पढ़ना प्रारंभ किया और उसके बाद वृत्तरत्नाकर, साहित्य-दर्पण, रसमंजरी, कुबलया-नंद इत्यादि ग्रंथों का अध्ययन किया जिससे संस्कृत काव्य के प्रायः सभी अंगों का इन्हें अच्छा बोध हो गया। स० १६१२ तक विद्याभ्यास चलता रहा। इस अर्थ में इन्होंने संस्कृत के सिवा उर्दू-फ़ारसी और डिगल में भी अच्छी

दक्षता प्राप्त कर ली। इन्होंने दो-एक ग्रंथ ज्योतिष तथा वैद्यक के भी पढ़े थे।

इनका पहला विवाह सं० १६०७ में शाकरड़ा के भादकलाजी की बेटी से हुआ। सं० १९१९ में इनके एक पुत्र हुआ जो तीन वर्ष बाद मर गया। फिर तीन कन्याएँ और दो पुत्र हुए, जो बहुत छोटी अवस्था में परलोक सिधार गये। इन्होंने दूसरा विवाह सं० १९१६ में किया था। इनके एक भी पुत्र जीवित नहीं रहा जिससे इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र जसकरण को अपनी गोद ले लिया था। श्यामलदासजी का देहान्त सं० १९५१ में हुआ।

श्यामलदासजी एक सभा-चतुर, नीति-निपुण एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे और महाराणा सजन सिंह जी के इतने कृपा पात्र थे कि उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे। इसलिये लोग इनसे प्रायः बहुत जलते थे। इसका एक कारण यह भी था कि ये हाँ-हुज़ूरी नापसंद करते थे और कितना ही प्रतिष्ठित व्यक्ति क्यों न होता उसे खरी २ सुनाये बिना नहीं रहते थे। ये कहा करते थे कि अपने मतलब के लिए मीठी २ बातें तो सभी कह देते हैं। पर हितकारक कटु बात कहने वाले कम मिलते हैं। अतः कटु सत्य कहने का काम मेरा है। ये (State Council) महाराज सभा के मेम्बर थे और इतिहास-कार्यालय, पुस्तकालय, म्यूज़ियम आदि की देख-रेख भी करते थे। इसके सिवा राज-काज सम्बन्धी प्रायः सभी महत्व पूर्ण विषयों पर इनकी सलाह ली जाती थी। मेवाड़ राज्य के प्रति की हुई सेवाओं के कारण कवि-राजा जी का सम्मान भी खूब हुआ। महाराणा सज्जनसिंहजी ने इन्हें कवि-राजा की पदवी, जुहार, ताजीम, छड़ी, बाँह पसाव, चरण शरण की मुहर, पैरों में सर्व प्रकार का सुवर्ण भूषण और पगड़ी में माँझा आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई जिसका वर्णन इन्होंने स्वयं ही निम्न लिखित छप्पय में किया है—

जिम जुहार ताजीम, पाय लंगर हिम पटके।

पूरण बाँह पसाव, खळां अदवां मन खटके ॥

जाहिर छड़ी जलैव, थरु बीड़ो जस थापण ।
 माँझो पाघ मँझार, छाप कागळ बड़ छापण ॥
 कविदास तेण कविराज कर, कठिन अंक बिधि कापिया ।
 करि शुभ निगाह श्यामल कुरब, सज्जन राण समापिया ॥

अंग्रेज़ी सरकार ने भी इनकी योग्यता की कदर कर इनको महामहोपाध्याय का पदित किया था । महाराणा साहब के प्रसन्न होने से मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल इम्पी ने अपनी कोठी पर दरबार किया और कविराजा जी को कैसेरे हिन्द का तगमा देकर कहा कि आपने महाराणा साहब को समय २ पर बहुत उत्तम सलाह दी हैं, जिससे खुश होकर अंग्रेज़ सरकार आपको यह तगमा देती है ।

श्यामलदासजी कवि और इतिहासकार दोनों थे । पर राजस्थान में इनकी कीर्ति का आधार इनकी कविताएँ नहीं, बल्कि इनका लिखा 'वीरविनाद' नामक इतिहास ग्रन्थ है । यह वृहद् इतिहास दो भागों में विभक्त है और रॉयल चौपेजी साइज़ के २२५६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है । महाराणा शम्भु सिंह जी की आज्ञा और कर्नल इम्पी के आग्रह से सं० १९२८ में इसका लिखना प्रारंभ हुआ और महाराणा फतहसिंह जी के राजत्व काल में सं० १९५९ में इसकी समाप्ति हुई । इसके लिए सामग्री जुटाने आदि में मेवाड़ दरबार का (१०००००) रु० व्यय हुआ था । ग्रंथ छप तो गया पर महाराणा फतह सिंह जी ने कुछ विशेष कारणों से इसका प्रकाशित होना मुनासिब न समझा और इसका प्रचार होना रोक दिया । इसलिए छपजाने पर भी यह सर्व साधारण के काम में न आ सका । कई वर्षों तक बंद कोठरियों में पड़ा रहा । वर्तमान महाराणा साहब ने अब इसको बेचने की आज्ञा देकर इतिहास प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है । वीर विनाद इतिहास का एक स्टेण्डर्ड ग्रन्थ है और मेवाड़ के इतिहास पर प्रमाण समझा जाता है । इसमें मुख्यतः मेवाड़ का इतिहास ही वर्णित है पर प्रसंग वश जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर आदि राजस्थान को दूसरी रियासतों तथा बहुत से मुसलमान बादशाहों का विवरण भी इसमें आ गया है, जिससे इसकी उपादेयता और भी बढ़ गई है । प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, बादशाही फरमानों इत्यादि का इसमें अपूर्व संग्रह हुआ है ।

कविराजा जी को संस्कृत का जितना ऊँचा ज्ञान था उसको देखते हुए उनकी उर्दू-फारसी की जानकारी बहुत साधारण थी। पर हिन्दी लिखते वक्त न मालूम उनकी यह संस्कृतज्ञता कहाँ हवा हो जाती थी। 'वीर विनोद' को पढ़ कर आज कोई यह नहीं कह सकता कि वह एक ऐसे व्यक्ति की रचना है जो उर्दू-फारसी की अपेक्षा संस्कृत अधिक जानता था। कारण, श्यामल दास जी की लेखन-शैली पर फारसी शैली का अत्यधिक रंग है और भाषा में अर्बो-फारसी के शब्दों की इतनी भरमार है कि वह हिन्दी न रह कर एक तरह से उर्दू हो गई है, सिर्फ लिपि नागरी है। देखिये:—

“बादशाह ने उन लोगों की सलाह पर बिनकुल खयाल न किया और यही जवाब दिया कि राणा के आये बगैर इस लड़ाई से हाथ उठाने में मुझे शर्म आती है और उन दोनों सरदारों से फर्माया कि राणा के हाज़िर हुये बिना यह अर्ज मज़ूर नहीं हो सकती। तब डोडिया सांडा ने अर्ज की कि हमारे मालिक तो पहाड़ी मुल्क के राजा हैं और पहाड़ी लोगों में जहालत (असभ्यता) ज्यादा होती है; वे इस वक्त मौजूद नहीं हैं इसलिए उनके हाज़िर होने का इक़रार हम लोग नहीं कर सकते। हम लोगों को जो पेश-कश देकर लाचार करते हैं, ज़बरदस्ती बादशाही कायदे के खिलाफ है, इस पर जयपुर के राजा भगवानदास ने बादशाह के कान में झुक कर अर्ज की कि देखिये यह कैसा गुस्ताख़ आदमी है कि शाहंशाही दरबार में सख्त कलामी से पेश आता है। अकबर शाह तो बड़ा क़दरदान था। उसने फ़रमाया, कि यह शख्स जो अपने मालिक की खैरखाही पर मुस्तैद होकर सवालों के जवाब बेधड़क दे रहा है इनाम के लायक है। इससे राजा भगवानदास को, जिसने अदावत से चुगली खाई थी, शर्मिन्दा होना पड़ा। ❀

(२) पं० लज्जाराम मेहता—पंडित लज्जाराम मेहता हिन्दी साहित्य के अमर जीवों में से एक हैं। इनका जन्म संवत् १६२०, चैत्र कृष्ण २ को बूंदी में हुआ था। ये बड़नगरे नागर थे। इनके पूर्वज बड़नगर के रहने वाले थे जहाँ से वे राजस्थान में आ बसे थे। इनके पिता का नाम गोपालराम और पितामह का गणेश राम था। पंडित जी १८ माह तक गर्भवास में रहे

थे। इसलिये माँ के उदर से ही बहुत सी बीमारियाँ अपने साथ लेकर आये थे। इनकी ६८ वर्ष की आयु में एक दिन भी ऐसा नहीं निकला जब इन्हें कोई न कोई शारीरिक कष्ट न रहा हो। खाँसी इनकी चिरसंगिनी रही। बवासीर, हृद्रोग आदि व्याधियों के कारण इनको अपना जीवन एक भार सा मालूम देता था। रात को नींद नहीं आती थी। इसलिये इन्होंने दिन में दो बार अफीम का सेवन करना शुरू कर दिया था। आँखों की कमजोरी को दूर करने के लिये ये तमाखू भी खूब सूँघते थे।

मेहता जी को स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली थी। पर बाद में अपने निजी परिश्रम द्वारा इन्होंने अंग्रेज़ी, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सन् १९३८ में जब इन के पिता की मृत्यु हो गई तब इनको 'कपड़ा की दुकान' पर उनकी जगह १२) रु० मासिक की नौकरी मिली। वहाँ से इनका तबादला सरकारी स्कूल में हुआ। पर ये एक ईमानदार, निष्पक्ष और अपने विचारों पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति थे इसलिये यहाँ भी इनका ठिकाण अधिक दिनों तक न हो सका। राज कर्मचारियों की धीमा-धीमी तथा अपने जातीय भाव्यों के पड़यन्त्रों से तंग आकर इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और जीविकार्थ बम्बई चले गये। बम्बई में ये पहले 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी सम्पादक और बाद में प्रधान सम्पादक बनाये गये। सुयोग्य और बहुभाषाज्ञानी तो ये थे ही। इस क्षेत्र में बहुत जल्दी चमक गये। सं० १९६० तक ये 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के संपादक रहे। बाद में वापस बूँदी चले आये। इसबार बूँदी का वातावरण इनके लिये अधिक अनुकूल रहा। बूँदी-नरेश महाराव राजा रघुवीरसिंहजी ने इन्हें अपने यहाँ नौकर रख लिया और स्वष्टभाषी, निष्पक्ष एवं विश्वसनीय समझ कर कई तरह से इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इनका देहान्त सं० १६-८८ में बूँदी में हुआ। पंडित जी के कोई संतान नहीं हुई। उनके भानजे श्रीयुत रामजीवनजी आजकल उनकी धनसंपत्ति के मालिक हैं। ये भी हिन्दी के बहुत अच्छे लेखक और बहुपठित विद्वान् हैं। इनको 'देशी बटन', 'कौतुक माला', 'मुक्ता' इत्यादि दस के लगभग पुस्तकें छप चुकी हैं।

पं० लज्जाराम जी सनातन धर्म के कट्टर अनुयायी और हिन्दू आदर्शों के पूर्ण पक्षपाती थे। हिन्दी की सेवा भी इन्होंने खूब की। सं० १९८६ में होने

वाले हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने जाने के लिये मेहता जी का नाम समाचार पत्रों में निकला था । पर कुछ तो शारीरिक अस्वस्थता के कारण और कुछ यह समझ कर कि देशी राज्य में रह कर इस तरह के उत्सवों में सम्मिलित होना ठीक नहीं होगा, इन्होंने उक्त पद को स्वीकार नहीं किया । इन्होंने कुल मिला कर २३ ग्रंथ लिखे जिनमें से १३ उपन्यास और शेष ऐतिहासिक तथा संग्रह ग्रंथ हैं । इन ग्रंथों के नाम ये हैं:—

(१) कपटी मित्र (२) ब्रूत चरित्र (३) शराबी की खराबी (४) विचित्र स्त्री चरित्र (५) बोरबल विनाद (६) हिन्दू-गृहस्थ (७) धूर्त रसिक लाल (८) स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी (९) विकटोरिया चरित्र (१०) अमीर अबदुर्रहमान (११) आदर्श दम्पती (१२) भारत की कारीगरी (१३) सुशीला विधवा (१४) बिगड़े का सुधार (१५) विपत्ति की कसौटी (१६) उम्मेद सिंह चरित्र (१७) पराक्रमी हाड़ाव (१८) जुझार तेजा (१९) आदर्श हिन्दू (२०) पं० गंगासहाय का चरित्र (२१) ओक्षणस गोत्र का वशवृक्ष (२२) आप बीती (२३) पद्म लाख पर पानी ।

हिन्दी के उपन्यासकारों में पं० लज्जाराम जी का स्थान बहुत ऊँचा है । इनके उपन्यास आदर्शात्मक हैं, पर हैं वे सब मौलिक । इनमें से किसी पर भी भावापहरण अथवा विषयापहरण का लालुन नहीं लगाया जा सकता । अपने उपन्यासों में इन्होंने समाज के सजीव चित्र अंकित किये हैं और पाप की पराजय तथा पुण्य की विजय दिखला कर मनुष्यों का ध्यान उच्चादर्शों की ओर आकर्षित किया है । इनके उपन्यासों के सम्बन्ध में कुछ लोगो ने यह आक्षेप किया है कि उनमें मनोरंजन की मात्रा कम और उपदेश की अधिक है । पंडित जी के प्रारंभ के दो-एक उपन्यासों में यह दोष देखा जाता है । पर बाद के उपन्यासों में नहीं । इनके 'विपत्ति की कसौटी', 'आदर्श हिन्दू' आदि उपन्यास काफी रोचक और कला-समन्वित हैं । मेहता जी बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं मुद्दावरेदार भाषा लिखते थे । इनकी भाषा में संस्कृत शब्दों का आधिक्य और उर्दू के शब्दों की न्यूनता है । उदाहरण देखिये:—

“बूंदी के उपलब्ध पंडितों और डिगल तथा पिंगल के नामी नामी कवियों में से चुने हुए व्यक्ति इसमें नियत किये गये थे । मैं भी उनमें पाँचवां

सवार था। मैंने एक काम किया और वह समस्त सदस्यों के पसंद आया। करता यह था कि जिस पद्य के अर्थ में कुछ उलझन दिखाई देती और सब लोग अपनी अपनी राय पर उसका अर्थ खेंचते थे और न ही मैं पेन्सिल कागज़ लेकर उसका अर्थ अपनी बुद्धि के अनुसार लिखता और उस पर बहस होकर तुरन्त एक मार्ग निकल आता था। प्रयोजन यह कि जो कुछ मेरे ध्यान में आया कच्चा-पक्का अर्थ मैंने पत्रारुढ़ कर दिया।^{१)}

(३) मुंशी देवी प्रसाद—ये जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म अपने नाना के घर जयपुर में सं० १६०४ में हुआ था। इनके पिता का नाम नत्थनलाल था। मुंशीजी पहले टोंक राज्य में नौकर थे, फिर महाराजा जसवंतसिंहजी के समय में सं० १६३६ के आस-पास जोधपुर चले आये। जोधपुर में इन्होंने मुंसिफ का काम किया और मर्दुम शुमारी के महकमे पर भी रहे। ये एक पश्चिमी, बहु पंडित तथा ज्ञान पिपासु व्यक्ति थे और अपनी धुन के बड़े पक्के थे। जिस काम का अपने हाथ में लेते उसे पूरा कर ही के छोड़ते थे। सरकारी नौकरी के अलावा जितना भी समय शेष रहता उसे ऐतिहासिक खोज के काम में लगाते थे। ये अरबी-फ़ारसी तो खूब जानते थे, पर संस्कृत का गंभीर ज्ञान न था। इसलिये प्राचीन शिलालेखों के पढ़ने में संस्कृत के पंडितों का सहायता लेते थे। संस्कृत न जानने का पछतावा भी इन्हें आयु पर्यन्त रहा। फ़ारसी ग्रंथों के आधार पर इन्होंने बहुत से ग्रंथ लिखे जिनसे मुसलमानकालीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी को इन्होंने (१००००) रु० का दान दिया था, जिसके ब्याज से ऐतिहासिक पुस्तकें छपी जाती हैं। इनका देहावसान सं० १६८० में हुआ।

मुंशी जी ने छोटे-मोटे कुल मिला कर संख्या में पचास से ऊपर ग्रंथ लिखे जिनके नाम ये हैं:—

अकबर, शाहजहां, हुमायूँ, इमादुद्दीन, बाबर, पीरशाह सांगा, रतसिंह, विक्रमादित्य (चित्तौड़) बख्शीर, उदयसिंह, प्रतापसिंह, पृथ्वीराज (जयपुर) पूरणमल, रतन सिंह, आसकरण, राजसिंह (जयपुर) भारमल, भगवानदास, मानसिंह, वीकाजी, नरा जी, लूणकरण, जैतसी, कल्याणमल, मालदेव

बीरबल, मीरांबाई, जसवन्त सिंह, खानखाना, औरङ्गजेब, जसवन्त स्वर्ग वास, सरदार सुखसमाचार, विद्यार्थी विनोद, स्वप्न राजस्थान, मारवाड़ का भूगोल, प्राचीन कवि, बीकानेर राज्य पुस्तकालय, ईसाफ संग्रह, नारी नव रत्न, महिला मृदु वाणी, मारवाड़ के प्राचीन शिलालेखों का संग्रह, सिंध का प्राचीन इतिहास, यवन राज वंशावली, मुगल वंशावली, युवती योग्यता कवि रत्न माला, अरबी भाषा में संस्कृत ग्रंथ, रूठीरानी, परिहार वंश प्रकाश, परिहारों का इतिहास और राज रसनामृत ।

मुंशी देवी प्रसाद ने कोई बहुत बड़ा तथा क्रमबद्ध इतिहास कहीं का भी नहीं लिखा । परंतु अकबर, प्रताप, मीरांबाई आदि की जीवनियाँ बड़े अनुसंधान के बाद लिखी गई हैं और इनसे उनकी शोधक बुद्धि, विद्वत्ता और ऐतिहासिक ज्ञान का परिचय मिलता है । ये बहुत सरल, व्यवहारिक एवं चलती हुई भाषा लिखने थे और शब्दाडम्बर तथा किसी बात को घुमा फिरा कर कहने के विरुद्ध थे । इनकी भाषा-शैली में उर्दू-हिन्दी का अपूर्व सम्मेलन हुआ है । विषय प्रतिपादन-प्रणाली सादी तथा वाक्यावली सुलभी हुई होने से इनके ऐतिहासिक ग्रंथों के पढ़ने में भी उपन्यासों के पढ़ने का सा आनन्द आता है । इनकी स्वतंत्र भाषा का थोड़ा सा नमूना देखिये—

“हे राजन् ! जो मैं कहता हूँ उसे आर अभिमान छोड़कर सुने । जब न तो मैं ही कुत्ते से कम हूँ और न आर राजा युधिष्ठिर से बड़ कर हूँ, तो फिर मेरी और आपकी बातचीत होने से दरबारी लोग क्यों बुरा मान रहे और झुका हो रहे हैं । सुनिए, इस असार संसार में मनुष्य का नाशवान शरीर ममता से ढहरा हुआ है, जो यह न हो तो किसी का काम ही न चले । देखिये, जैसे आपको अपने अलंकारों से सजे हुये शरीर का अहंकार है वैसे ही हम शरीरों को भी अपने नंगे-धड़ंगे शरीरों का है । आपको बड़े २ महलों वाली अपनी राजधानी जैसी प्यारी है वैसे ही मुझे भी अपनी यह बुरी सुरी भोंपड़ी अच्छी लगती है जिसकी खिड़की घड़े के घेरे से सजाई गई है और जो जन्म-दिन से माता के समान मेरे दुख सुख की साथिन रही है ।”*

(४) बाबू रामनारायण जी दूगड़—इनका जन्म वि० सं० १९०६ पौष सुदी २ को उदयपुर में हुआ था । ये जाति के दूगड़ महाजन थे । इनके पिता का नाम शेषमल था । रामनारायण जी कई वर्षों तक सज्जन निवास बाग, उदयपुर के सुपरिण्डेंट रहे और बड़ी नेकनियती से काम किया । ये बड़े कोमल स्वभाव तथा मितभापी पुरुष थे और समा-सोसाइटियों में प्रायः कम जाते थे । अपने पीछे ये दो पुत्र छोड़कर मरे, जिनमें से छोटे पुत्र तेजमल ने, न मालूम क्यों, आत्महत्या कर ली थी । बड़े पुत्र श्री खेमराज जी आज कल सुमेर पुष्टिकर हाई स्कूल, जोधपुर में ड्राइङ्ग मास्टर हैं । रामनारायण जी का देहावसान वि० सं० १९८८ में हुआ ।

रामनारायण जी को हिन्दी, संस्कृत डिङ्गल, अँग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और इतिहास के अच्छे जानकार थे । इन्होंने मुंह-णोत नैणसी की ख्यात (प्रथम भाग) तथा बाँकीदास ग्रन्थावली (दूसरा भाग) का सम्पादन किया और राजस्थान रत्नाकर, राणासागा पृथ्वीराज चरित्र एवं वीर भूमि चित्तौड़गढ़ ये चार ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे ये बहुत मुहावरेदार, चर्शत एवं परिष्कृत भाषा लिखते थे जिसमें न तो संस्कृत शब्दों की भरमार रहती थी और न उर्दू के शब्दों की । यथा—

“राजा विक्रम-भोज की भाँति उसने बड़े बड़े विद्वान, कार्य कुशल और राज भक्त मंत्रियों को अपने दरबार में रक्खा । मत-द्वेष को तो कभी उसने पास तक न फटकने दिया । अपने राज्य में सब प्रकार शान्ति बनाये रखने के हेतु उसने हिन्दू-मुसलमान सबके साथ एक सा वर्ताव किया । राज्य के बड़े २ मंसब और मुल्की और जंगी कामों पर अनेक हिन्दू व्यक्ति और राव-राजा आदि तैनात थे । गोवध बिलकुल बन्द कर दिया था और बिना किसी भेदभाव के सर्वप्रजा हितकारी कार्यों में सदा दत्तचित्त रहना था ।”

(५) पंडित रामकण्ठ जी आसोपा—पंडित जी का जन्म वि० सं० १९१४ भादों वदि २ शुक्रवार को अपने नाना के घर मारवाड़ राज्य के बड़लू नामक गाँव में हुआ था । ये जाति के दहिमा ब्राह्मण हैं । इनका आग्र

स्थान मेड़ता है, जहाँ से इनके पिता बलदेव जी जोधपुर में आकर बस गये थे। पंडित जी की माता का नाम शृङ्गार देवी था, जो पति की परम भक्त और पतिव्रता स्त्रियो में गणना करने योग्य महिला थी।

पंडित जी जब पाँच वर्ष के थे तब इनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। हिन्दी तथा गणित का थोड़ा सा ज्ञान हो जाने पर इन्होंने सारस्वत पढ़ना प्रारंभ किया जिसके साथ साथ श्राग्दूमागत के दशम स्कंध का पाठ भी चलता रहा। तदनन्तर रघुवंश आदि काव्य एवं ज्योतिष तथा वैद्यक के ग्रंथ पढ़ाये गये। फिर अपने पिता के साथ बंबई चले गये जहाँ भारत मार्तण्ड, प्रज्ञा-चक्षु प्रसिद्ध पंडित गट्टलालजी के पास रह कर सिद्धान्त कोमुदी, महा-भाष्य, वेदान्त, काव्य, नाटक, साहित्य इत्यादि विषयो का अध्ययन किया। सन् १९४२ में ये श्री दरबार हाई स्कूल, जोधपुर में अध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ सोलह वर्ष तक रहे। वहाँ से इनका तत्वादला राजकीय इतिहास कार्यालय में हुआ। यहाँ पर इनका मुख्य काम शिलालेखों को पढ़ने तथा उनका अनुवाद करने का था। इन्होंने संस्कृत पुराने शिलालेख तथा ताम्रपत्र पढ़े और कई पुरातत्व शोधक यूरोपियन विद्वानों के पढ़े हुए लेखों का संशोधन कर उन्हें Indian Antiquary, Epigraphia Indica आदि जर्नलों में छपवाये। पंडित जी दो साल के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय में राजपूत इतिहास के लेक्चरर भी रह चुके हैं।

राजस्थान के वर्तमान साहित्य मेधियों में पंडित रामकृष्ण जी सबसे वृद्ध हैं। इनकी आयु इस समय ८१ वर्ष की है। पर चरित्रवान एवं सयमी होने से इनके शरीर में आज भी 'युवकों की सी स्फूर्ति और बालकों का उत्साह' है। ये बहुत शान्त, गंभीर और मिलनसार हैं। सादगी इनको बहुत प्रिय है। ये संस्कृत के उद्भट विद्वान, अच्छे इतिहासवेत्ता तथा पुरातत्व के लब्ध प्रतिष्ठ पंडित हैं। डिंगल भाषा के मर्मज्ञ हैं। डा० रामकृष्ण गोपाल भांडारकर, सर जे० एच० मार्शल आदि विद्वानों ने इनके पांडित्य की बड़ी सराहना की है और प्राचीन शिलालेखों के पढ़ने के परिज्ञान के कारण इनकी भारत के आधे दर्जन विद्वानों में गणना की है। इस समय ये डिंगल भाषा का एक वृहद् कोष तैयार करने में लगे हुए हैं जिसके

लिए ६०००० के लगभग शब्दों का संग्रह हो चुका है। इनके द्वारा रचित, संपादित तथा अनुवादित ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) श्रीमद्भागवत् का अनुवाद (२) श्री तुलसीकृत रामायण की टीका (३) बाल चित्र बोध (४) सुभाषित सार (५) श्रीमद्भगवद्गीता की मारवाड़ी भाषा टीका (६) मारवाड़ी व्याकरण (७) मारवाड़ी भाषा-प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुस्तक (८) हिन्दी व्याकरण (९) श्री सूक्त भाष्य हिन्दी भाषान्तर (१०) ईशावास्योपनिषत् विवृति (११) मारवाड़ का भूगोल (१२) संस्कृत कोर्स की सविवरण टीका (१३) धातुरूप (१४) काव्य प्रकाश का अनुवाद (१५) मारवाड़ का मूल इतिहास (१६) मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास (१७) राष्ट्रोड़ वंश (१८) मेवाड़ के महाराणाओं का इतिहास (१९) डिंगल कोप (२०) नीवाज ठिकाने का इतिहास (२१) संखवास ठिकाने का इतिहास, (२२) आसोप ठिकाने का इतिहास (२३) पोंहकरण ठिकाने का इतिहास (२४) जसवन्त भूषण (२५) आबू और मारवाड़ के परमार (२६) सत्यनारायण कथा का अनुवाद (२७) मारवाड़ का बृहद् सविस्तर इतिहास (२८) हिस्ट्री ऑफ राठोर्स (अंग्रेजी भाषा में) (२९) अनुभव प्रकाश (३०) वंश भास्कर (३१) जसवन्त जसो भूषण (३२) जसवन्त जसो भूषण (संस्कृत वाणी में) (३३) जसवन्त भूषण (३४) अभूत रस संग्रह (३५) नेणसी की ख्यात (३६) कवि कल्पलता (३७) सूरज प्रकाश (एक अंक) (३८) राजरूपक (३९) बांकीदास ग्रन्थावली (प्रथम भाग) (४०) कर्ण पत्र (स्वामी गणेशपुरीकृत) (४१) लघुस्तव प्रयोग सहित (४२) नाथ चरित्र (४३) मुंडकोपनिषत् ।

उपरोक्त ग्रन्थों में से कुछ अभी तक अप्रकाशित हैं ।

पंडित जी हिन्दी भाषा के बहुत पुराने लेखक हैं । इनकी भाषा उस भाषा का एक उत्कृष्ट नमूना है जिसे आज कल कुछ लोग विशुद्ध हिन्दी बतलाते हैं । ये बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं सजीव भाषा लिखते हैं जिसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य रहता है । इनके लेखों में व्यर्थ का पिष्टपेष नहीं मिलता; कुछ और कुछ नई बात अवश्य कहते हैं और जो भी कहते

हैं उसे सप्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। इनकी भाषा का नमूना देखिये:—

“डिंगल भाषा अपभ्रंश भाषा का ही स्वरूप है। उसकी जन्मदात्री संस्कृत और प्राकृत भाषा है। मुसलमानों के आगमन से पूर्व प्रायः भारत के समस्त प्रदेशों में संस्कृत और प्राकृत का प्रचार अधिक होने से समस्त साहित्य और धर्म ग्रंथ संस्कृत और प्राकृत में निर्माण किये जाते थे। वैदिक और बौद्ध ग्रंथ बहुधा संस्कृत में लिखे जाते थे, और जैन ग्रंथों की रचना प्रायः प्राकृत में और उनकी टीका, विवृत्ति आदि की रचना संस्कृत में होती थी। परन्तु साहित्य के अंगभूत नाटक ग्रंथों में दोनों भाषाएँ समान रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। इन दोनों भाषाओं के अरिस्तु तीसरी प्राचीन देशी भाषा थी, जो सदा बोल चाल में आती थी। वह भाषा मथुरा आदि के प्राचीन शिलालेखों में देखने में आती है। संस्कृत और प्राकृत के शब्द बिगड़ने और प्राचीन देशी भाषा के शब्द मिश्रित होने से जो भाषा बनी, वही अपभ्रंश भाषा कही जाने लगी। उस अपभ्रंश भाषा का उदाहरण हेमचन्द्राचार्य ने, जो अणहिलवाड़ा के चालुक्य राजा सिद्धराज जयमिहदेव और कुमारपाल के समय में थे, अपने व्याकरण में यह दिया है—

ढोला मइं तुहुँ वारिया, माकुरु दीहा माणु।

निदरा गमिही रत्तड़ी, दड़बड़ होइ विहाणु” ॥*

(६) पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा—ओझा जी का जन्म सिरौही राज्यान्तर्गत रोहेड़ा नामक गाँव में सं० १६२० में हुआ था। ये सहस्र ओदिच्य ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम हीराचंद और दादा का पीताम्बर था। इनके पूर्वज मेवाड़ के रहने वाले थे। किन्तु लगभग ३०० वर्ष से वे सिरौही में जाकर बस गये थे। पंडित जी के पिता एक विद्यानुरागी तथा कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और अपने तीन पुत्रों में इन्हें सबसे होनहार एवं चतुर समझते थे। इसलिए आर्थिक स्थिति के खराब होते हुये भी उन्होंने इन्हें ऊँची शिक्षा दिलाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और हिन्दी, संस्कृत, गणित आदि की जितनी भी शिक्षा इनके गाँव में मिल सकती थी उतनी

प्राप्त कर ली तब इनके बड़े भाई नंदराम के साथ इन्हें बम्बई भेज दिया। अर्थ संकट और नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुये सं० १९४२ में पंडित जी ने मेडिक्युलेशन की परीक्षा पास की और बाद में विल्सन कालेज में भर्ती हुए। पर शारीरिक अस्वस्थता के कारण इंटर मीडियेट की परीक्षा में न बैठ सके और अपने गाँव रोहेड़ा में चले आये।

बंबई में पंडित जी को अपनी मानसिक शक्तियों को विकसित करने का अच्छा अवसर मिला। स्कूल तथा कॉलेज में जो पाठ्य पुस्तकें नियत थीं, उनके सिवा भी इन्होंने ग्रीस तथा रोम के इतिहास और पुरातत्व संबंधी बहुत से ग्रंथों का मनन किया। राजस्थान के इतिहास की ओर इनका भुलाव कर्नल टांड के अमर ग्रंथ 'ऐनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान' के पढ़ने से हुआ। अपना ऐतिहासिक ज्ञान बढ़ाने के लिए इन्होंने राजस्थान में भ्रमण करना निश्चित किया और सबसे पहले उदयपुर आये। जिस समय ये उदयपुर पहुँचे उस समय यहाँ कविराजा श्यामलदासजी की अध्यक्षता में 'वीर विनोद' नामक एक बहुत बड़ा इतिहास ग्रन्थ लिखा जा रहा था। पंडितजी जब कविराजा जी से मिले तब वे इनकी इतिहास विषयक जानकारी एवं धारणा शक्ति से बहुत प्रभावित हुए और इन्हें पहले अपना सहायक मन्त्री तथा बाद में प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। तदनन्तर ये उदयपुर म्यूज़ियम के अध्यक्ष नियुक्त हुए। सं० १९६५ में ये राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर के क्यूरेटर बनाये गए; अजमेर में रह कर इन्होंने इतिहास के शोध का बहुत काम किया जिससे सं० १९७१ में इनको अंग्रेज़ सरकार की ओर से रायबहादुर की और सं० १९८५ में महामहोपाध्याय की उपाधि मिली। सं० १९६५ में जब इनकी लिखी 'प्राचीन लिपि माला' का दूसरा संस्करण निकला तब इनको हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से मंगलाप्रसाद पारितोषक दिया गया। हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के तत्वावधान में मध्य-कालीन भारतीय संस्कृति पर तीन व्याख्यान भी इन्होंने दिये हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं। इसके सिवा हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनको डी० लिट् की उपाधि से और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने साहित्य वाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया है। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इनके सम्मानार्थ आभूत अभिनन्दन ग्रंथ भी निकाला है। ये नागरी प्रचारिणी सभा के संवादक

और साहित्य सम्मेलन के प्रधान भी रह चुके हैं। कोई साल भर हुआ पंडित जी सरकारी नौकरी से रिटायर हुए हैं।

पंडित जी बड़े हँसमुख, मिलनसार, सदाशय तथा शान्त प्रकृति के पुरुष हैं और आडम्बर एवं अभिमान से कोसों दूर रहते हैं। इनका स्वभाव इतना सरल और रहन-सहन इतनी सादी है कि इनके संपर्क में जो जितना आता है उसकी इनके प्रति श्रद्धा उतनी ही बढ़ती जाती है। ये बड़े श्रम-साथी एवं परिश्रमी हैं और इतिहास तथा पुरातत्व सम्बन्धी शोध का कार्य इस वृद्धावस्था में भी उसी उत्साह और लगन के साथ कर रहे हैं जैसा कि युवावस्था में करते थे। पण्डित जी इतिहास के एक भारी विद्वान हैं। इन्हें राजस्थान तथा भारत ही के इतिहास का नहीं, बल्कि संसार के सभी उन्नत देशों के इतिहास का प्रौढ़ ज्ञान है। इनका लिखा 'प्राचीन लिपि माला' नामक ग्रंथ संसार में शोध के लिये एक अलम्य ग्रंथ माना जा चुका है और प्राच्य एवं पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने उसकी एक स्वर से प्रशंसा की है तथा उसके आधार पर इनको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का व्यक्ति बतलाया है।

पंडित जी एक सुखी और समृद्ध गृहस्थ हैं। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की इन पर समान कृपा है। इनके तीन पुत्र हैं, जिनमें से सबसे बड़े पुत्र श्रीयुत रामेश्वर ओझा एम० ए० गवर्नमेण्ट कॉलेज अजमेर में संस्कृत के प्रोफेसर हैं। ये भी इतिहास प्रेमी और हिन्दी के अच्छे लेखक हैं।

ओझाजी को हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पाली आदि बहुत सी भारतीय भाषाओं का असाधारण ज्ञान है और अंग्रेज़ी भी बहुत अच्छी लिखते हैं। परन्तु हिन्दी के प्रति प्रेम विशेष होने से इन्होंने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी ही में लिखे हैं। यह हिन्दी भाषा भाषियों के लिये बड़े गौरव की बात है। इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) मौलिक ग्रंथ—

(१) प्राचीन लिपि माला (२) भारतीय प्राचीन लिपि माला (३) सोलंकियों का इतिहास (४) सिरोही राज्य का इतिहास (५) बाप्पा रावल का सोने का सिक्का (६) वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप (७) मध्य

कालीन भारतीय संस्कृति (८) राजपूताने का इतिहास (चार खंड) (९) उदयपुर राज्य का इतिहास (दो भाग) (१०) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री (११) कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित्र (१२) राजस्थान ऐतिहासिक दन्तकथा (प्रथम भाग) (१३) नागरी अंक और अक्षर ।

(२) संपादित ग्रंथ—

(१) अशोक की धर्म लिपियाँ (२) सुलेमान सौदागर (३) प्राचीन मुद्रा (४) नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १-१२ (५) कोशोत्सव स्मारक संग्रह (६) हिन्दी टॉड राजस्थान (पहला और दूसरा खंड) (७) जयानक प्रणीत पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सटीक (८) जयसोम रचित कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनक काव्यम् (९) मुद्रणोत्त नैणसी की ख्यात (दूसरा भाग) (१०) गद्य रत्न माला (११) पद्य रत्न माला ।

ओभाजी के ग्रंथों का अध्ययन करते समय सबसे पहली बात जो स्पष्ट रूप से सामने आती है वह है इनकी विशुद्ध भाषा । ये बहुत संयत, व्यवहारिक एवं प्रौढ़ भाषा लिखते हैं और सरल तो वह इतनी होती है कि जिस किसी को हिन्दी भाषा का थोड़ा सा भी ज्ञान है वह बहुत सुगमता से उसे समझ लेता है । जहाँ तक हो सकता है पंडित जी शुद्ध संस्कृत शब्दों से ही काम लेते हैं, पर अरबी, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने न्यूनाधिक किया है । लेकिन सिर्फ ऐसे ही शब्दों का जो कई शताब्दियों से हिन्दी में प्रयुक्त होते आ रहे हैं और हिन्दी के माने जा चुके हैं—जैसे मजूर, अज़्र, कैद, खूब, क्रिज़ा, गरीब, फ़तह, खाली इत्यादि । शब्द किसी भी भाषा का हो पंडित जी उसे ठीक तत्सम रूप में प्रयुक्त करने के पक्षपाती हैं । यही बात राजस्थानी भाषा के शब्दों के प्रयोग में भी देखी जाती है । वैसे यदि देखा जाय तो प्रान्तीयता का प्रभाव इनकी भाषा पर बिल्कुल नहीं है । पर जहाँ कहीं प्रांतीय शब्दों का व्यवहार करना पड़ा है, उन्हें इन्होंने ठीक उसी रूप में लिखा है, जिस रूप में वे वास्तव में बोले जाते हैं, जैसे—राठोड़, चित्तोड़, राणा, मेवाड़, रावळ, मीरांवाड़े, खुमाण इत्यादि । राजस्थान के बहुत से तथा राजस्थान के बाहर के प्रायः सभी

हिन्दी लेखक इनके स्थान पर क्रमशः राठौर, चित्तौर, राना, मेवार, रावल, मीरा, खुमान आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो वस्तुतः अशुद्ध हैं। ये शब्द राजस्थान में इस तरह से कभी बोले ही नहीं जाते।

पंडितजी की प्रायः सभी रचनाओं में धारावाहिकता का आनन्द खूब मिलता है। सामान्यतः ये बहुत छोटे २ वाक्य लिखते हैं, और प्रत्येक वाक्य जञ्जोर की कड़ी की तरह एक दूसरे से इस प्रकार जुड़ा हुआ रहता है कि किसी एक को अलग कर देने से विचार शङ्खला नष्ट हो जाती है। पांडित्याभिमान अस्वाभाविकता तथा व्यर्थ का वागाडंबर इनके ग्रंथों में नहीं मिलता। इनकी दृष्टि सदैव तथ्य-निरूपण की ओर रहती है। इसलिये ये ऐसेही शब्दों का प्रयोग करते हैं जो, बहुत सरल तथा प्रसंगानुसार उपयुक्त होते हैं। ऐतिहासिक सत्य को कायम रखते हुए यदि कहीं अवसर मिला तो आलंकारिक भाषा में साहित्यिक छटा भी थोड़ी बहुत दरसा देते हैं। ऐसे स्थलों पर इनके वाक्य कुछ लम्बे अवश्य हो जाते हैं, पर इससे वर्णन में सजीवता आ जाती है और विचार-सामग्री से लदे हुए पाठक के मस्तिष्क को बड़ा सहारा मिलता है, जिससे ग्रंथ को आगे पढ़ने का चाव बराबर बना रहता है। उदाहरण देखिये—

“राजपूत जाति के इतिहास में यह दुर्ग एक अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ असंख्य राजपूत वीरों ने अपने धर्म और देश की रक्षा के लिये अनेक बार असिधारा रूपी तीर्थ में स्नान किया और जहाँ कई राजपूत वीरांगनाओं ने सतीत्व रक्षा के निमित्त धधकती हुई जौहर की अग्नि में कई अवसरों पर अपने प्रिय बाल बच्चों सहित प्रवेश कर जो उच्च आदर्श उपस्थित किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। राजपूतों ही के लिये नहीं, किन्तु प्रत्येक स्वदेश प्रेमी हिन्दू संतान के लिये क्षत्रिय रुधिर से सिंची हुई यहाँ की भूमि के रज कण भी तीर्थरेणु के तुल्य पवित्र है”। *

और भी—

“ऐसे ही चित्तोड़ का महाराणा कुंभा का कीर्ति स्तम्भ एवं जैन स्तम्भ, आबू के नीचे की चन्द्रावती और झालरापाटन के मंदिरों के भग्नावशेष भी

अपने बनाने वालों का अनुपम शिल्पज्ञान, कौशल, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा दृश्यों का पूर्ण परिचय और अपने काम में विचित्रता एवं कोमलता लाने की असाधारण योग्यता प्रगट करते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु ये भव्य प्रासाद परम तपस्वी की भाँति खड़े रह कर सूर्य का तीव्र ताप, पवन का प्रचण्ड बेग और पावस की मूसलधार वृष्टियों को सहते हुए आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये, अटल रूप में ध्यानावस्थित खड़े, दर्शकों को बुद्धि को चकित और थकित कर देते हैं” ।*

(७) पुरोहित हरिनारायण जी, बी० ए०—पुरोहित जी का जन्म जयपुर राज्य के एक उच्च पारोक कुल में सं० १६२१, माघ कृष्ण ४ को हुआ था। इनके पिता का नाम मन्नालाल, पितामह का नानूलाल और प्रपितामह का अभयराम था। ये सभी बड़े परोपकारी, स्वाभिमत तथा धर्मात्मा पुरुष हुए हैं। इनके बनवाये हुए कई मन्दिर आदि आज भी जयपुर में विद्यमान हैं।

पुरोहित जी की शिक्षा का आरंभ पहले पहल घर ही पर हुआ और जब हिन्दी अच्छी तरह से पढ़ना लिखना सीख गये तब उन दिनों की पद्धति के अनुसार इन्हें अमर कोष और सारस्वत का अध्ययन कराया गया। इनकी दादी ने इन्हें गीता, सहस्र नाम, रामस्तवराज इत्यादि का अभ्यास कराया तथा बड़ी बहिन योगिनी मोतीबाई ने धर्म, योगाभ्यास इत्यादि विषयों की ओर प्रवृत्ति कराई। साथ साथ उर्दू-फ़ारसी का अध्ययन भी चलता रहा। बारह वर्ष की आयु में ये महाराजा कॉलेज जयपुर में भर्ती हुए और सं० १९४३ में इंटर्न्स की परीक्षा पास की। पुरोहित जी का विद्यार्थी-जीवन बहुत ही उज्ज्वल रहा। अपनी कक्षा में ये हमेशा प्रथम रहे जिससे राज्य की ओर से इन्हें बराबर छात्रवृत्ति मिलती रही। एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाओं में सर्व प्रथम रहने से इनको दो बार ‘लॉर्ड नॉर्थ युक्त मेडल’ तथा सारे मदरसे में सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी सिद्ध होने से ‘लॉर्ड लेन्सडाउन मेडल’ मिला।

कॉलेज छोड़ने के बाद सं० १९४८ में सब से पहले ये जयपुर में महुँम शुमारी के काम की देख रेख करने के लिये रूम इन्स्पेक्टर नियुक्त हुए। तत्पश्-

चात् इन्होंने राजवकील, नाज़िम, स्पेशल सी० आई० डी० ऑफिसर आदि की हैसियत से कई बड़े बड़े ओहदों पर रहकर लगभग ४० वर्ष तक काम किया और अपनी सच्चाई, ईमानदारी एवं कार्य कुशलता से राजा और प्रजा दोनों को बड़ा लाभ पहुँचाया। लोकोपयोगी कार्य भी इन के द्वारा बहुत से हुए। इन्होंने निज़ामत शेखावाटी तथा तोरावाटी में राज्य की ओर से कई गोशालाएँ, पाठशालाएँ एवं धर्मशालाएँ स्थापित करवाईं और अपनी तरफ से जयपुर के पारीक हाईस्कूल को ७००० रु० से अधिक का दान दिया। सं० १९८९ से इनको पेंशन मिलना शुरू हुआ है।

पंडित जी बड़े विद्याव्यसनी, सुशील एवं सदाचारी पुरुष हैं और विद्यार्थी-जीवन से ही हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर छपे हुए इनके लेखों तथा इनके ग्रंथों को पढ़ने का जिन्हें अवसर मिला है वे अच्छी तरह से जानते हैं कि इनकी लेखनी कितनी बलवती, साहित्यिक रुचि कितनी परिष्कृत तथा लेख कितने मुरचि पूर्ण होते हैं। राजस्थान के संत साहित्य को प्रकाश में लाने का जो अखंड उद्योग पुरोहित जी ने किया है, वह इनके नाम को हिन्दी साहित्य में अमर रखेगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पुरोहित जी बड़े कर्मण्य पुरुष हैं। इतिहास, साहित्य, धर्म आदि विषयों की आलोचना और लेखन ही इनकी दिन चर्या है। कहीं किसी उत्कृष्ट ग्रंथ का नाम सुनना चाहिये पंडित जी उसे अवश्य मँगाकर पढ़ेंगे। इनका अधिक समय साहित्याध्ययन में बीतता है और थोड़ा बहुत हमेशा ही लिख लेते हैं। इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों के नाम निम्न हैं। इनमें से कुछ मुद्रित और कुछ अमुद्रित हैं—

(१) विशूचिका निवारण (२) तारागण सूर्य हैं (३) महामति मि० ग्लैडस्टन (४) सतलड़ी (५) सुन्दरसार (६) महाराजा मिर्ज़ा राजा जयसिंह (७) महाराजा मिर्ज़ा राजा मानसिंह (८) ब्रजनिधि ग्रंथावली (९) गुरु गोविंद-सिंह के पुत्रों की धर्मवली (१०) सुन्दर ग्रंथावली (११) मीरा वृहद् पदावली (१२) श्री जगत शिरोमणि जी (१३) जयपुर की वंशावली (१४) महाराजा सवाई जयसिंह जी (१५) होली हज़ारा (१६) बारहमासी संग्रह (१७) बावनी संग्रह (१८) श्री शनिकथा संग्रह (१९) विक्रमादित्य और नवरत्न

(२०) राघवीय भक्तमाल (२१) सुन्दरोदय (२२) सुंदर समुच्चय (२३) बाजीद ग्रंथावली (२४) जन गोपाल ग्रंथावली (२५) माधवानल कामकन्दला (२६) भीषणावनी सटीक (२७) दादूचरित्र संग्रह (२८) जान कवि ग्रंथावली (२९) शिखरिणी संग्रह सटीक (संस्कृत) (३०) भर्तृहरिशतकत्रय सटीक ब्रजनिधि की मंजरियों सहित (३१) गरीबदास ग्रंथावली (३२) ठाकुर शिवसिंह जी इत्यादि ।

भाषा के विषय में पुरोहित जी बड़े उदार विचारों के लेखक हैं । अपने विचारों को ठीक तरह से व्यक्त करने के लिये जो शब्द इनको उपयुक्त प्रतीत होता है उसका निःशंक होकर प्रयोग करते हैं, शब्द चाहे हिन्दी का हो, चारे अर्बी-फारसी का और चाहे राजस्थानी का । फिर भी संस्कृत शब्दों की ओर इनका झुकाव विशेष रहता है, यह कहना अयथार्थ न होगा । इनकी भाषा बहुत आलंकारिक, वर्णन शैली सरस तथा विचार-व्यंजना साहित्यिक होती है और बड़ी भावुकता एवं स्पष्टता के साथ अपने विषय का प्रतिपादन करते हैं । देखिये —

“जितने ग्रंथ हमें उपलब्ध हुए हैं उनके अवलोकन से स्पष्ट प्रकट होता है कि समग्र रचना-समूह एक अटल अनन्य भगवद्भक्ति, प्रभुप्रेम और सच्चे गहरे हरिस का तरंगमय समुद्र है । उसमें आद्योपान्त शांतरस का शांत समुद्र (Pacific Ocean) है जिसकी गंभीर, धीमी, अनुद्विग्न, लीला-लोलित तरंग-मालाएँ मनरूपी जहाज को सुमधुर गति से भगवच्चरणारविन्दों में बहाए हुए ले जा रही हैं । कहीं शुद्ध पावन शृंगार रस अकेला ही विहार करता है तो कहीं वीर रस भी, सिद्धान्तियों के निषेध को विलीन करता हुआ शृंगार रस से ऐसा मिलता है, जैसे पीत रंग श्याम रंग से मिलकर— ‘जातन की भाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ’—मनोमुग्धकारी निराला रूप दिखाता और रंजक रंग जमाता है । महाराज नागरीदास का मानो दूसरा और निराला परन्तु कई बातों में मिलता-जुलता सर्वाङ्ग सुन्दर ठाट-चाट है । यद्यपि ये दोनों कवि समकालीन नहीं थे तो भी ऐसे प्रतीत होते हैं मानों अभिन्न हृदय मित्र थे । फिर भक्ति के मैदान में ऐसे रसिकों का इकरंगी होना स्वाभाविक है ।”^१

(८) दीवान बहादुर हरबिलास जी सारड़ा—हरबिलास जी का जन्म वि० सं० १९२४ में अजमेर के एक वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम हरनारायण था जो संस्कृत एवं अंग्रेजी के अच्छे विद्वान थे और गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर में पुस्तकाध्यक्ष का काम करते थे। इन्होंने इन्टरमीडिएट तक की शिक्षा अजमेर में प्राप्त की और बाद में आगरा कॉलेज में भर्ती हुए जहाँ से संवत् १९४५ में कलकत्ता विश्वविद्यालय की बी० ए० की परीक्षा, अंग्रेजी में ऑनर्स लेकर, पास की और संयुक्तप्रान्त के समस्त विद्यार्थियों में प्रथम रहे। इसके एक वर्ष बाद ये गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर में सीनियर अध्यापक नियुक्त हुए जहाँ से सं० १९४६ में इनकी अजमेर मेरवाड़ा के न्याय-विभाग में तबदीली हुई। तदनन्तर इन्होंने अजमेर-मेरवाड़ा के कई बड़े बड़े ओहदों पर काम किया और सं० १९८० में सरकारी नौकरी से रिटायर हुए। ये अजमेर मेरवाड़ा की ओर से तीन बार व्यवस्थापिका परिषद (Legislative Assembly) के मेंबर भी चुने जा चुके हैं। संवत् १९८२ में इन्होंने एसेम्बली के सामने 'सारड़ाबिल' रखा जो चार वर्ष बाद से कानून बनकर काम में आने लगा। इस 'सारड़ाएक्ट' की वजह से हिन्दुस्तान के छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी तरह के लोग इनके नाम से परिचित हैं।

हरबिलास जी एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, गम्भीर विचारक, सच्चे समाज सुधारक तथा सहृदय साहित्यसेवी हैं और भारत सरकार तथा भारतीय जनता दोनों के हितचिन्तक और प्रांति पात्र रहे हैं। इनके राजनैतिक विचार नर्म हैं और इसलिये राजनीति के मामलों में इनकी कार्य-पद्धति और विचार-वृत्ति से कोई सहमत हो या न हो, यह एक दूसरी बात है। पर इनकी स्वदेशहित-पिता, बुद्धिमत्ता और नेकनीयती के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। सारड़ाजी हिन्दू-धर्म, हिन्दू जाति एवं हिन्दू संस्कृति के बड़े प्रशंसक और हिन्दू संगठन के ज़बरदस्त पक्षपाती हैं। राजस्थान के प्राचीन गौरव और वर्तमान वातावरण को तो इन्होंने खूब ही समझा है। महाराज पृथ्वीराज चौहान की लीला भूमि अजमेर से इन्हें ऐसा प्रेम है कि उसे छोड़कर ये नन्दन बन में भी रहना पसंद नहीं करते। दीवान बहादुर भारत तथा भारत के बाहर की कई प्रसिद्ध साहित्यिक, सामाजिक एवं प्राचीन इतिहास का

खोज करने वाली संस्थाओं के मेंबर हैं और रहे हैं। संवत् १९६४ में इनकी आयु के ७० वर्ष पूरे हुए थे। इस अवसर पर गवर्नमेंट कॉलेज के प्रिंसिपल श्रीयुत पी० शेपाद्री ने इनके सम्मानार्थ एक अभिनन्दन ग्रंथ निकाला था, जिसमें भारत के बड़े २ राजा-महाराजाओं तथा अंग्रेज़ कर्मचारियों और देश के नेताओं ने इनके कार्यों की बड़ी सराहना की है।

सारड़ा जी ने राजनैतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में जितनी सफलता से कार्य किया है उतनी ही सफलता इन्हें साहित्य क्षेत्र में भी मिली है। इन्होंने महाराणाकुम्भा, महाराणा सांगा, महाराजा हम्मीर, हिन्दू सुगौरियों-रिटी, अजमेर इत्यादि कई पुस्तकें लिखी हैं। ये सब ग्रंथ अंग्रेज़ी में हैं। पर सारड़ा जी हिन्दी के भी उत्कृष्ट लेखक हैं। इनके लेख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। इन लेखों के विषय बहुधा राजनैतिक और ऐतिहासिक होते हैं। इनके लिखे राणा सांगा का अनुवाद भी छपा है। हरबिलास जी निष्पक्ष इतिहासकार हैं। इनके विषय-विवेचन में गम्भीर चिंतन का प्राधान्य रहता है और विषय के अनुरूप शैली भी प्रौढ़ एवं गुंफित होती है। ये बहुत सरल तथा सजीव भाषा लिखते हैं। इनके लिखने का ढंग भी बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही होता है। इनकी भाषा का नमूना देखिये :—

“परन्तु जो बात ५० वर्ष पहले तक थी, वह आज नहीं है। पुराने जमाने में भारतीय रजवाड़ों की रक्षा इस कारण हुई कि उनके शासक तेजस्वी सिपाही और बहादुर थे। उस वक्त बाहर के हमलो से रियासतों को बचाना पहली ज़रूरत थी। यह रक्षा राजाओं और राजपूतों से मिल जाती थी। इसलिये रियासते बच रहीं। परन्तु अब वह मुख्य कारण ही जाता रहा। शान्ति काल की आवश्यकता ही युद्ध काल से भिन्न रहती है। उस समय अनुशासन और संयम की आवश्यकता थी। अब शान्तिपूर्ण विकास के लिये शिक्षा और स्वतंत्रता ज़रूरी है। इसके अलावा उस जमाने में राजपूताना दूसरे प्रान्तों और देशों से साधारण संस्कृति और बौद्धिक शक्तों में पिछड़ा हुआ नहीं था। अब वह बहुत पिछड़ गया है। अब वह उनको बराबरी नहीं कर सकता और जब तक वह बुद्धि, नैतिकता और उद्योग में उनका समकक्ष

नहीं बन जाय, तब तक उसका शोषण होता ही रहेगा। जब भारतवर्ष में चारों ओर जागृति हो रही है तो राजपूताना भी वहीं नहीं पड़ा रह सकता, जहाँ वह १०० वर्ष पूर्व था।”*

(६) पं० विश्वेश्वरनाथ जो रेउ—रेउ जी के पूर्वज कई शताब्दियों से काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में रहते थे। इस वंश में प्रकाश भट्ट* एक अच्छे विद्वान और गणितज्ञ हो गए हैं। उनके पुत्र का नाम फतेह (फिर) भट्ट था। फतेह भट्ट के पुत्र मिरज़ भट्ट के नाम से प्रसिद्ध हुए। फ़ारसी भाषा के विद्वान होने के कारण ही वे इस नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। उनके पुत्र गोविन्द भट्ट अच्छे बैयाकरण थे। गोविन्द भट्ट के पुत्र शंकर भट्ट वैदिक कर्म-कांड में प्रवीण हुए।

शंकर भट्ट के पाँच पुत्र थे:—वासुदेव, लक्ष्मण, मुकुन्द मुरारि, ऋषभ-देव और महागणेश। इनमें से रेउ जी के पिता पण्डित मुकुन्द मुरारि जी का जन्म वि० सं० १९०६ की माघ सुदी १३ को हुआ था। इन्होंने संस्कृत का अध्ययन कर वैदिक कर्म कांड में अच्छी विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। इसके बाद वि० सं० १९३५ में ये तीर्थ-यात्रार्थ घर से निकल घूमते घामते जोधपुर पहुँचे और यहीं पर बस गये।

वि० सं० १९४७ की आपाढ़ सुदी १५ को जोधपुर में ही पंडित विश्वेश्वर नाथ जी का जन्म हुआ। इनको माता का नाम चाँदरानी जी था और उनका संस्कृत भाषा से प्रेम होने के कारण वे प्रारम्भ से ही अपने पुत्र की रुचि भी उसी तरफ़ फिराने का प्रयत्न करती रहती थीं; इसा से विश्वेश्वर नाथ जी ने घर में ही अपने पिता से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर सं० १९६१ में पञ्जाब यूनिवर्सिटी की प्राज्ञ-परीक्षा पास की और इसके बाद वि० सं० १९६५ में जयपुर कॉलेज से साहित्य की शास्त्री परीक्षा में और वि० सं० १९६६ में साहित्य की आचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इस अन्तिम परीक्षा में सर्व प्रथम रहने के कारण इनको जयपुर कॉलेज की तरफ़ से एक मैडल (पदक) भी मिला था। इस समय तक इन्होंने अंग्रेज़ी का भी अच्छा

* नवज्योति, २० अक्टूबर सन् १९३८, पृ० १७

* काश्मीर में भट्ट शब्द का प्रयोग पण्डित के लिये होता है।

अभ्यास कर लिया था। इसके बाद वि० सं० १९६७ में ये जोधपुर-राज्य के इतिहास कार्यालय में एक लेखक नियुक्त हुए। उस समय एशियाटिक सोसाइटी की प्रार्थना पर जोधपुर दरबार की तरफ से उसके लिये डिगल (मारवाड़ी) भाषा की कविता का संग्रह किया जा रहा था। उस कार्य में अच्छी योग्यता दिखलाने के कारण उक्त सोसाइटी के उप प्रधान महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने अपनी सन् १९१३ ई० की रिपोर्ट में इनकी प्रशंसा की। इसके बाद वि० सं० १९७१ में ये जोधपुर के राजकीय अजायबघर के उपाध्यक्ष बनाए गये। साथ ही करीब डेढ़ वर्ष तक इन्होंने जोधपुर के जसवन्त कॉलेज में संस्कृत-प्रोफेसर का कार्य भी किया। पुरातत्व से प्रेम होने के कारण इन्होंने प्राचीन लिपियों, मुद्राओं, मूर्तियों और कारीगरी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इन्हीं के उद्योग से जोधपुर के अजायबघर में पुरातत्व विभाग खोला गया और साथ ही एक पब्लिक लाइब्रेरी की स्थापना भी हुई। इनके अच्छे कार्य के कारण वि० सं० १९७४ में ये उक्त अजायबघर और लाइब्रेरी के अध्यक्ष (सुपरिण्टेण्डेण्ट) बना दिये गये।

वि० सं० १९८३ में जब जोधपुर में आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट (पुरातत्व का महकमा) खोला गया तब इन्हीं को उसके अध्यक्ष (सुपरिण्टेण्डेण्ट) का पद भी दिया गया। इस समय इनके अधिकार में निम्नलिखित महकमें हैं:—आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, सरदार-म्यूजियम (अजायबघर) इतिहास कार्यालय, पुस्तक प्रकाश (Manuscript Library) चण्ड पञ्चाङ्ग और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी।

हाल ही में भारत सरकार ने इनको तीन वर्ष के लिये 'हिस्टोरिकल रेकार्ड कमिशन' का 'कोरस्पोंडिंग' मेम्बर भी चुना है।

रेउ जी बड़े सरल हृदय, मधुर भाषी एवं परिश्रमी सज्जन हैं। इनकी इतिहास विषयक जानकारी का अनुमान तो इसी बात से हो सकता है कि उस के आधार पर इंडियन ऐटिकेरी के सम्पादक सर रिचर्ड टैंपलबार्ट ने अपनी रिपोर्ट में इनका नाम पचास वर्ष में होने वाले भारतीय इतिहास के चुने हुए विद्वानों में दिया है। इन्होंने एक ग्रन्थ अंग्रेज़ी में और चार ग्रन्थ हिन्दी में लिखे हैं। हिन्दी ग्रन्थों के नाम ये हैं—भारत के प्राचीन राजवंश, राजाभोज,

राष्ट्रकूटों का इतिहास और मारवाड़ का इतिहास । इनमें से भारत के प्राचीन राजवंश पर नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से पुरस्कार भी इन्हें मिला है । उल्लिखित मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने शैव सुधारक नामक वैष्णव ग्रन्थ का सरल भाषानुवाद तथा जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह जी (प्रथम) विरचित वेदांत के पाँच ग्रन्थों का और महाराजा मान सिंह जी के लिखे हुए कृष्ण विलास नामक ग्रन्थ का सम्पादन भी बड़ी योग्यता से किया है । इन्होंने इतिहास सम्बन्धी विषयों पर कुटकर लेख भी बहुत से लिखे हैं ।

परिणत जी बड़ी सरल, मंजी हुई एवं टकसाली भाषा लिखते हैं और कैसा भी शुष्क तथा विवाद ग्रस्त विषय क्यों न हो उसे बड़े ही साहित्यिक, एवं विश्वास-जनक (Convincing) ढंग से पाठकों के समक्ष रखते हैं ।* इन की शैली में सरलता और सुलभात्व है । विचारों को सरस-तर्कयुक्त भाषा में उपस्थित करने में ये बड़े निपुण हैं । इनकी भाषा का नमूना देखिये:—

“अजीतसिंह के अपने पुत्र बखतसिंह द्वारा मारे जाने का तो किसी ने भी विरोध नहीं किया है । परन्तु इस के कारण के विषय में मत-भेद है । टाँड को सूचना देने वालों ने उसे बतलाया था कि अपने बड़े भाई अभयसिंह के इशारे से ही बखतसिंह ने यह कार्य किया था और अभयसिंह उस समय देहली में होने से बादशाह के दबाव में था । इस हत्या के करने वाले के लिये ५६५ गाँवों सहित नागौर का परगना इनाम में रक्खा गया था । कहते हैं कि अभयसिंह की इस पाशविक प्रवृत्ति के उत्तेजित करने में कृतघ्न सैय्यद-भ्राताओं का भी हाथ था; क्योंकि वे फर्रुखसीयर के गद्दी से उतारने के समय अजीतसिंह द्वारा किये गये विरोध का बदला लेना चाहते थे । अब इस विषय में कुछ बातों पर साधारणतया विचार करना आवश्यक है । क्या ऊपर लिखा पारितोषिक बखतसिंह को इस हत्या के लिये उत्तेजित करने को पर्याप्त था ? सम्भव है कि वह अधिक चालाक न हो, परन्तु वह इतना बेवकूफ भी न था कि जो ऐसी बदनामी को, अपने फायदे को छोड़ कर केवल अपने भाई के फायदे के लिये अथवा उस जागीर के लिये, जो कि राजपूतों के आम रिवाज के

अनुसार उसके पिता की प्राकृतिक मृत्यु के बाद भी उसे मिल जाती, अपने सिर लेता ।”*

(१०) पंडित सूर्यकरण जी पारीक एम० ए०—सूर्यकरणजी का जन्म सं० १९६० में बीकानेर के एक पारीक कुल में हुआ था । इनके पिता का नाम उदयलाल था, जो बीकानेर के प्रमुख साहित्य सेवी और सामाजिक कार्यकर्त्ता थे । पारीकजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों में एम० ए० पास किया था । ये बिड़ला कॉलेज पिलाणी के वाइस प्रिंसिपल तथा हिन्दी और अंग्रेज़ी के प्रोफेसर थे । इन्हीं के प्रयत्नों से पिलाणी में राजस्थानी ग्रन्थमाला का संस्थापन हुआ था । दुख है कि गत १६ फरवरी, सन् १९३६ को इनका देहान्त हो गया । अपने पीछे पारीकजी एक वृद्ध माता, पत्नी, दो भाई और चार छोटे २ बच्चे छोड़ गये हैं, जो उनकी याद में आठ आठ आसू रो रहे हैं । पर पारीकजी की मृत्युपर शोक मानने वाले की संख्या इतनी ही नहीं है । राजस्थान का प्रत्येक सहृदय व्यक्ति जिसे उनके ग्रन्थों के अवलोकन का अवसर मिला है उनकी असामयिक मृत्यु से दुःखी है । क्योंकि पारीकजी जैसे प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार का अल्पायु में निधन हो जाना राजस्थान के लिये कोई साधारण शोक की बात नहीं है ।

पारीकजी बड़े उत्साही साहित्यकार, हिन्दी-अंग्रेज़ी के पूर्ण विद्वान तथा उच्चकोटि के समालोचक थे और बड़ी सचाई (Sincerity) के साथ हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की सेवा कर रहे थे । इन्होंने अपना साहित्यिक कार्य कुछ तो अपने मित्रों के साथ और कुछ स्वतंत्र रूप से किया था । इनकी स्वतन्त्र कृतियों के नाम ये हैं—

- (१) बोलावण नाटक
- (२) राजस्थान की बातें
- (३) राजस्थान की कहानियां
- (४) राजविलास (संगदित)
- (५) हिन्दी गद्यमाला संग्रह (सं०)

एक गद्य लेखक की हैसियत से पारीकजी का स्थान राजस्थान में बड़े महत्व का है। इस दृष्टि से वे एक शैलीकार भी कहे जा सकते हैं। पारीकजी बहुत प्रवाहमयी, सुसंस्कृत, सुगठित एवं मधुर भाषा लिखते थे और इस बात को खूब जानते थे कि किसी तथ्य को खाली लिख देना ही साहित्य नहीं है, जब तक कि उसके लिखने के ढङ्ग में कुछ और कुछ विशेषता, कुछ और कुछ अनूठापन न हो। इसलिये जिस बात को भी वे लिखते उसे ऐसे सुन्दर शब्दों में और ऐसी चित्रोपम शैली से लिखते थे कि यदि कोई पाठक उनके द्वारा प्रतिपादित विचारों से सहमत न होता तो भी उनके लेखन-चातुर्य की छाप तो उस पर अवश्य ही बैठ जाती थी। अंग्रेज़ी और हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होने से पारीकजी के हिन्दी गद्य में भी वही ओज और वैसा ही सौष्ठव मिलता है, जो अंग्रेज़ी भाषा के गद्य में पाया जाता है। जो लोग यह कहते हैं कि हिन्दी भाषा में सब प्रकार के भावों को अभिव्यक्त करने की वैसी शक्ति नहीं है, जैसी कि अंग्रेज़ी भाषा में है और इसलिये राष्ट्रभाषा बनने के लिये वह अनुपयुक्त है उन्हें पारीकजी की भाषा को देखकर अपना मत परिवर्तन करना चाहिये। इनकी भाषा का नमूना देखिये:—

“भारतवर्ष में भले दिनों का सूत्रपात्र हो रहा है। चारों ओर से आशा का नव प्रभात झलकने लगा है। इस नवयुग के प्रकाश में हमारे भाग्य-विधायकों का ध्यान सबसे पहले शिक्षा सुधार की ओर जाना स्वाभाविक है। तो क्या हम आशा न करें कि निकट भविष्य में हमारे विद्यालय इस नव-प्रभात की सुवर्णमयी कोमल किरणों के प्रकाश से देदीप्यमान वे सरस्वती के मंदिर बनेंगे, जिनमें प्रवेश करते हुए मातृ-भाषा की मधुर सुसकान हमारा दुलार करेगा, अपनी संस्कृति की द्वार-शिला पर मस्तक टेकते हुए हमारा हृदय श्रद्धा से भरा होगा, और सभ्य आचरण और उच्च विचारों के अन्तः प्रकाश में आत्म-विश्वास, देश-प्रेम, निर्भीकता, परमेश-भक्ति, उदारता, स्वाभिमान और विश्व-मैत्री का संपूर्ण राग हमारे कंठ से ध्वनित होता होगा ? उस दिन जब हम मातृ-मंदिर की घंटी को विनय-सम्पन्न हाथों से छू देंगे, तब उसके झंकार को सारा संसार सम्मान पूर्वक कान लगा कर सुनेगा और माता के चरणों में अर्पित की हुई हमारी अंजलि के

पुष्पों की महक दिगन्त के रसलोभी भ्रमरो को उस ओर श्रद्धा पूर्वक आकृष्ट करेगी ।”

(११) श्रीयुत ठाकुर रामसिंह जी, एम० ए०—बीकानेर के प्रसिद्ध साहित्य सेवी श्रीयुत ठाकुर रामसिंह जी का जन्म सं० १८५६ में हुआ था । ये तैवर राजपूत हैं । ठाकुर साहब बड़े कलाप्रेमी, सहृदय एवं साहित्य-रसिक पुरुष हैं और राजपूत होते हुए भी मदिरा मांस से परहेज़ करते हैं । सरल जीवन तथा शुद्ध व्यवहार के कारण बीकानेर में आज इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है । ये हिन्दू विश्वविद्यालय में अँग्रेज़ी के प्रोफेसर तथा बीकानेर में डाईरेक्टर ऑफ़ रेज्यूकेशन भी रह चुके हैं । इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों के नाम नीचे दिये जाते हैं । इनमें से कणिका, चन्द्र सखी के भजन और सौरभ को छोड़ कर शेष सभी ग्रंथ श्री सूर्यकरण जी पारीक और श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी के साथ मिल कर लिखे गये हैं । इन ग्रंथों के नाम ये हैं:—

(१) कानन कुसुमांजली (२) मेघमाला (३) ज्योत्सना (४) गद्य गीतिका (५) सौरभ (६) कणिका (७) चन्द्र सखी के भजन (८) वेलिक्रिसन रुक्मिणी री (९) ढोला मारू रा दूहा (१०) जटमल ग्रंथावली (११) छंद राउ जैतसी रउ (१२) राजस्थान के लोक गीत ।

ठाकुर साहब हिन्दी पद्य और गद्य दोनों लिखते हैं और बहुत अच्छा लिखते हैं । आपकी भाषा सरस, विचार व्यंजना कवित्वपूर्ण तथा वर्णन-शैली स्वाभाविक होती है । शब्द गुंथन की मधुर ध्वनि द्वारा मन को मुग्ध कर लेने की एक अद्भुत शक्ति जो आप में विद्यमान है वह आप ही की चीज़ है, आप ही की व्यक्तिगत विशेषता है । आपकी भाषा का सौन्दर्य देखिये:—

“उस पार के सघन कुंजों से वंशी-ध्वनि आ रही है, इस पार में दिन और रात्रि के मिले हुए सौन्दर्य में अकेली बैठी हूँ ।

वंशी की आत्मा में मेरा नाम कौन फूँक रहा है ? वह मुझे कौन बुला रहा है ? इस वंशी में तो मेरे विस्मृत-स्वप्नों के स्वर भरे हैं—मैं इन्हें पहचानती हूँ; हाँ, कुहरे से ढँके हुए क्षितिज के हृदय की तरह पहचानती हूँ ।

नदी पर कोई नाव नहीं दिखाई देती । श्वेत बिहग तरंगों को अपने तेज़ पंखों से छू-छूकर आकाश में विलीन हो जाते हैं । लहरों पर चढ़ कर वंशी का अंतिम स्वर मेरी ओर आता है और मैं मतवाली होकर उसके पकड़ने के लिए पानी में कूद पड़ती हूँ ।

आँख खुलते ही मैं अपने आपको उसी कुंज में फूलों की सेज पर सोते पाती हूँ, जहाँ से वंशी-ध्वनि आ रही थी ।

परन्तु, यह क्या ! अब की उस पार के हरे खेतों से वंशी-ध्वनि आ रही है और इस पार में रात्रि और दिन की मिश्रित मुसकान में अकेली बैठी हूँ ।”

(१२) श्री नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०—राजस्थान के अर्वाचीन साहित्यसेवियों में स्वामी जी का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है । इनकी श्रायु इस समय ३५ वर्ष के लगभग है । ये हिन्दी और संस्कृत दोनों में एम० ए० हैं और इस समय डूंगर कॉलेज, बीकानेर में हिन्दी के प्रोफेसर तथा हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हैं । स्वामी जी एक सहृदय साहित्यिक हैं और बड़ी लगन तथा बड़े विवेक के साथ राजस्थान के प्राचीन साहित्य को प्रकाश में लाने का उद्योग कर रहे हैं । बीकानेर में आज कल साहित्य विषयक इतनी चर्चा जो सुन पड़ती है उसका बहुत कुछ श्रेय इनको है । इन्होंने राजस्थानी साहित्य का कार्य अधिकतर अपने मित्र श्रीयुत ठाकुर रामसिंह जी, एम० ए० और पंडित सूर्यकरण जी पारीक, एम० ए० के साथ किया है । पर स्वतंत्ररूप से भी इन्होंने कुछ ग्रन्थ लिखे तथा कुछ का सम्पादन किया है । इनमें से ‘राजस्थान रा दूहा’ नामक ग्रंथ पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की ओर से ‘मानसिंह पुरस्कार’ भी इनको मिल चुका है । इनकी स्वतंत्र रचनाओं के नाम ये हैं :—

- (१) राजस्थान रा दूहा (भाग १-२)
- (२) मीरां मन्दाकिनी
- (३) राजिया रा दूहा
- (४) बीकानेर के वीर
- (५) राजस्थानी कहावते (अ० प्र०)

(६) राजस्थानी भाषा और साहित्य (अ० प्र०)

(७) राजस्थानी कोष (अ० प्र०)

नरोत्तमदास जी हिन्दी भाषा के प्रौढ़ लेखक तथा राजस्थानी भाषा, राजस्थानी साहित्य एवं राजस्थानी संस्कृति के अनन्य उपासक हैं। ये बहुत सरल, मधुर एवं सादी भाषा लिखते हैं और वह दिन भी बहुत दूर नहीं है जब हिन्दी के प्रथम पंक्ति के लेखकों में ये अपना स्थान सुरक्षित बना लेंगे। नीचे हम इनके गद्य का थोड़ा सा अंश उद्धृत करते हैं जो इनकी लेखन शैली का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है:—

“बात को सन्नेप में और चुभते हुए ढंग से कहने के लिये दूहा बहुत ही उपयुक्त छन्द है। इसी कारण कबीर आदि सन्त-महात्माओं ने अपनी साखियाँ इसी छन्द में कहीं। रहीम और वृन्द जैसे नीति-कवियों ने भी इसी को पसंद किया और बिहारी, मतिराम, रसनिधि आदि ने अपनी अपूर्व रस धारा भी इसी में प्रवाहित की। इन लोगों को जो सफलता तथा लोक प्रियता प्राप्त हुई उसके विषय में कुछ कहना आवश्यक है। राजस्थानी का अधिकांश लौकिक साहित्य इसी छन्द में निर्मित हुआ है। प्राचीन काल से सैकड़ों दूहे लोगों की ज्ञान पर चलते आये हैं, जिनका बात बात में कहावतों की भाँति प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी जनता का सर्वप्रिय माँड राग का माधुर्य और आकर्षण भी उसके दोहों पर निर्भर है। प्राचीन लौकिक-वीरों (Popular Folk Heroes) की कीर्ति इन्हीं छोटे छोटे दूहों की बरौलत नाम-शेष हो जाने से बच गई है। आज भी प्राचीन ढंग के राजस्थानी कहानी कहने वाले लोग कहानियों के बीच बीच में भाव पूर्ण स्थलों पर दूहों का प्रयोग करके श्रोता लोगों को मुग्न करते हैं।”*

(१३) श्री जनार्दनराय नागर—इनका जन्म सं० १९६८ में अपने नाना फूलशकर जी के घर उदयपुर में हुआ था। इस समय इनकी अवस्था २७ वर्ष की है। ये नागर ब्राह्मण हैं। इनके पिता श्री प्राणलाल जी लीमड़ी (काठियावाड़) से आकर उदयपुर में बने हैं। नागर जी की प्रारम्भिक शिक्षा उदयपुर ही में हुई। इन्होंने सं० १९८६ में इटैन्स की सं० १९६०

* राजस्थान रा दूहा, भाग पहला, पृ० ५४ (भूमिका)

में इण्टरमीडिएट की और सं १९६२ में बी० ए० की परीक्षा पास की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा भी इन्होंने पास की है। इस समय ये विद्या भवन, उदयपुर में हिन्दी के अध्यापक और हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हैं।

नागर जी प्रगतिशील-विचारों के उत्साही युवक हैं और बड़े निःस्वार्थ भाव से मेवाड़ में हिन्दी-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। इनकी रहन-सहन सादी और प्रकृति बहुत सरल है। खादी पहनते हैं और सार्वजनिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी से भाग लेते हैं। सुलेखक हैं। अच्छे व्याख्यानदाता हैं। हिंदी की प्रायः सभी सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ, लेख, गद्य काव्य आदि प्रकाशित होते रहते हैं। पहले पहल जब इनकी कहानियाँ पत्रों में छपी थीं तब प्रेमचंद जी उन्हें पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने इनकी कहानियों की बहुत बढ़ाई की है। इनकी कुछ कहानियों का अनुवाद गुजराती भाषा में भी हुआ है। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं:—

(१) ध्रुवतारा (उपन्यास) (२) तिरंगा झंडा (उपन्यास)
(३) आधीरात (नाटक) (४) पतित का स्वर्ग (नाटक) (५) जीवन का सत्य (नाटक) (६) विप का प्याला (नाटक)।

भाषा की स्वच्छता की अपेक्षा अनुभूति की मात्रा इनमें विशेष पाई जाती है। इनके घर की बोली गुजराती है जिसका रंग इनकी साहित्यिक रचनाओं पर भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने कहीं २ राजस्थानी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी किया है। सफल उपन्यास लिखने के लिये दो गुण बहुत आवश्यक होते हैं—गाम्भीर्य और सत्यता। (High seriousness and truth) ये दोनों गुण इनमें विद्यमान हैं और इस दृष्टि से ये एक सफल उपन्यासकार कहे जा सकते हैं। इनके नाटक भी अच्छे हैं। पर वे अभिनय के लिये अनुपयुक्त हैं। इसके मुख्य कारण दो हैं। एक तो यह कि उनमें पात्रों की सख्या, कथा-वस्तु के महत्व को देखते हुए, बहुत अधिक है। दूसरे अतिशय भावात्मकता के कारण कथोपकथन कहीं २ बहुत अस्पष्ट हो गये हैं। कहानियों के लिखने में इन्हें बहुत सफलता मिली है। इनकी 'जीवन और मृत्यु', 'अमृत और विप', 'कविता में दोष' आदि कहा-

निर्या, हिन्दी साहित्य को इनकी अपूर्व देन है। पहले इनकी कहानियों में जीवन की बौद्धिक तथा मनोवैज्ञानिक व्याख्या का प्राधान्य रहता था। अब इन्होंने देश की सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को अपनी कहानियों का मूलाधार बना लिया है। आगे हम इनके 'आधी रात' नामक नाटक में से थोड़ा सा अंश उद्धृत करते हैं। इससे इनकी भाषा-शैली पर अच्छा प्रकाश पड़ता है :—

“काँधल—संध्या हो रही है, मैं भी चलूँ। इसके साथ इसका पाप है; मैं क्या करूँ ? पर मैं जाऊँगा कहाँ ? एक महाराणा यह मूर्छित पड़ा, एक का शव इन आँखों से देखा और दूसरा यह अभी गया ! राजाओं का यह चक्र चलता ही रहता है। मैं क्या करूँ, यह सोच रहा हूँ। भगवान रुद्र ! यह काँधल कहाँ जाये ? प्रजा का राज तो आज स्वप्न है। और उसके बिना जैसे मैं अब जीना नहीं चाहता ! यह मृत्यु का वैभव, अत्याचार और पद् पात पर स्थित शासन मुझे नहीं चाहिये। कुंभा, तुम्हारे संदेश का सत्य इस शान्त सुनसान रण भूमि पर सजीव हो रहा है ! मैं अज्ञात वाम लूँगा (प्रस्थान)।”*

ऊपर राजस्थान के प्रमुख २ गद्य लेखकों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इनके निवा थोड़े से और हैं जिनके ग्रंथों तथा लेखों का भी विद्वत्-समाज में बड़ा सम्मान है। शोक है कि इन मनस्वी लेखकों में से कुछ अब नहीं रहे। उनकी कीर्ति मात्र रह गई है। चारण रामनाथ रत्नू, सीकर निवासी तेजमल जी के पुत्र थे। इन्होंने 'इतिहास राजस्थान' नामक एक छोटा सा ग्रंथ लिखा जिसमें करौली, धोलपुर और टोंक को छोड़ कर राजस्थान के १४ राज्यों का संक्षिप्त इतिहास वर्णित है। समर्थदान, अजमेर से निकलने वाले 'राजस्थान समाचार' नाम के साप्ताहिक पत्र के संपादक थे। ये बड़े निष्पक्ष समीक्षक, साहित्य-प्रेमी तथा अच्छे गद्य लेखक थे। शिवचन्द्र भरतिया (सं० १९१०-७२) आधुनिक राजस्थानी के हरिश्चन्द्र माने जाते हैं। ये राजस्थान निवासी नहीं थे, हैदराबाद के रहने वाले थे। पर इन्होंने राजस्थानी भाषा में भी दो-चार ग्रंथ लिखे हैं जिनमें से केसर विलास, फाटका जंजाल,

बुढ़ापा की सगाई आदि इनके नाटक बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं। इन नाटकों में हिन्दू-समाज की, विशेषतः मारवाड़ी समाज की कुरीतियों के चित्र अंकित किये गए हैं और अभिनय के लिए भी उपयुक्त हैं। किशोरसिंह जी बारहट का स्वर्गवास हाल ही में हुआ है। ये सुयोग्य लेखक और इतिहासवेत्ता थे। इनकी अंतिम रचना 'करणी चरित्र' है जो राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता की ओर से छपी है।

श्री नाथू लाल जी व्यास, पं० गोरीशंकरजी ओझा के सहकारी हैं। ये अच्छे इतिहासज्ञ और हिन्दी के प्रौढ़ लेखक हैं। इनके इतिहास विषयक लेख बड़े रोचक और भोजपूर्ण होते हैं। श्रीयुत ठाकुर चतुरसिंह जी (रूपाहेली) इतिहास के अच्छे मर्मज्ञ हैं। इनका लिखा 'चतुर कुल चरित्र इतिहास' नामक ग्रंथ एक महत्वपूर्ण रचना है। श्री जगदीश सिंह जी गहलोत जोधपुर के रहने वाले हैं। कविराजा श्यामलदास जी, ओझा जी, रेउ जी आदि के ग्रंथों के आधार पर इन्होंने हात ही में 'राजपूताने का इतिहास' नामक एक बड़ा ग्रंथ निकाला है। इनकी भापा अमार्जित और शैली निर्जीव होती है। इन्होंने दो-एक संग्रह-ग्रंथ भी निकाले हैं। श्री ऋषिदत्त महता बूंदी के रहने वाले नागर ब्राह्मण हैं। अजमेर के 'राजस्थान' और 'रियासती' नामक दो साप्ताहिक पत्रों के संग्रहक हैं। बड़े त्यागी हैं। राजनैतिक विषयों पर इनके लेख बड़े मार्मिक होते हैं। श्री रामनारायण चौधरी अजमेर से निकलने वाले प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'नव-ज्योति' के सम्पादक हैं। इनकी जन्मभूमि जयपुर है। रियासती जनता के बड़े हित चिन्तक हैं और कई वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नाम से सभी परिचित हैं। राजस्थान के प्रमुख राजनैतिक नेता हैं। बहुत उच्च कोटि के लेखक, ऊँचे विचारक और प्रतिष्ठित संग्रहक हैं। श्री रामेश्वर ओझा एम० ए०, पं० गोरीशंकर जी के सुयोग्य पुत्र हैं। हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में समय २ पर निकले हुए इनके लेखों से इनके ठोस ऐतिहासिक ज्ञान और परिमार्जित भाषा-शैली का परिचय मिलता है। श्रीयुत ठाकुर जुगलसिंह, एम० ए०, हिन्दी-अंग्रेज़ी के प्रौढ़ विद्वान हैं। हिन्दा के अतिरिक्त राजस्थान में भी लिखते हैं। काव्य-रचना में भी सिद्ध-

हस्त हैं। पं० मुरलीधर जी व्यास, हिन्दी के एक सफल लेखक हैं। ये राजस्थानी परिपद, बीकानेर के मंत्री और बड़े उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। ये कदा नियाँ भी अच्छी लिखते हैं। श्री पुरुषोत्तम दास स्वामी M. Sc. (बीकानेर) वैज्ञानिक विषयों पर प्रायः लिखा करते हैं। आजकल ये जन साधारण के लिये 'रसायन शास्त्र' नामक ग्रंथ का प्रणयन कर रहे हैं। श्री दशरथ शर्मा एम० ए० (बीकानेर) इतिहास और संस्कृत दोनों में एम० ए० हैं। हिन्दी प्रेमी और हिन्दी के लेखक हैं। श्री अगर चन्द-भैरवलाल नाहटा, जैन साहित्य को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयत्न कर रहे हैं। इनके लेख जैन पत्रों में बहुधा प्रकाशित होते रहते हैं। इन्होंने दो ग्रंथ भी लिखे हैं—'युग प्रधान जिन चंद्र सूरि' और 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह'। श्री गजराज ओझा (बीकानेर) की डिंगल भाषा में अच्छी पहुँच है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका में निकला हुआ 'डिंगल' शीर्षक इनका एक लेख बहुत मौलिक और महत्वपूर्ण माना जाता है। हिन्दी के उदीयमान लेखक हैं। श्री रघुनाथ प्रसाद सिंघानिया, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता के प्रधान मंत्री हैं। राजस्थानी साहित्य को प्रकाश में लाने का उत्कट उद्योग कर रहे हैं। इन्होंने 'मारवाड़ी भजन सागर' नामक एक ग्रंथ का संपादन भी किया है। श्रीयुत ठाकुर भगवतीप्रसाद सिंह, 'राजस्थान' (कलकत्ता) नामक त्रैमासिक पत्र के सहकारी सम्पादक रह चुके हैं। इनसे हिन्दी को लाभ पहुँचने की पूरी आशा है।

उन नवीन लेखकों से, जिन्होंने अभी-अभी साहित्य-क्षेत्र में कदम रखा है इस 'रूप-रेखा' का सम्बन्ध नहीं है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

(कुछ फुटकर कवि)

(१)

बाबहियौ ने बिरहिणी, दुहुँवा एक सहाव ।
जन्म हो बरसै घण घणौ, तबही कहै पि-आव ॥
विजुलियाँ नीलजिषाँ, जलहरि तू ही लज्जि ।
सूँनी सेज विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥
भरइ पलटइ भी भरइ, भी भरि भो पलटेहि ।
ढाढी हाथ संदेशदा, घण विललती देहि ॥

—ढोला मारू रा दूहा (सं० १०००)

(२)

टोली सूँ टलियाँह, हिरयाँ मन माठा हुवै ।
बालम वीछड़ियाँह, जीवै किण विध जेठवा ॥
जिण बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी ।
विलखतड़ी बीहाय, जोगण करगो जेठवा ॥

—ऊजली (सं० ११००)

(१) ढोला मारू रा दूहा—यह राजस्थान का एक बहुत प्राचीन प्रेमगाथा-त्मक काव्य है। इसके रचयिता का वृत्त ज्ञात नहीं है। इसमें नरवर के राजकुमार ढोला और पूगल की राजकुमारी मारवणी की प्रेम-कथा का वर्णन है।

(२) ऊजली—यह चारण जाति की स्त्री थी, जो पोरबन्दर के जेठवा जाति के मेधा नामक राजा पर आसक्त हो गई थी। अपने प्रेम-पात्र मेधा को संबोधित कर ऊजली ने थोड़े से दोहे कहे हैं। दोहे संख्या में बहुत थोड़े हैं पर जितने भी हैं वे काव्य प्रेमियों के मर्म को स्पर्श करने वाले हैं।

(३)

ढोला मारिय ठिल्लि महुँ, मुच्छिउ मेच्छ-सरीर ।
 पुर जजलला मंतिवर, चलिअ बीर हम्मीर ॥
 चलिअ बीर हम्मीर, पाअभर मेइणि कंणइ ।
 दिगमग यह अंधार, धूलि सुररह आच्छाइहि ॥
 दिगमग यह अंधार, आण खुरसाणुक उल्ला ।
 दरमरि दमसि विपक्ख, मारु ठिल्ली महुँ ढोला ॥
 —सारंगधर, रणथंभोर (सं० १३५०)

(४)

पिंधउ दिद संणाह बाह उपपइ पक्खर दइ ।
 बंधु समदि रण धसउ साहि हम्मीर बअण लइ ॥
 उहुउणह पइ भयउ खग्ग रिपु सीसहि भल्लउ ।
 पक्खर पक्खर ठिल्लि पिंलि पक्वअ अफालउ ॥
 हम्मीर कजु जजल भणई कोहाणल मह मइ जलउ ।
 सुलितान सीस करबाज दइ तज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥
 —जजल, रणथंभोर (सं० १३५०)

(३) सारंगधर—ये रणथंभोर के चौहान राजा हम्मीर के आश्रित थे । इनके पिता का नाम दामोदर था । ये तीन भाई थे—सारंगधर, लक्ष्मीधर, और कृष्ण । कहा जाता है कि इन्होंने सारंगधर पद्वति, हम्मीर काव्य और हम्मीर रासो नामक तीन ग्रन्थ बनाये थे ।

(४) जजल—ये रणथंभोर के चौहान राजा हम्मीर के सेनापति थे और वीर होने के साथ २ काव्य रचना में भी निपुण थे ।

(५)

साँफले बिनै मांझी सधीर, वीरंमपाल देपाल वीर ।
धजवड़ां मुहे ऊड़ंत धूप, भड़ भड़े जुड़े भूप से भूप ॥
आरि मारि ऊरवारै अख्यात, वीरंम पड़े भड़ बीस सात ।
बाहरू वीर ग्रभवास वारि, मुरब्बी मिधेन देवाल मारि ॥
—ढाढी बादर, मारवाड़ (सं० १४४०)

(६)

रउइ सइ आसमुइ साहसिक सूरइ ।
कठोर थोर घोर छोर पारसिक पूरइ ॥
अहंग गाह अंग गाहि गालि बाल किजइ ।
विछोहि जोइ तेह नेहि मेच्छ लोडि लिजइ ॥
—श्रीधर (सं० १४५४)

(७)

धिन उमादे साँखली, तै पिय लियौ मुलाय ।
सात बरस रो बीछुड्यो, तो किम रैण बिहाय ॥
किरती माथे ढल गई, हिरणी लूँवा खाय ।
हार सटे पिय आणियो, हँसे न सामो थाय ॥
—भीमा, बीकानेर (सं० १४७०)

(५) ढाढी बादर—ये मारवाड़ के राव वीरम जी के आश्रित थे । इन्होंने वीरमायण नामक एक ग्रंथ लिखा जिसमें वीरम जी के शौर्य पराक्रम का वर्णन है । पं० रामकृष्ण आसोपा ने अपने ग्रंथ 'मारवाड़ का मूल इतिहास' में वीरमायण के रचयिता का नाम रामचंद्र बतलाया है ।

(६) श्रीधर—इन्होंने 'रणमल्ल छंद' नामक एक ग्रंथ बनाया था । इसमें ईंडर के राठोड़ राजा रणमल की वीरता का वर्णन है ।

(७) भीमा—यह बीकानेर की रहने वाली चारण जाति की कवयित्री थी । इसके थोड़े से दोहे उपलब्ध हुये हैं । ये दोहे आज से लगभग ५५० वर्ष पहले के लिखे हुए हैं और इसलिये भाषा विज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं ।

(८)

वध वाणी ब्रह्माणी कोमारी सरसत्ति ।
 कीरत रिणमल नूँ करूँ, देवी देहि समत्ति ॥
 पौर दिखावे प्राण, गढ़ भेलै भेलै गिरै ।
 सोमहियौ सुरताण, गुहिलोता चडियो गलै ॥

—गाड़ण पसाइत, मारवाड़ (सं० १४६०)

(९)

जद धर पर जोवती दंठ नागोर धरंती ।
 गायत्री संग्रहण देख मन मांझि डरंती ॥
 सुर कोटी तेतीस आण नीरन्ता चारो ।
 नहिं चरंत पीवंत मनह करती हंकारो ॥
 कुंभेण राण हणिया कलम आजस उर डर उतरिय ।
 तिण दीह द्वार शंकर तणै कामधेनु तंडव करिय ॥

—बारू जी बोगसा, मेवाड़ (सं० १५२०)

(१०)

संग्रामि भिड़इ हीँदू सखेध, बाजइ गुरज्ज थिड़ बाणबेध ।
 पिड़ि भोमि निहट्टइ खेड़पत्ति, धड़ पड़इ हेक धूमइ धरत्ति ॥
 बिरदइतु जइतु रण वट्ट बंधि, सत्रु घाइ निजोड़इ गडासंधि ।
 उँच दइ असुर-हरि धार ईम, भारथि पईठउ जाणभीम ॥

—छन्द राउ जइतसो रउ (सं० १५६२)

(८) पसाइत—ये गाड़ण शाखा के चारण मंडोवर के राव रणमल के समकालीनी थे । रणमल की प्रशंसा में लिखी हुई इनकी बहुत सी कविताएँ मिली हैं ।

(९) बारू जी—ये बोगसा खोंप के चारण मेवाड़ के महाराणा कुँभा के आश्रित थे ।

(१०) छन्द राउ जइतसो रउ—रसके रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है । इसमें बीकानेर के राव जैतसो और बावर के पुर कानहन के युद्ध का वर्णन है । बीर रस का बड़ा अच्छा काव्य है ।

(११)

आवत लाल गोबर्द्धन धारी;

आलस नैन सरस रस रंगित प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी
 बिलुलित माल मरगजी उर पर सुरति समर की लगी पराग;
 चूँ बत स्याम अधर रस गावत सुरति चाव सुख भैरव राग
 पलटि परे पट नील सखी के रस में भीलत मदन तड़ाग;
 छुन्दावन बीथिन अवलोकत कृष्णदास लोचन बड़ भाग ।

—कृष्णदास पय अहारी, गलता (सं० १६००)

(१२)

बूझे पतसाह पता दे कूँची, धरा पलटो न कीजै धोड़ ।
 गढ़ रो धणी कहे गढ़ माहरो, चुं डाहरो न दिये चितोड़ ॥१॥
 गेळ्या नाळ चन्न कोट गाजे घणी, हिन्दु तुरक आवटे घणा
 जग्गा सुत न दीये जीयंतो, तीजा लोचन पृथी तणा ॥२॥
 झटकां झडां ओझडां झाडे, अटकां अझां रोकै यमराह
 ऊभे पते चढ्यो नहिं अकबर, पड़िये पते चढ्यो पतसाह ॥३॥
 पतसाहो साल राण घर आड़ो, मुगलां मारण कियो मतो
 उदियासिह राणो हम आखे, धरा पलटो धणी पतो ॥४॥

—महाराणा उदयसिंह, मेवाड़ (सं० १५१४-१६२८)

(११) कृष्णदास पय अहारी—ये गलता (जयपुर) के रहने वाले प्रसिद्ध भक्त कवि अग्रदास के गुरु थे ।

(१२) महाराणा उदयसिंह—ये मेवाड़ के महाराणा थे । महाराणा सांगा इनके पिता और प्रताप इनके पुत्र थे । इस गीत में इन्होंने सीसोदिया पत्ता की वीरता का वर्णन किया है, जो चितोड़ के तीसरे शाके के वक्त अकबर की सेना के विरुद्ध लड़ता हुआ काम आया था ।

(१३)

प्रभू भजंतां प्राणियाँ, कीजै ढील न काय ।
 भर बत्थौ अथ काढ़जै, मन्दिर जलतै माँय ॥
 जीह भणै भण जीह भण, कंठ भणै भण कंठ ।
 मो मन लागौ मह-महण, हीर पटोलै गंठ ॥
 हरिरस हररस हेक है, अनरस अनरस मान ।
 बिन हररस हर-भगति बिन, जन्म ब्रथा नर जान ॥

—ईश्वरदास, मारवाड़ (जन्म सं० १५१५)

(१४)

प्रीतम प्राण आधारउ, मनमोहन भरतार ।
 माधव बंचिअ प्रेम भरि, संदेशा सुविचार ॥
 कंता मड़ुँ बाहरी, नयण गमाया रोय ।
 हाथेली छाला पड़्या, चोर निचोय निचोय ॥
 हूँ कुमलाणी कंत विण, जिम जल बिहुणी वेलि ।
 विणजाग की धाह जिम, गयू धरवंती मेलि ॥

—वाचक कुशलला, जैसलमेर (सं० १६१६)

(१३) ईश्वरदास—ये मारवाड़ राज्यान्तर्गत भाद्रसे नामक ग्राम में पैदा हुए थे । जाति के चारण थे । इनके पिता का नाम सृजा था । इनके काव्य में शान्तरस की प्रधानता है । इनके लिखे इतने ग्रन्थों का पता है—हरिरस, छोटा हरिरस, बाललीला, गुण भगवंत हंस, बैराट, गरुड़ पुराण, गुण आगम, निन्दास्तुति, रास कैलास, देवियाँण सभापर्व और फुटकर डिंगल गीत, पद आदि ।

(१४) कुशललाल—ये जैसलमेर के रहनेवाले जैन यति थे । जैसलमेर के रावल मालदेव के कुँवर हरिराज के विनोदार्थ इन्होंने 'माधव कामकन्दला चरित्र' नाम का शृङ्गार रस का एक काव्य बनाया था ।

(१५)

खीर नीर निरनै करै, पर उपगारी संत ।
कहि जगजीवण साखि धर, पारब्रह्म को अंत ॥
ये सब सम्पत्त जायगी, विपत्ति पड़ेगी आय ।
जगजीवण सोई भली, जै कोई खरचै खाय ॥

—जगजीवण जी, जयपुर (सं० १६२०)

(१६)

सोसा में इक भूसर सेवग ता सुत सुन्दर नाम कहाई ।
ता जननी सुत आई गुरु ढिंग पाद-सरोजहि देखि लुभाई ॥
सुन्दर के सिर हाथ धर्यो गुरु कानहि में निज मंत्र सुनाई ।
बालपने उपदेश दियो गुरु मात पिता घर तात रहवाई ॥

—माधवदास, मारवाड़ (सं० १६६१)

(१७)

पहलो था सो अब नहीं, अब सौ पछै न थाइ ।
हरि भजि बिलम न कीजिये, 'बखना' बारौ जाइ ॥
'बखना' बाणी सो भली, जा बाणी में राम ।
बकणा सुणना बोलणा, राम बिना बेकाम ॥

—बखनाजी, जयपुर (सं० १६४०-७०)

(१५) जगजीवण जी—ये संत दादू दयाल के शिष्य थे । जाति के ब्राह्मण थे । पहले वैष्णव थे । बाद में दादू पंथ को स्वीकार कर लिया था । अच्छे विद्वान और कवि थे ।

(१६) माधवदास—ये मारवाड़ राज्यान्तर्गत गूलर नामक गाँव के रहने वाले थे । ये दादू जी के शिष्य थे । इनके 'संतगुण सागर सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ का पता है ।

(१७) बखना जी—ये जयपुर राज्य के नरायणा नामक कस्बे के रहनेवाले थे । दादू जी के शिष्य थे । सं० १६२० और १६४० के बीच किसी समय इनका दादू जी से साक्षात्कार हुआ था । इनकी जाति के संबंध में मत-भेद है । कोई इन्हें लखारा, कोई कलाल और कोई मैरासी बतलाते हैं । इनकी 'वाणी' प्रकाशित हो चुकी है ।

(१८)

मणियाँ सहस इकीस लै, पटसत माला पोइ ।
जगन्नाथ मन सुरति सों, रात दिवस भजि सोइ ॥
मन की मेरे कल्पना, तन निश्चल जगनाथ ।
सुमिरन सों स्वासा रहे, चंचल रसन न हाथ ॥
—जगन्नाथदास, जयपुर (सं० १६६०)

(१९)

पद्मावति मुख-चंद, पद्म-सुर-वास जु आवै ।
भमर भमैं चहुँ फेर, देख सुर असुर लुभावै ॥
आँगुल इकसठ आठ, ऊँच सो सुन्दर नौरी ।
पहिलेइ सत्ताईस, वाहि चित लाय सँवारी ॥
मृगनैन वैण कोकिल सरस, केहर-लंकी कामिनी ।
अधर-लाल हीरे-दसण, भौंह-धनुष गजगामिनी ॥
—जटमल (सं० १६८०)

(२०)

रेण छमाही हो रही, आया नाँहीं पीव ।
संत सनेही कारणै, तलफै मेरा जीव ॥
बिरहणि विछड़ी पीव सों, ढूँढत फिरै उदास ।
संतदास इक पीव बिन, निहचल नाँही दाम ॥
—संतदास, जयपुर (मृत्यु सं० १६६६)

(१८) जगन्नाथदास—ये दादू जी के शिष्य और जाति के काथरथ थे । इनके लिखे दो ग्रंथ कहे जाते हैं—‘बाणी’ और ‘गुणगजनामा’ ।

(१९) जटमल—ये नाहर गोत्र के थोसवाल जाति के महाजन थे । इनका लिखा ‘गोरा बादल री बात’ एक छोटा सा ग्रंथ प्रसिद्ध है । इस ग्रंथ में इन्होंने अपने की धर्मसी का पुत्र और सिंजुला नामक गाँव का निवासी बनलाया है । इन्होंने ‘गोरा बादल री बात’ गद्य में भी लिखी थी, ऐसा प्रसिद्ध है । इस विषय की छान-बीन हो रही है ।

(२०) संतदास—ये दादू जी के ५२ प्रधान शिष्यों में से थे । जाति के अग्र-वाल महाजन थे । इनके ‘बाणी’ नामक ग्रंथ के छंदों की संख्या १२००० के लगभग बताई जाती है ।

(२१)

सतगुर सुन्दरदास जगत में पर उपगारी ।
 धन्नि धन्नि अवतार धन्नि सब कला तुम्हारी ॥
 सदा येक रस रहै दुखल द्वन्द्वर को नाँहीं ।
 उत्तम गुन सो आहि सकल दीसे तन माँहीं ॥
 सांखि जोग अरु भक्ति पुनि सबद ब्रह्म संजुक्ति है ।
 कहि बालकराम बबेक निधि देखे जीवन मुक्ति है ॥
 —बालकराम, फतहपुर (सं० १७००)

(२२)

सुखपालां ऊपरै, चलै नर बैठा कंधे ।
 रंग पदमणी संग रमै, मेहलां सेभां मद्धे ॥
 चीर हीर चामीर, अंग परमळ ओपावै ।
 रस तंबोल कपूर, अन्न मन वंछत खावै ॥
 कुंजरां चढ़ै मोजां करै, अस कोतल चाले अगा ।
 भोगवै इसा नर सुख भुवण, जियां रांम तूठौ जगा ॥
 —जगा जी (सं० १७१५)

(२३)

संगति सुरक्षै प्राणी सब, चार वरण कुल सब ।
 हरि सुमिरण हित सूं करै, कारज होवै तब ॥
 कोटि कोटि कित कीजिये, जो कीजे सतसंग ।
 सत संगत सुमरण बिना, चढ़ै न जिय के रंग ॥
 —दामोदर दास, जयपुर (सं० १७१७)

(२१) बालकराम—ये ऊपर लिखित संतदास जी के शिष्य थे ।

(२२) जगा जी—ये विडिया शाखा के चारण थे । इन्होंने 'एतन महेश-
 दासोतरी बचनिका' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी ।

(२३) दामोदरदास—ये दादू दयाल के शिष्य जगजीवन जी के
 पाटवी चले थे ।

(२४)

रज्जब के चरणन कूँ छुवे को प्रताप ऐसो, पाप के पहार मानों फाटे हैं पराकि दे ।
 युग युग जीव जमद्वारे बँदिवान हो तो, संकल के संधि साल खूटे हैं खराकि दे ॥
 गौतम की तरुनी के करुनी ज्यों कृपाल भये, साँचे है सराप तूटे तौति ज्यों तराकि दे
 ज्ञान के गर्यंद चढ़ि चलै है मोहन मन, ऊँचे असमान जाय बैठे हैं फराकि दे ॥
 —मोहनदास, जयपुर (सं० १७२०)

(२५)

कारज औ कारन तं बिस्व बिस्तारन है, अखिल की पालक सुजोति चिदानंद की ।
 तूँही गति तूँही मति तूँही सुख संपति है, बिपति विहंडनी औ बलि है अनंद की ॥
 तेरे गुन गाइवै कौं बिधि हूँ समर्थ नाहि, तो कहा गति मेरी रसना मतिमंद की ।
 भक्तन की पत राखी ताके सुनै गीत साखी, पत राखी मेरता के बासी कवि वृन्द की
 —माधोदास, किशनगढ़ (सं० १७४०)

(२६)

ग्यानवन्त गम्भीर सूर सावन्त सुलच्छन ।
 पंच पचीसाँ मेलि भरम गुन इन्द्रिय भच्छन ॥
 दुरजन द्वै दल मोड़ि मोह मद मत्सर माया ।
 खल खबीस सब पीस सीस धरि ईस सजाया ।
 मैंमन्त मता गुर ज्ञान मैं खेम बुद्धि लै अरि हतै ।
 ध्यान अडिग धर धोर धुर जन रज्जब पूरे मतै ॥
 —खेमदास, साँगनेर (सं० १७४०)

(२४) मोहनदास—ये दादू जी के शिष्य रज्जब जी के चेले थे ।

(२५) माधोदास—ये किशनगढ़ के मीर मुंशो थे । वृन्द जी के शिष्य थे ।
 इन्होंने चार-पाँच ग्रंथ बनाये जिनमें से ‘शक्ति भक्ति प्रकाश’ इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है ।

(२६) खेमदास—ये रज्जब जी के शिष्य थे । इनके ग्रंथों के नाम ये हैं—कर्म धर्म सम्बाद, सुख सम्बाद, चितावणी योग संग्रह और साखी ।

(२७)

कछु मुसकत सतराय कछु, कह्यौ कुँवरि सकुचात ।
 बात तिहारी ये कछु, मोहि न समझी जात ॥
 मोहि न समझी जात, कहा भकभोर मचाई ।
 साँझी खेलन बेर, यहै अब नियमी आई ॥
 कहि हैं गोप कुँवारि, गई कब की कित न्यारी ।
 गोह चलन की बेर, अबै क्यों करत अबारी ॥

—छत्र कुँवरि बाई, किशनगढ़ (सं० १७४५)

(२८)

कहा जानौं कैसी यह जरूर पैलियो हुनो, काहु काहु दियो अरु काहु को रहायगो ।
 कोनौ है जतन ताको वल्लभ सुकवि कहैं, सावन्त बहादुर सौं मिलि कै बतायगो ॥
 करै कौन बात ऐसी बन कै बसेया जैसी, फारक भयो है हाथ हाथ लछुवायगो ।
 बाबर को वारन कौ चारन वध मारन को, देनों दैन दारन कौ करज चुकायगो ॥

—वल्लभ कवि, किशनगढ़ (सं० १७५०)

(२९)

प्रीत आप परजलै, प्रीत अवरों परजालै ।
 प्रीत गोत्र गालवै, प्रीत सुध वंश विटलै ॥
 प्रीत काज घर नारि, छेह दै छोरु छोड़े '
 प्रीत लाज परहरै, प्रीत पर खंडे पाड़ै ॥
 धन घटै देह दुख अंग में, अभख भखै अज रो जरै ।
 उदैराज कहै सुणि आतमा, इसी प्रीति जिणऊँ करै ॥

—उदयरज, मेवाड़ (१७५०)

(२७) छत्रकुंवरि बाई—ये किशनगढ़ के प्रसिद्ध कवि सामन्त सिंह उप-
 नाम नागरीदास की पोती थी । इनके पिता का नाम सरदार भिंह था । इनका विवाह
 कोटड़े के गोपाल सिंह जी खीची के साथ सं० १७३१ मे हुआ था । इनका एक ग्रंथ
 प्रेम विनोद प्रसिद्ध है ।

(२८) वल्लभ कवि—ये वृन्द कवि के पुत्र थे । इन्होंने वल्लभ विलास तथा
 वल्लभ मुक्तावली नामक दो ग्रंथ बनाये थे ।

(२९) उदयरज—ये जैन यति थे ।

(३०)

कीनौं तुम मान, मैं कियौ है कब मान अब, कीजै सनमान अपमान कीनौ कब मैं ।
प्यारी हँसि बोलु और बोलै कैसे बुद्धराज, हँसि हँसि बोलु हँसि बोलि हौं जु अब मैं
दग करि सोहैं कोरि सोहैं करि जानत हैं, अब करि सोहैं अनसोहैं कीने कब मैं ।
लीजे भरि अंक जाहि आये भरि अंक होन, काहु भरि अंक उर अंक देखे अब मैं ॥

—महाराव राजा बुधसिंह (सं० १७६०)

(३१)

भूपण निवाज्यौ जैसे सिवा महाराज जू ने; वारन दे वावन धरा पे जस छाव है ।
दिल्लीसाह दिलीप भये है खानखाना जिन, गंग से गुन को लाखैं सोज मन भाव है ॥
अब कविराजन पै सकल समस्या हेत, हाथी घोड़ा तोड़ा दे बढ़ायो बहु नाँव है ।
बुद्ध जू दिवान लोकनाथ कविराज कहै, दिशे इकतौरा पुनि धौलपुर गाँव है ॥
लोकनाथ चौबे, बूंदी (सं० १७६०)

(३२)

सोले सै छीहोतरे, महिने आसू माह ।
टोकायत बैठो तरत, सूर तणौ गज साह ॥
जहाँगीर दिल्ली हुतां, पठयो गज सिरपाव ।
नौबत घोड़ा नव सहस, रिधू कमधौ राव ॥
गज बंधी गांगाहरौ, दिल्ली दिसा किवाड़ ।
सांम ध्रम नवसाह मौ, नदण अरां औनाड़ ॥

—हरिदास भाट, जोधपुर (सं० १७६३)

(३०) महाराव राजा बुधसिंह—ये बूँदा नरेश बड़े वीर और समर पटु थे । इनके पिता का नाम अनिलदसिंह था । कविता करने में भी निपुण थे । इनके लिखे 'नेर्हानधि नामक एक ग्रंथ का पता है ।

(३१) लोकनाथ चौबे—ये बूँदा के महाराव बुधसिंह के आश्रित थे । इन्होंने दो ग्रंथ बनाये थे—रज तरंग और हरिवंश चौरासी का भाष्य ।

(३२) हरिदास भाट—ये जोधपुर के महाराजा अजीत सिंह के आश्रित थे । इन्होंने 'अजीत सिंह चरित्र' नाम का एक ग्रंथ बनाया था जिसमें जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह (प्रथम) और उनके पुत्र अजीत सिंह का इतिहास सं० १६९५ से १७६३ तक लिखा गया है ।

(३३)

हँसि बोल्यो सुलतान, मान घण मूछ मरोड़ी ।
रतनसेन कूँ पकड़ि, चित्रगढ़ नाखहुँ तोड़ी ॥
है कपै चक च्यार, थरकि जलनिधि अकुलाणो ॥
सर गिइन्द्र खलभल्यो, पड़्यो दस दिसहि भगाणो ।
फरमान देस देस हि फटै, सब दुनियाँ ऐसी सुनी ।
मारि हैं रतन हिन्दुआन पनि, साह पकड़ि हैं पदमिनी ॥
—हेमरतन सूरि, मेवाड़ (सं० १७६५)

(३४)

आये निसि चोर चोरी करन हरन धन, देखे श्यामघन हाथ चाप सर लिए हैं ।
जब जब आये बान साध डरपावै ए तो, अति भँडरावे ए पै बली दूरि किए हैं ॥
भोर आय पूछे अजू सौँवरो किसोर कौन, सुनि कर मौन रहे आँमु डारि दिए हैं ।
दई सब लुटाई जानी चौकी रामराई दई, लई उन्ह दिक्षा शिखा सुद्ध भए हैं ।
—प्रियादास, जयपुर (सं० १७६९)

(३५)

हूल उठी हरम द्विये में यह बात सुने, त्रास परौ सारी दादशाही के अवास में ।
खान सुलतान घने दाँतन तिनूका धरै, आँतन पखेर-मौर मारे एक स्वास में ॥
भोज रतनेस से रुवाई करी राजा राव, बुद्ध बलवान वीरताई के अवास में ।
अप्सरा आकास में तमासे लगी जा रुमें सु, ता समै कटारी एक मारी आमखास में ॥
—भोजमिश्र, वृन्दी (सं० १७७७)

(३३) हेमरतन—ये जैन ग्रन्थ थे । मेवाड़ के महाराणा अमर सिंह (दूसरे) के समय में इन्होंने 'पद्मिनी चौपई' नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी । इसी नाम का और करीब २ इसी तरह का एक ग्रन्थ लालचंद नाम के किसी कवि का बनाया हुआ भी प्राप्त हुआ है । इन दोनों ग्रन्थों की हस्त लिखित प्रतियाँ हमारे पास हैं ।

(३४) प्रियादास—ये नाभादास के शिष्य थे । अपने गुरु के कहने से इन्होंने 'भक्तमाल की टीका' बनाई थी ।

(३५) भोजमिश्र—ये वृन्दी के रावराज बुधसिंह जी के दरवारी कवि थे । इन्होंने 'मिश्र शृंगार' नामक एक ग्रन्थ बनाया था ।

(३६)

मन री तिसना नहु मिटै, प्रगट जोर पतवाण ।
 लाभ थकी बहु लोभ है, है तिसना हैरण ॥
 है तिसना हैरण जाण नर पिण नवि जाणै ।
 पास जुढ़या पंचास आस सौ उपरि आयै ॥
 सौ जुड़ियां तब सहस धरै इच्छा लख धन री ।
 ध्रापै किम धर्मसींह मिटै नहिं तृष्णा मन री ॥

—धर्मवर्द्धन (सं० १७००-८१)

(३७)

कंचन कैरी किधौं जरिया बिधि नीलम को कनिका जर्यौ पावक ।
 कै रवि को सुत जीव की गोद में मोद भर्यो दरसै रसनावक ॥
 आनन-चंद चक्रोर से नैन लगै पुतरीन की कांति सुहावक ।
 गूजरी ऊजरी ठोड़ी को बिन्दु गुलाब को फूल मिलिंद के शावक ॥

—महाराज सुजानसिंह, करौली (सं० १७६०)

(३८)

मंजुल कंज लिये कर में छवि बंजुल कुंजन में विकसी है ।
 खंजन के मद भंजन लोचन अंग अनंग कला सरसी है ॥
 आनंद कंदह नंदक नंदन चंदन बंदन बेदि लसी है ।
 मंदह मंद सुकंद हँसे अरबिंद में कुंदकली दरसी है ॥

—हरिचरणदास, किशनगढ़ (जन्म सं० १७६६)

(३६) धर्मवर्द्धन—ये जैन साधु थे । बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर आदि राजस्थान के कई बड़े बड़े राज्यों में समय समय पर रहे थे । इनके बनाये हुए २३ ग्रंथों का पता लग चुका है ।

(३७) महाराज सुजान सिंह—ये करौली के राजघराने में पैदा हुये थे । इनके पिता का नाम विष्णुसिंह था । इन्होंने 'सुजान विलास' नाम का एक शृङ्गार रस प्रधान ग्रंथ बनाया ।

(३८) हरिचरणदास—ये जाति के ब्राह्मण थे और किशन गढ़ के महाराजा बहादुरसिंह के आश्रय में रहते थे । इन्होंने केशव की 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' विहारी की 'सनसई' और जसवंत सिंह के भाषा भूषण की टीका लिखी थी । इनके रचे दो और ग्रंथों का पता लगा है—सभी प्रकाश और कवि वल्लभ ।

(३६)

दिल्ली के बजार बीच जुत्थ उमरावन को, सूर समरत्थ जात रूप तहवरी को ।
 संग गड़दार फीलवान के न हाथ गज, आवत भयंकर भो समैं तिहिं घरी को ॥
 साहस की सूरत संभार करवार विजै, सांवंत कुमार धीर जैतवार अरी को ।
 करी न अवेर सब देखतही तिहीं वेर, मार समसेर मुँह फेर दीनों अरी को ॥

—राय कवि, किशनगढ़ (सं० १७८०)

(४०)

श्रीगुरु पद बंदन करूँ, प्रथमहि करूँ उछाह ।
 दंपति गुरु तिहुँ की कृपा, करौ सफल मो चाह ॥
 बार बार बंदन करौ, श्रीवृषभानु कुँवारि ।
 जय जय श्रीगोपाल जू, कीजै कृपा मुरारि ॥
 बंदौ नारद व्यास शुक, स्वामी श्रीधर संग ।
 भक्ति कृपा बंदौ सुखद, फलै मनोरथ रंग ॥

—ब्रजदासी, किशनगढ़ (सं० १७८०)

(३६) राय कवि—ये किशनगढ़ के प्रसिद्ध कवि नागरीदास के आश्रित थे ।

(४०) ब्रजदासी—ये किशनगढ़ के मयाराजा राजसिंह की रानी थी । इनका असली नाम बांकावत जी था । इन्होंने श्रीमद्भागवत का हिन्दी पद्यानुवाद किया था ।

(४१)

जब लगि सूर सुमेर चंद्रमा शंकर उड़गन ।
 जब लगि पवन प्रताप, जगत मधि तेज अग्नि तन
 जब लगि सात समुद्र, संयुगत धरा बिराजै ।
 जब लगि सुर तैतीस, कोटि आनंद समाजै ॥

तब लगि यहौ भाषा सुकृत सहस्र नाम जग में रहौ ।
 अगजीत कहै इनको पढ़त सुनत सकल सुख को लहौ ॥

—महाराजा अजीतसिंह, जोधपुर (सं० १७३७-८१)

(४२)

धीरे झूलो री राधा प्यारी जी ।
 नवल रंगीली सबै झुलावत गावत सखियों सारी जी ॥
 फरहरात अंचल चल चंचल लाज न जात सँभारी जी ।
 कुंजन ओर दुरे लखि देखत प्रीतम रसिक बिहारी जी ॥

—रसिक बिहारी, किशनगढ़ (सं० १७८७)

(४१) महाराजा अजीतसिंह—ये जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के पुत्र थे । इन्होंने ब्राह्मणों और चारणों को करीब ३५ गाँव दान में दिये थे । इनके प्रोत्साहन से संस्कृत, हिंदी और डिंगल के बहुत से ग्रंथ इनके समय में लिखे गये थे । ये स्वयं भी उच्चकोटि के कवि थे । इन्होंने दो ग्रंथ बनाये थे—गुणसागर और भाव विरही । इनके सिवा मिश्र बंधु विनोद में इनके दो-चार और ग्रंथों के नाम दिये हुए हैं । मालूम नहीं, ये नाम कहाँ तक ठीक हैं ।

(४२) रसिक बिहारी (बनोठनो जी)—ये नागरीदास की दासी थीं । कोई कोई कहते हैं कि ये उनकी उपपत्नी थी ।

(४३)

मोर मुकुट बनमाल, माल तुलसी नव मंजर ।
रुचि कुंडल कल रतन, तिलक मंजुल पीतांबर ॥
मणि कङ्कण अमन्द, अमूल्य पद हाटक नूपुर ।
नवलासी नवरङ्ग, संग भुज बंसी सुन्दर ॥
बप रूप ओप नवघन बरण, हरण पाप त्राताप हरि ।
गुण मान दान चाहे सुग्रहि, कवि सुग्यान और ध्यान करि ॥
—वीरभाण, जोधपुर (सं० १७६०)

(४४)

ए अखियाँ प्यारे जुलुम करें ।
यह महरैटी लाज लपेटी झुक झुक घूमै भूम परें ।
नगधर प्यारे होउ न न्यारे हाहा तो सौं कोटि टरें ।
राजसिंह को स्वामो श्रीनगधर बिन देखे दिन कठिन परें ॥
—महाराजा राजसिंह, किशनगढ़ (सं० १७३१-१८०५)

(४५)

एक ओर देखियत बड़े बड़े एक ओर, हैं अमीर उमराव बड़े परमान के ।
लाखन के पटा आए अरि को उड़ावें जंग, अचल पहाड़ से अशर अभिमान के ॥
कामदार फौजदार बकसी अनेक और, पंडित बिबेकी बैद जोइसी सुजान के ।
राजन के राजा महाराजा लखपति जू को, सभा जैसी देखो तैसी काहु नहिं आन के ॥
—कुंवर कुशल, जोधपुर (सं० १७६६)

(४३) वीरभाण—ये रत्नू शाखा के चारण जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे । इन्होंने 'राजरूपक' नाम का एक ग्रन्थ बनाया था ।

(४४) महाराजा राजसिंह—ये किशनगढ़ के राजा थे । इन्होंने कविता करना वृन्द कवि से सीखा था । इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं—राज प्रकाश, बाहुबिलाम, रसपाय नायक ।

(४५) कुंवर कुशल—ये जोधपुर के रहने वाले जैन कवि थे । इन्होंने 'लखपति यज्ञ सिन्धु' नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया था ।

(४६)

राम रक्यौ गलतान भयो ॥

सार को सार सकल तैं ऊँचो सो या तन मे साधि लयो ॥१॥

आदि अनादि किता जन चीन्हो ताको सांसो दूरि भयो ॥२॥

वेद पुराण सकल में बोलै भक्ति मुक्ति विश्राम लयो ॥३॥

जैमलदास लग्यौ चित निश्चय दीपक ज्युँ परकास भयो ॥४॥

—जैमलदास, बीकानेर (सं० १७६०-१८१०)

(४७)

मान महिपाल तैं मुरत्तब सवायो देत, सोधि देत साथ बड़ी चमू चतुरङ्ग को ।

हाथी घोरे श्रम्बर जवाहर असंख्य देत, आयुध विजय भाखे पूरब प्रसङ्ग को ॥

कहै ब्रजलाल महाराज माधवेस जाके, पूजै भुजदंड जस देत उतमङ्ग को ।

बार बार वेग में दिलीपति सूँबोल कहै, लाज पातसाही की निसान पचरङ्ग को ॥

—ब्रजलाल, जयपुर (सं० १८१०)

(४८)

इक आवत इक जात है, चली जात टकसाल ।

चौरासी का सन्तदास, मिटै नहीं जंजाल ॥

तन सराय मन पंथिया, बासो बसिया आय ।

एक रेण की गुदर है, फजर कूँच कर जाय ॥

—सन्तदास, मेवाड़ (सं० १८०६)

(४६) जैमलदास—ये बीकानेर राज्य के कोड़मदेसर नामक गाँव के प्रसिद्ध रामानंदी वैष्णव महन्त श्रीचरणदासजी महाराज के शिष्य थे ।

(४७) ब्रजलाल—ये जयपुर के महाराजा माधवसिंह जी (प्रथम) के आश्रित थे ।

(४८) संतदास—ये शाहपुरे के रामरनेहियों के मूलाचार्य रामचरणदास जी के दादा गुरु थे ।

(४९)

अठार सै त्रिये, ग्रंथ पूरब आरंभे ।
चिरत गजण चित्रोया, सुणे जण तेण अचंभे ॥
वरपे दाहोतरै, रित बरपा धण वदल ।
तेरसि पुष्पा अरक, मास भाद्रपद कृष्ण दल ॥
मभू नयर रिणी सिध जोग मभि, वदँ कृत चहुँवे वले ।
सिरताज राज ग्रंथा सिरै, हूवौ कलस महि मन्डले ॥

—गाडण गोपीनाथ, बीकानेर (सं० १८१०)

(५०)

अंबापुर गिर उदै, क्रीत उजळ किरणालं ।
तप प्रताप दन तेज, भाग भळहळ दुतभालं ॥
अधम अलुक होय अंध, मित्र चकवाक प्रमोदत ।
अबुध तिमर घट ओज, असह उडगण आक्रंदत ॥
जयसाह बीथा जग जय जपत, बन कंज कविद बिकासिया ।
सुभीयांण मुकट हिंदुबाण सिर, पातल भाण प्रकासिया ॥

—हुक्मीचंद, जयपुर (सं० १८२०)

(४९) गोपीनाथ—ये बीकानेर के महाराजा गजसिंह के आश्रित थे । इन्होंने 'ग्रंथराज' नामक एक ग्रन्थ बनाया था, जिस पर प्रसन्न होकर उक्त महाराज ने इन्हे लाख पसाव दिया था ।

(५०) हुक्मीचंद—ये खिडिया गोत्र के चारण जयपुर राज्य के भड़ड़िया गाँव के रहने वाले थे । जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह जी उपनाम ब्रजनिधि के दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । डिगल भाषा में लिखे हुए इनके गीतों के कारण इनकी राजस्थान में बहुत प्रसिद्धि है । यह दृश्यपथ इन्होंने महाराजा प्रतापसिंह जी का प्रशंसा में लिखा है ।

(५१)

अकुलाई त्रिया चढ़ि है सो अटा पर स्याम घटा दरसै दरसै ।
 लागि रह्यो कर अम्बर धार सो नीर भरै सरसै सरसै ॥
 भर से नद पूर सुताल भरै हिय हेत हतो हरसै हरसै ।
 कल्याण कहै घनश्याम को देखि कै याद करै बरसै बरसै ॥

—कल्याण कवि, जैसलमेर (सं० १८२५)

(५२)

नर काहे को सोचि करै विकरे अति आतुर होय वृथा तरसै ।
 भजु नन्द को लाल गुपाल दयाल कृपाल सदा सुख में सरसै ॥
 दुख भंजन रंजन संजन ही चित ध्यान धरै हिय में सरसै ।
 कवि नाथ कहै बसु बहल ज्यों प्रभु याद करै बरसै बरसै ॥

—श्रीनाथ शर्मा, जैसलमेर (सं० १८२६)

(५३)

लोने लोने लोल लोल ललचोहैं नैनन सौं,
 चौकि चौकि कुंजन के द्वार द्वार त्यों निहारि ।
 गहरे उसास ले कै भले जू भले जू कहि,
 कान्ह तुम्हें टेरि टेरि हेरत ही एक नारि ॥
 आज लौं न देखी ऐसी कौन है कहाँ की है जू,
 हाथ संवारी मनो मनमथ संचे डारि ।
 नन्द के कुंवर रसरासि तुम्हें वाही की सौं,
 साँची कहो रावरी ये कब की है लगवारि ॥

—रसरासि, जयपुर (सं० १८२७)

(५१) कल्याण कवि—ये जैसलमेर के महारावल मूलराज जी के सभासद और कृपापात्र थे ।

(५२) श्रीनाथ शर्मा—ये भी जैसलमेर के महारावल मूलराज जी के सभासद थे संस्कृत हिन्दी और डिंगल के प्रौढ़ विद्वान तथा उच्चकोटि के कवि थे । इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं—मूलराज काव्य, अन्योक्ति मंजूषा, लोलिवराज भाषा और मूलविलास ।

(५३) रसरासि—इनका पूरा नाम रामनारायण था । ये जयपुर के महाराज प्रतापसिंह जी के दीवान जीवराज जी के यहाँ नौकर थे । अच्छे कवि थे ।

(५४)

इसक अखाड़ा अजब है, गजब चोट है यार ।
तन को तिनके सम गिर्नै, सोही पावै पार ॥
सिर उतार लोहू छिरक, उसही की कर कीच ।
आसिक बपरे परि रहै, उसी कीच के बीच ॥

—महाराणा अरिसिंह, मेवाड़ (सं० १८२५)

(५५)

सतगुरु के परताप तैं, नरिये नाम पियाह ।
प्यासा प्राण पिलाइया, पीवत ही जीयाह ॥
और सकल कूँ छाँड़ि करि, परस्या आतम राम ।
नरिया साँसा को नहीं, जाय मित्या निज धाम ॥

—नारायण दास, बीकानेर (सं० १८०६-५३)

(५६)

छाकी प्रेम छाकन के नेम में छबीली छैल,
छैल की बँसुरिया के छलन में छली गई ।
गहरे गुलाबन के गहरे गरूर गरे,
गोरी की सुगन्ध गैल गोकुल को गली गई ॥
दर में दीनहू में दीपति दिवारी दरी,
दंत की दमक दुति दामिनी दली गई ।
चौसर चमेली चारु चंचल चकोरन तैं,
चाँदनी में चन्द्रमुखी चौकत चली गई ॥

—मुरलीधर भट्ट, अलवर, (सं० १८३७)

(५४) महाराणा अरिसिंह—ये मेवाड़ के महाराणा थे । किशनगढ़ के प्रसिद्ध कवि नागरीदास के इस्क चमन के उत्तर मे इन्होंने रसिक चमन बनाया था । सहृदय कवि और कवियों के आश्रय दाता थे ।

(५५) नारायणदास—ये रामरत्नेही साधु हरिरामदासजी के शिष्य थे ।

(५६) मुरलीधर भट्ट—ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे । अलवर के राव राजा बख्तावर सिंह जी के आश्रित कवि थे ।

(५७)

जलपति ज्यौं जलेश दलपति महासेन,
 बलपति बालि जैसे अहिपति शेष है ।
 रसापति इन्द्र जैसे दिगपति दिग्गज है,
 सिद्धपति सिव जैसे गणपति गणेश है ।
 सुकवि खुमान द्वन्द्व-युद्ध पति भीमसेन,
 पैजपति अंगद उदार अवधेश है ।
 विज्ञान पति गौ ऋषि ज्यौं ध्यान पति ध्रुव जैसे,
 दानपति जदव महीप मदनेश है ॥

—खुमाणसिंह, करौली (सं० १८५०)

(५८)

सोहत अंग अनंग भरी न करी रस रंग तरंगन पेले ।
 बाल लसै ढिंग लाल की सेज उरोज को तेज उरोज न भेले ॥
 फैलि चली रति में अलके उपमा गणईश कपोलन खेले ।
 चौमुख चन्द्र की चौतरि झारि मनौं मणि को लखि नागिन खेले ॥

—गणेश कवि, करौली (सं० १८५५)

(५७) खुमाण सिंह—ये ज्ञानि के भाट थे और करौली नरेश मदनपालजी के आश्रित थे । इनकी कविता से खुश होकर उक्त महाराज ने इन्हें उमेदपुरा गाँव और एक हाथी पुरस्कार में दिया था ।

(५८) गणेश कवि—ये चतुर्वेदी ब्राह्मण थे । इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं:—
 रसचन्द्रोदय, कृष्ण भक्ति चन्द्रिका नाटक, सभा गूर्य, नय शतक और फागुन माहात्म्य ।

(५६)

दुर्लभ या नर देह अमोलक पाइ अजान अकारथ खोवै ।
सो मतिहीन विवेक बिना नर साध मत्तगहिं ईन्धन ढोवै ॥
कंचन भाजन धूरि भरै सठ मूढ़ सुधारस सौं पग धोवै ।
बोहित काग उड़ावन कारन डारि महा मणि मूरख खोवै ॥

—उत्तमचन्द भंडारी, जोधपुर (सं० १८६०)

(६०)

जलसुत - प्रीतम जानि तास सम परम प्रकासा ।
अहिरिपु स्वामी मध्य किमौ जिनि निश्चल बासा ॥
गिरिजापति ता तिलक तास सम सीतल जानूं ।
हंस भषन तिस पिता तेम गंभीर सु मानूं ॥
उदधि तनय बाहन सुनौं ता समतुल्य बखानिये ।
यौं सुन्दरदास सदगुर गुण अकथ तास पार नहिं जानिये ॥

—चत्रदास, फतहपुर (सं० १८५७)

(५६) उत्तमचन्द भंडारी—ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समकालीन थे । इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं—नाथ चन्द्रिका, अलङ्कार आशय, तारक तत्व, रत्न हम्मीर की बात और नाथपंथियों की महिमा ।

(६०) चत्रदास—ये दादू पंथ के प्रसिद्ध महात्मा सुंदरदास जी की शिष्य-परंपरा में संतोषदास जी के शिष्य थे । इन्होंने राघवदास कृत 'भक्तमाल' की टीका लिखी थी ।

(६१)

कारज आछो औ बुरो, कीजै बहुत बिचार ।
 कियै जलद नाहीं बनै, रहत हिये में हार ॥
 पर नारी सब मातु सम, पर धन धूलि समान ।
 सबैं जीव निज जीव सम, देखै सो दगवान ॥
 इक तरु सूखे की अग्नि, जारत सब बनराय ।
 त्योही पूत कपूत तैं, वंश समूल नसाय ॥

—उम्मेदराम बारहट, अलवर (सं० १८७०)

(६२)

धूमत घटा से घनघोर से घुमड़ घोख,
 उमड़त आए कमठान तैं अधीर से ।
 चपट चपेट चरखीन की चलाचल तैं,
 धूरि धूम धूसत धकात बलि बीर से ।
 मसत मतङ्ग रामसिंह महिपाल जू के,
 डाकिनि डराए मद छाकिनि छकीर से ।
 साजे साँटमारन अखारन के जैतवार,
 आरन के अचल पहारन के पीर से ॥

—कविराजा चंडोदान, बूंदी (सं० १८४८-६२)

(६१) उम्मेदराम—ये पालावत शाखा के चारण हूणत्या गाँव में पैदा हुए थे और अलवर के रावराजा बख्तावर सिंह जी के आश्रित थे । इनके पिता का नाम सामंत जी और पितामह का घासीराम जी था । इन्होंने रामाश्वमेध, जमक शतक आदि १४ ग्रंथ बनाये और केशव कृत कवि प्रिया तथा रसिक प्रिया की टीका लिखी थी ।

(६२) कविराजा चंडोदान—ये मिश्रण शाखा के चारण थे । इन्होंने 'विरूद प्रकाश' नाम का एक ग्रंथ लिखा था जिस पर खुश होकर बूंदी के महाराव राजा विष्णु सिंह जी ने इन्हे होसूदा नामक गाँव, लाख पसाव तथा रहने को एक मकान दिया था । विरूद प्रकाश के सिवा इनके ग्रंथों के नाम ये हैं—सारसागर, बलविग्रह, वंशाभरण और तीजतरंग ।

(६३)

बसिया छै जी नन्दकिसोर ।

मारै मन बसिया नन्दकिसोर ॥ टेक ॥

बिन देखे कल नांय परत है, नांय सुहावै कछु और ।

दरदवन्त सफरी ज्यूँ तलफत, सूझत और न छौर ॥ १ ॥

दिन नहिँ चैन रैण नहिँ निद्रा, कल न परत निस और ।

भीम राण छन छन तन छोजत, बेग मिलो जो दौर ॥ २ ॥

—महाराणा भीमसिंह, मेवाड़ (सं० १८३४-८५)

(६४)

फागुन नैन नचावत नाचत डोलत लार न छोरत मोरियाँ ।

बीन बजाय अबीर उड़ावत गावत आवत गोरियाँ होरियाँ ॥

फाग खिलारि नये भये मोहन नाहिँ करौ अब जोबन जोरियाँ ।

रोरियाँ मीढ़ि कै रंग में बोरियाँ कान्ह पिछानी में चोरियाँ तोरियाँ ॥

—अमरसिंह, मेवाड़ (सं० १८८०)

(६५)

धारो जी वृन्दावन राधे राज पुष्पन छायो ॥ टेक ॥

निर्मल नीर निकट बहै यमुना दिन दिन रंग सवायो ॥ १ ॥

खुल रही लटा लिपट रही रजनी मुनि जन ध्यान लगायो ॥ २ ॥

दोउ कर जोड़्यो कहै बख्तावर हरष निरख गुण गायो ॥ ३ ॥

—बख्तावर (सं० १८६०)

(६३) महाराणा भीमसिंह—ये मेवाड़ के महाराणा थे । बड़े वीर, विद्वान और काव्य-निपुण थे ।

(६४) अमरसिंह—ये महाराणा भीमसिंह जी के सब से बड़े कुँवर थे । अपने पिता की विद्यमानता ही में स्वर्गवासी हो गये थे ।

(६५) बख्तावर—ये राजस्थान में एक प्रसिद्ध भक्त कवि हुए हैं । इनका इतिवृत्त ज्ञात नहीं है । कुछ लोगों ने इन्हे और अलवर के महाराजा बख्तावरसिंह जी को एक मान रखा है, जो अशुद्ध है ।

(६६)

व्रज स्थाम बिहाय बिदेस बसै हरि देख कृपा सुध क्यों न लई ।
 निस-वासर सोच रहै नित ही दुख ताप मिटै विध कौन दर्ई ॥
 घनश्याम बिना घन देखि घटा तरुनी विरहानल ताप तई ।
 छिरक्यौ न गयौ उनको अंगना वर्पा अध बीच हू सुख गई ॥

—रावल मूलराज, जैसलमेर (सं० १८७६)

(६७)

हमारो तेरी नांय बने गिरधारी ॥ टेक ॥
 तुम नन्द जी के छैल छबीले मैं वृषभानु दुलारी ।
 मैं जल जमुना भरण जात ही मग में खड़े बनवारी ॥१॥
 चीर हमारो देवो रे मोहन सास सुणै दे गारी ।
 तुमरो चीर जभी हम दे'गे जल से हो जावो न्यारी ॥३॥
 जल से न्यारी किस बिधि होवे तुम पुरुष हम नारी ।
 चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छबि तुम जीते हम हारी ॥३॥

—चन्द्रसखी, (सं० १८८०)

(६८)

आदर करै अपार, तो भोजन भाजो भली ।
 आणै मन अहंकार, कड़वा घेवर किसनिया ॥
 सोनो घड़ै सुनार, कंदोई खाजा करै ।
 भोगे भोगणहार, करम प्रमाणे किसनिया ॥

—किसनिया, (सं० १८९०)

(६६) रावल मूलराज—ये जैसलमेर के राजा थे । व्रजभाषा में बहुत सरस कविता करते थे ।

(६७) चंद्रसखी—इनके जन्म, वंश, माता, पिता आदि का विवरण अंधकार में है । मीराबाई के पदों की तरह इनके पद भी राजस्थान में घर-घर में गाये जाते हैं ।

(६८) किसनिया—किसी चारण ने अपने नौकर किसनिया को संबोधित कर थोड़े से नाति विषयक सारठे कहे हैं । इन सारठों का राजस्थान में बहुत प्रचार है ।

(६६)

दुनियां घड़िया देवता, परहर ताकी पूज ।
अणघड़ देव अराधिये, मेटो मन को दूज ॥
मनसा वाचा कर्मणा, रटौ रैण दिन राम ।
नरक कुंड में ना परौ, पावो मुक्ति मुकाम ॥

—परशराम मारवाड़ (सं० १८२४-६६)

(७०)

चतुरभुज भूलत श्याम हिंडोरे ।
कंचन खम्भ लगे मणि मानिक रसम की रंग डोरे ॥
उमड़ि घुमड़ि घन बरसत चहुँ दिसि नदियाँ लेत हिलोरे ॥
हरि हरि भूमि लता लपटाई बोलत कोकिल मोरे ॥
बाजत बीन पखावज बंसी गान होत चहुँ ओरे ॥
जामसुता छबि निरख अनोखी वारूँ काम कियोरे ॥

—प्रतापबाला, जोधपुर (सं० १८६०)

(७१)

सधर रतन इल सोहियो, कमर्धा पत वीकाण ।
तै पाट प्रतपै रतन सा, भूपतियां वंस भाण ॥
ऐवासां नरपत अरस, रहत सलूणै रंग ।
ओता सतजुग ने कहै, विध किण आ वीरंग ॥

—वीठू भोमा, बीकानेर (सं० १८६०)

(६६) परशराम—ये रामस्नेहियो की विरक्त शाखा के प्रवर्तक थे ।
इनकी अनुभव बाणी की संख्या १५००० के लगभग बताई जाती है ।

(७०) प्रतापबाला—ये जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह जी की रानी थी ।

(७१) वीठू भोमा—ये जाति के चारण थे । बीकानेर के महाराजा रतनसिंह
जी के आश्रित थे ।

(७२)

उनमत्त मर्तग लता द्रुम तोरैं, निशंक ह्वैं दौरहिः स्यार ससा ।
 बिनु चिन्तहु चीते चरित्र करैं रु, बघेरे बड़प्पन लाय नसा ॥
 मृग ह्वैं गति मन्द तहाँ बिहरैं, मिलि खोदत सुकर वृन्द रसा ।
 वनराज विहीन बड़े बन की, जु भई कलु और की और दसा ॥

—भारतीदान, जोधपुर (सं० १६००)

(७३)

है प्रियवादित शील वहै नित बोलत सत्य सु अमृत बानी ।
 एकहि सत्य उचारि निखालस ना करि डारित मान की हानी ॥
 जो वह मिष्ट कहै सब ही दिन औ गुन की तिहिं होय बढ़ानी ।
 है कहनो द्वय साथ गुमान जु मानहु दूध में मिश्रो मिलानी ॥

—गुमानसिंह, मेवाड़ (जन्म संवत् १८६७)

(७४)

पूजत चिरायु चट्ट चन्द्र गोल वासिन के, धर्म अभिलापन के सिर पर कर है ।
 रूप रण रणक समान व्रप भाषा पुरी, पत के प्रमाणदान धरि भूमिधर है ॥
 पातक दरद धुपे दरसन ही ते पद, परसत उच्च फल बाहू बल वर है ।
 करमधुज वंस छत्रधारी जसवन्त चित्त, हरिपद कमल कुमारी की लहर है ॥

—चंडीदान, कोटा (मृत्यु संवत् १६३७)

(७२) भारतीदान—ये जोधपुर के प्रसिद्ध कवि मुरारिदान के पिता थे ।

(७३) गुमानसिंह—ये मेवाड़ राज्य के बाठरडा गाँव के स्वामी दलेजसिंह जी के छोटे भाई थे । बहुत अच्छे कवि और योगसिद्ध सज्जन थे । इनकी कविता का प्रधान विषय आध्यात्मवाद है ।

(७४) चंडीदान—ये जाति के चारण थे और कोटे के महाराव राजा रामसिंह जी के आश्रित थे । इनको कविराज की उपाधि थी । देवी की स्तुति में एक-आध कवित्त हमेशा बनाने का इनका नियम था ।

(७५)

जमुना तट रंग की कीच बही ॥ टेक ॥

प्यार जी के प्रेम लुभानी आनंद रंग सुरंग चढ़ी ॥ १ ॥

फूलन हार-गुथे सब सजनी युगल मदन-आनंद लही ॥ २ ॥

तन मन सुन्दरि भरमति बिह्वल विष्णु कुंवरि है लेत सही ॥ ३ ॥

—विष्णु प्रसाद कुंवरि, जोधपुर (जन्म सं० १९०३)

(७६)

होरी खेल रहै सिवसंकरजी चहुँ रङ्ग बरगै माइ ।

भेरी मृदंग बजै डमरू धुनिभनन भनन भाँभ भनकाइ ।

चंग उपंग खंजर बेणु नूपुर की धुनि छाइ ।

रङ्ग रङ्ग कै माट भरे बहु भर पिचकारी चलाइ ।

उड़त गुलाल लाल भये अंबर सोभा बरनी न जाइ ॥

गिरिजा संग सखियन मतवारी घेर लियो त्रिपुराउ ।

मुख मीढ़े गागर फिर ढोरे हँसि हँसि गारि सुनाइ ॥

बहुत बेर में भंग उतरि गई छन छन लेत जंभाइ ।

पुरुषोत्तम मन जाण गोरज्याँ नीके घोट पिलाइ ॥

—पुरुषोत्तम, मेवाड़ (सं० १९०५)

(७५) विष्णु प्रसाद कुंवरि—ये रीवां के प्रसिद्ध कवि महाराज रघुराज सिंह की पुत्री और जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह जी (दूसरे) के भाई किशोरसिंह जी की पत्नी थी । इन्होंने तीन ग्रंथ बनाये थे—अवध विलास, कृष्ण विलास और राधा रास विलास ।

(७६) पुरुषोत्तम—ये जाति के ब्राह्मण थे ।

(७७)

लखी कति कामिनि श्यामल चीर, सधूम कि अग्नि शिखा समसीर ।
 भुजंगम वेष्टित चंदन आति, किधौं घन मध्य दिवाकर काति ।
 कसौटिय में कस हेम कि कीन, लसै मनु मंगल अंबर लीन ।
 मनो जमुना जल में जल जात, किधौं तड़िता घनमें चमकात ।

—फतहकरण, मेवाड़ (सं० १६०६-७८)

(७८)

कपित गात कहा उतपात न जानि न जात रहीं सचु पाई ।
 रोम उठै जल अंग छुटै न घटै चख की छिन चंचलताई ॥
 हों अस द्वै दिन तैं दिक री सखि री लखि री उरमाँहि ऊँचाई ।
 दीजिय धूनी मँगाय दया करि हों तो गई सुनिये नजराई ॥

—झारसी राम चौबे, बूंदी (जन्म सं० १६१०)

(७९)

हंस खेलन की चित चाह नहीं परवाह न राग रू रंग की है ।
 तिय नेह उमंगन अंगन में नहीं संचय द्रव्य प्रसांग की है ॥
 कवि ईश्वर मान हू को नहिं ध्यान पसन्द न वीरता जंग की है ।
 कछु और न साध रही मन में इक चाह अबै सतसांग की है ॥

—ईश्वर सिंह, अलवर (जन्म संवत् १६१३)

(७७) फतह करण—ये जाति के चारण थे । मारवाड़ राज्य के ऊनामक गाँव के रहने वाले थे, जहाँ से महाराणा सज्जनसिंह जी के समय में मेवाड़ में चले आये थे । इनके लिखे पत्र प्रभाकर नामक एक ग्रंथ का चारण कवियों में बहुत प्रचार है ।

(७८) झारसीराम—ये बूंदी के रावराजा खुबीरसिंह जी के कृपापात्र थे । राजकीय चित्रशाला के अध्यक्ष थे । इनके ग्रंथ ये हैं—वंश प्रदीप, सर्व-समुच्चय, ललित लहरी और खुबीर सुयश प्रकाश ।

(७९) ईश्वर सिंह—ये अलवर के प्रसिद्ध कवि बिडदसिंह उपनाम माधव कवि के लघु भ्राता थे ।

(८०)

अवधू नश्वर है यह काया ॥ टेक ॥

हाड़ मौस का बणा पीजरा, ता पै रंग चढ़ाया ।

विनशत बार नेक नहीं लागै, तू जिस पर गरवाया ॥ १ ॥

इस पिंजरे के दस दरवाजे, सुन्दर सुघड़ बनाया ।

भीतर मल भंडार भरा है, देखत मन मचलाया ॥ २ ॥

लगा उबटने मल मल न्हाया, सुन्दर वस्त्र सजाया ।

दर्पण देख मोद में भरिया, बहुत घणा इतराया ॥ ३ ॥

क्षण में रूप बिगड़ जाय सारा, वृथा फिरै भरमाया ।

‘अमृत’ रूप लखे बिन भोले ! शान्ति कबहु नहिं पाया ॥ ४ ॥

—अमृतनाथ, जयपुर (सं० १६०६—७३)

(८१)

मो सम कौन अधम जग भाई ॥ टेक ॥

सगरी उमर विषयन में खोई, हरि की सुधि बिसराई ।

मन भायो सोई तो कीनो, जग में भई हँसाई ॥ १ ॥

कुल की कान बेद मर्यादा, यह सब धोय बहाई ।

सब ही जानूँ सब मुख भाखूँ, चलती नांव चलाई ॥ २ ॥

जिनके मंग ते करै विसासी, साँप होय डस जाई ।

सब की बैठ के करूँ निन्दरा, अपनी लेत छिपाई ॥ ३ ॥

काम-क्रोध मद लोभ मोह के, घेरें हुए सिपाई ।

इनते मोहिं छुड़ाओ स्वामी, ‘गिरिराज’ है शरणाई ॥ ४ ॥

—गिरिराज कुंवरि, भरतपुर (सं० १६२०—८०)

(८०) अमृतनाथ—इनका जन्म पिलाणी में चैनराम नामक एक जाट के घर में हुआ था । माता-पिता, घर-बार आदि को छोड़ कर नाथ संप्रदाय के गुरु चंपानाथ के शिष्य हो गये थे । इनका देहान्त फतहपुर में हुआ था ।

(८१) गिरिराज कुंवरि—ये भरतपुर की राजमाता थी । हिन्दी गद्य और पद्य दोनों लिखती थीं ।

(८२)

निकट नित रहन चहत मतवारै ।

मधु ऋतु में मधुकर मन मोहित पंख प्रसून पसारै ।

चल चल त्रिविध समीर चहुँ दिस ताप त्रिविध कूँ ठारै ॥ १ ॥

बिपिन बहार अपार बतावै किंसुक सुभ रतनारै ।

चैत्र चन्द्रिका चाह चकोरन हिय यों हरष हमारै ॥ २ ॥

पाय प्रभात गुलाब कलिन के कान परत चटकारै ।

बारि सकुन बिथुरै पत्रन पर बारिज छबि विस्तारै ॥ ३ ॥

कोकिल डाल रसाल कुटुकै पुहुप पराग पसारै ।

रसिक सनेही यह ऋतुराजा तुम राजन उजियारै ॥ ४ ॥

—महाराणा सज्जन सिंह, मेवाड़ (सं० १६१६-४१)

(८३)

दस दस नारिन कै पृथक् पृथक् वृन्द,

एकै संग कूदि पर्यो करि किलकारी कौं ।

एक हाथ अबीर गुलालन की रोका पोट,

एक हाथ दगन बचावो पिचकारी कौं ॥

अब 'घनश्याम' आयो होरी को खिलारी ताहिं

ऐंचि लाओ अंक भरि प्यारी जू अगारी कौं ।

लहँगा पहिराओ चोखी चूनरी ओढ़ाओ बँदि,

काजर लगाओ ह्याँ नचाओ गिरधारी कौं ॥

—घनश्याम कवि, नाथद्वारा (सं० १९१६-६८)

(८२) महाराणा सज्जनसिंह—ये मेवाड़ के महाराणा थे। बड़े काव्य-मर्मज्ञ और कला-प्रेमी थे। काव्य रचना में भी निपुण थे। कवियों, विद्वानों आदि का बड़ा सम्मान करते थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को इन्होंने १००० रु० और सिरोंपाव आदि देकर सम्मानित किया था। हिन्दी की उन्नति के पक्षपाती थे।

(८३) घनश्याम कवि—ये कांकडोली में पैदा हुए थे, जहाँ से जीविकाथ नाथद्वारे में चले आये थे। इनकी कविता से खुश होकर महाराणा फतहसिंह जी ने इन्हें ५०० रु० पुरस्कार में दिया था।

(८४)

लखि कै उदास निज दूत जमराज कहै,
 बैठे क्यों असेस एक ठौर मान मारे सों ।
 जाओ क्यों न विश्व पातकी कौं क्यों न लाओ यहाँ,
 चाहत है काम भयो, बंधक है सारे सों ॥
 माथुर कहत सुनि वचन कृतान्त मुख,
 बोले कर जोर सबै चित्त आन खारे सों ।
 गम ना तुम्हें तो कछू दम ना करत नित्य,
 हम ना कहेंगे जमुना कै न्हान वारे सों ।
 —जगन्नाथ चौबे, बूँदी (जन्म सं० ११२४)

(८५)

दीन कर ध्यान कर सबै सनमान कर,
 औ धन को हीन कर पंथ भव तरिगो ।
 मँगन कौं साथ सर्व करि कै अनाथ अति,
 भारत में राखै जस वात जस वरिगो ॥
 अंग को अनंग रूपवान गुन खान भान,
 कवि कुल भंग को सरोज फुल्ल जरिगो ।
 राघव भनत मेरे जान जसगत जात,
 दीन जन पंछिन को अलैखट परिगो ॥
 —राघोदान, सिरौही (सं ११५०)

(८४) जगन्नाथ चौबे—ये शारसीरामजी (नं० ७८) के पुत्र थे । इनके ग्रंथों के नाम ये हैं—अलंकार माला, रामायण सार, माथुर कुल कल्पद्रुम, शिचा दर्पण और जमुना पच्चीसी ।

(८५) राघोदान—ये दुरसा जी की वंश परंपरा में सिरौही के दरबारी कवि थे । इनको कविराज की उपाधि थी ।

(८६)

टक्का बिन पति को न मानत है तिय पति,
 टक्का बिन नातो को ! भतीजा कौन कक्का को ।
 टक्का बिन सास अरु ससुर बुले हैं नाहिं,
 टक्का बिन साले बंधु कुटुम्ब न सकका को ॥
 भूप कवि टक्का बिन सज्जन तुरावे नेद,
 टक्का बिन रूप कुल खावत है धक्का को ।
 टक्का बिन जक्का को रू तक्का को अनादर है,
 हक्का को बे हक्का होत टक्का बिन टक्का को ॥

—भोपालदान, धानणी (सं० १६५०)

(८७)

गोविन्द के पास आओ मन में विचार लाओ,
 पाप कट जाय जाय दरसन पाये तैं ।
 ध्यान लाओ मन में श्रवण में उसे रमाओ,
 मन मिल जाय वाहि गुन गुन गाये तैं ॥
 गुरु के भजन प्यारे गोविन्द सुभाव ही से,
 दिल हू में प्रेम बढ़ै वाकी छुबि छाये तैं ।
 चरन में सीस नाओ भगती में रम जाओ,
 कलि हू के पार जाओ भक्ति उपजाये तैं ।

—रणछोड़ कुँवरि, जोधपुर (ज० सं० १६४६)

(८६) भोपाल दान—ये जाति के चारण थे ।

(८७) रणछोड़ कुँवरि—ये जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह जी की रानी थी ।

(८८)

कर कै प्रकास खास बुद्धि के विलास ही तै,
 टार्यो भ्रम रूप तम दीनो ज्ञान दान है ।
 भूल प्राचीनन कृत निशा निरमूल कीनी,
 चारन कमल फूल फूलत प्रमान है ॥
 अलंकार जेते तेते नाम में प्रकासे सबै,
 आन ग्रंथ तै निदान विमल विधान है ।
 भान के समान कविराजा है मुरारिदान,
 कवि आन साहित्य के जुगनू समान है ॥

—हरदान, मोगड़ा (सं० १६६०)

(८९)

बात कबौ न करै हंसि राज की जाति में जाय कै नैकु न बोलै ।
 त्यों जगदीस हजारन की हिय बात सुनै अपनी नहिं खोलै ॥
 प्रीत परोसिन तै न तजै पर वस्तु सदा विष कै सम तोलै ।
 झूठ कबौ न कहै मुख तै हरि नाम जपै नर होत अमोलै ॥

—जगदीशलाल, बूंदी (सं० १६६०)

(८८) हरदान—ये सिंढायच कुलोत्पन्न जाति के चारण थे ।

(८९) जगदीश लाल—ये बूंदी के प्रसिद्ध गोस्वामी गदाधर लाल जी के वंश में थे । इन्होंने साहित्य-सार आदि १८ ग्रंथ बनाये थे ।

(६०)

मूक जातीं सौतैं सब दीरघ दिमाक देखि,
 रसिक बिलौकि होत बिकल निहारे मैं ।
 भरत न भारे थके गारडू बिचारे जरी,
 जंत्र-मंत्र बिबिध प्रकार उपचारे मैं ॥
 दत्त कवि कहै मन धरत न धीर अजौं,
 कैपे बचै कुटिल कटाच्छ फुसकारे मैं ।
 विषधर भारे नाग कारे नैन कामिनि कै,
 काटि छिपि जात हाय पलक पिटारे मैं ॥

—उमादत्त, अलवर (सं० ११७०)

(६१)

ये री वृषभानु की कुमारी सुकुमारी तेरी
 दीठि अनियारी नै दबायो दिल दौरि कै ।
 हाँसी हरषाय भुलवाय बर बैनन से,
 बस में बसाय ताहि नासा नैकुमौरि कै ।
 रामनाथ कीनौ कलु टोना सो अमाय भौंह,
 लीनौ मोल मोरवारी बेसर में जौरि कै ॥
 नंद के कुमार वृन्दाविपिन बिहारी पर,
 जुलुम करौ न जाल जुलफन छौरि कै ॥

—रामनाथ, बूँदी (सं० १६७५)

(९०) उमादत्त—ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण अलवर के दरबारी कवि थे ।

(९१) रामनाथ—ये बूँदी के प्रसिद्ध कवि राव गुलाब जी के दत्तक पुत्र थे । इन्होंने छोटे मोटे कुल मिलाकर ११ ग्रंथ लिखे थे ।

(६२)

भक्तिज्ञान हित शांत वीर नाहर जब मार्यो ।
राजावत अरु बणीठणी सों शुचि रस सार्यो ॥
कथा व्यास हित करुण रौद्र माणकचंद ऊपर ।
अद्भुत मृग कौं पकरि कूबरी तैं लिय भूपर ॥
वीभत्स सर्प ठोड़ी मली भय हू वामें कछु सरस ।
फाग खेल मधि हास्य यों नव रस मय नागर सुजस ॥

जयलाल किशनगढ़ (सं० १६८०)

(६३)

फूलै ना पलास ये हैं भाजन हुतास भरे, भौरन की भीर नाँहि धूप-धूम धारे हैं ।
मंजुल रसाल-मोरना बुहारी भारवै की, कोकिला की कूक नाँहि मंत्र को उचारे हैं ।
मारुत मलय नाँहि बार बार फूँकत है, चुटकी गुलाब नाँहि फट-फटकारे हैं ।
कहै 'साँमतेश' यह है नहीं बसंतकाल, जाङ्गुलिक मानिनी को मान-विष भारे हैं ॥

—सामन्तसिंह, पिपलाज (सं० १६४१-८६)

(६४)

जंग भटवाड़े माहि कोटा और जयपुर की, चमू चतुरंगिनी सों कंपित थली भई ।
जालिम प्रतापी वीर भल्ल तब क्रुद्ध होय, कोप तैं कृपाण काढ़ि कर में भली लई ।
घोर घमसान युद्ध माच्यौ जब आपस में, चंडिका प्रसन्नतार्थ शत्रुन बली दई ।
मान भयो मर्दन न गर्दन उठन पाई, भंडा छिनवाय सेना भाग के चली गई ॥

—महाराज जसवंत सिंह जी, भालावाड़ (सं० १६६०)

(६२) जयलाल—ये वृन्द कवि की वंश-परंपरा में बलदेव जी के पुत्र थे ।

(९३) सामन्त सिंह—ये मेवाड़ राज्य के पिपलाज ठिकाने के ठाकुर साहब के संबंधियों में से थे ।

(६४) महाराज जसवंत सिंह जी—इनका जन्म सं० १६२७ में हुआ था । भालावाड़ के वर्तमान महाराजा साहब ने इनको 'राज-गल' की उपाधि से विभूषित किया है ।

(६५)

अंक विधिना कै बंक निरखि निसंक कहौ,
 राजन तैं रंक लौं कलंक की अछूती को ।
 धन्य सत्री जाति पारीजात सी मनात हूँ ती,
 छिति सरसात छत्र राजस विभूती को ॥
 हा हा वह कलिकाल में बिहाल बनी,
 नाम न निशान राख्यो मन मजबूती को ।
 खोय दीनों चात्र धर्म बोय दीनों बंस जस,
 निपट डुबोय दीनों बट रजपूती को ॥

—बारहट केसरीसिंह, कोटा (सं० १९९०)

(६६)

सरबस सौपकै सुदामा को बढ़ायो मान
 इन्द्र अभिमान हर्यो वारि धार टारी है ।
 गोकुल गलीन गेह-गेह मोह मोद छायो,
 कंस के महल मच्यौ हाहाकार भारी है ॥
 चीर को बढ़ाय धाय राखी लाज द्रौपदी की,
 पय को पिलावत ही पूतना पछारी है ॥
 सुर सुखकारी है मुरारी भी तुही है फेर,
 कैसे कहूँ केवल तू सर्व हितकारी है ॥

—श्रीमान महाराजाधिराज श्री राजेन्द्र सिंह जी देव बहादुर, भालावाड़

(९५) केसरी सिंह जी—ये वंश भास्कर के प्रसिद्ध टीकाकार कृष्णसिंह जी बारहट के पुत्र हैं । शाहपुरे के पोलपात हैं, पर इस समय कोटे में रहते हैं । राष्ट्रीय विचारों के सहृदय व्यक्ति हैं । राजनैतिक क्षेत्र में खूब काम किया है ।

(६६) श्री महाराज राणा राजेन्द्रसिंह जी बहादुर—ये भालावाड़ के वर्तमान अधिपति हैं । प्रतिभावान कवि और काव्य मर्मज्ञ हैं । कविता में अपना नाम प्रायः सुधाकर रखते हैं ।

(६७)

जहँ अश्वहु बेच बसाचै गधे, कसतूरी कपूर समान बिकाई ।
न्याय अन्याय बराबर है, अरु मूरख टोली बसै चितलाई ॥
निंदक नीच रहैं जिहिं ग्राम में, ज्ञान की बात कछु न सुहाई ।
आदर है न गुनी जन को तिहिं देस को दूर प्रणाम सदाई ॥

—विजय माणिक्य रुचि, भींडर (जन्म सं० १६४६)

(६८)

टोपन कौं फारि दीनै कवचन तोरि दीनै,
हवद विथोरि दीनै भधकि धकायो है ।
म्लेछन कौं मारि दीनै हाथिन पछारि दीनै,
तुरंग उथारि दीनै फुल्लि विफरायो है ॥
गिरिन हलाय दीनै दिग्गज हुलाय दीनै,
अचल चलाय दिग्घ पौरुष दिखायो है ।
वीर जयमल रन ठेलि कै दुरग काज,
ऐसो खग-खेल खेल सुरग सिधायो है ॥

—कवि राव मोहन, मेवाड़ (जन्म संवत् १९२६)

(६७) विजय माणिक्य रुचि—ये मेवाड़ के रहने वाले जैनयति हैं ।
सुर्काव होने के साथ साथ बड़े सदाचारी और साहित्य प्रेमी हैं । इनकी कविताओं के
दो संग्रह पुरतकाकार प्रकाशित हो चुके हैं ।

(६८) कवि राव मोहन जी—ये बख्तावर जी राव के प्रपौत्र हैं । इन्होंने
मोहन सतसई, प्रताप यश चन्द्रोदय आदि १०-१२ ग्रंथ बनाये हैं जिनमें से दो-एक
छप चुके हैं । सुकवि हैं ।

(६९)

कारी होत देह शीत-घाम अरु मेह सहैं,
 तन मन वारैं कष्ट नेकु ना विचारे हैं ।
 ग्राम पुर छाड़ि गिरि कानन निवास करैं,
 जीवन बितावेँ एक ईश के सहारे हैं ॥
 सेवा करै 'सेविका' सदैव निज देश हेतु,
 पूजा पाठ, पर उपकार व्यत धारे हैं ।
 आह भी न करै जो सतावैं दुराचारी उन्हें,
 सच्चे तपधारी भक्त कृपक हमारे हैं ॥

—मुक्तादेवी, भालावाड़ (जन्म सं० १९६६)

(१००)

बिजया पीबौ है बुरो, कहौं सुनौ दे कान ।
 बितै समय बकवाद में, खास क्रोध की खान ॥
 खास क्रोध की खान, वित्त-बल-बुद्धि विनासै ।
 पूरण करै प्रमाद, कामना परम प्रकासै ॥
 सत्य कहैं 'रणबीर', जराये देवत जीया ।
 सिरड़ी करै जु सुस्त, बिगारत सुध बुध बिजिया ॥

—ठाकुर रणबीर सिंह, पिपलाज (जन्म सं० १९६७)

(६९) मुक्तादेवी—ये कॉल्विन गर्ल्स स्कूल, भालावाड़ में अध्यापन का कार्य करती हैं । कान्य रचना में सिद्ध हस्त हैं ।

(१००) ठाकुर रणबीर सिंह—ये ठाकुर सामंत सिंह जी के पुत्र हैं । हिन्दी गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं ।

अनुक्रमणिका

अ	पृष्ठ		पृष्ठ
अकरम पैज़	२७	किसनिया	२४४
अग्रदास	५०	कुँवर-कुशल	२३५
अगरचंद-भँवरलाल नाहटा	२१५	कुलपति मिश्र	१०६
अमृतनाथ	२४६	कुशललाल	२२४
अमरसिंह	२४३	केसरीसिंह बारहट (कोटा)	२५६
ई		केसरीसिंह बारहट (मेवाड़)	१७४
ईश्वरदास	२२४	कृष्णलाल	१३६
ईश्वरसिंह	२४८	कृष्णदास	२२३
उ		ख	
उत्तमचंद	२४१	खुमाणसिंह	२४०
सदयराज	२२६	खुंमाण रासो	२७
उमादत्त	२५४	खेमदास	२२८
उमाशंकर	१७६	ग	
उम्मेदराम	२४२	गजराज ओझा	२१५
ऊ		गणेश कवि	२४०
ऊजली	२१६	गणेश पुरी	१५६
ऊमरदान	१६४	गरीबदास	७८
ऋ		गाङ्गा पसाहत	२२२
ऋषिदत्त मेहता	२१४	गिरिराज कुँवरि	२४९
क		गुमानसिंह	२४६
करणीदान	११६	गुलाबसिंह	१६२
कल्याण कवि	२३८	गोर्पनाथ	२३७
किशनजी आढ़ा	१३३	गौरीशंकर-हीराचंद ३६, १८०, १६४	
किशोरसिंह बारहट	२१४	घ	
		घनश्याम कवि	२५०

च	पृष्ठ		पृष्ठ
चतुरसिंह (उदयपुर)	१७०	जैमलदास	२३६
चतुरसिंह (रुपाहेली)	२१४	जोधराज	१०६
चरणदास	८७	भा	
चरणदासी पंथ	८६	भीमा	२२१
चत्रदास	२४१	ड	
चंडीदान (कोटा)	२४६	डिंगल कविता	२२
चंडीदान (बूंदी)	२४२	ढ	
चंद बरदाई	३१	ढाढी बादर	२२१
चंद्रकला बाई	१६७	ढोला मारू रा दूहा	२१६
चंद्रसखी	२४४	द	
छ		दयाबाई	८८
छत्रकुँवरिबाई	२२९	दयालदास भाट	६५
छंद राउ जइतसी रउ	२२२	दयालदास संत	८४
ज		दरियाव जी	८५
जगजीवण	२२५	दलपत विजय	२७
जगदीशलाल	२५३	दलपतिराय-चंसीधर	११७
जगदीशसिंह गहलोत	२१४	दशरथ शर्मा	२१५
जगन्नाथदास	२२६	दादू पंथ	६९
जगन्नाथ चौबे	२५१	दादू दयाल	७०
जगाजी	२२७	दामोदर दास	२२७
जजल	२२०	दिनेशनन्दिनी	१७७
जटमल	२२६	दीन दरवेश	१४६
जनगोपाल	७८	दुरसा जी	५३
जनार्दन राय	१८१, २११	देवी प्रसाद	१८१, १८६
जयलाल	२५५	ध	
जल्हण	३६	धर्मवर्द्धन	२३२
जसवंतसिंह (भालावाड़)	२५५	न	
जीवनलाल	१५६	नरपति नाल्ह	२७
जुगलसिंह	२१४		

	पृष्ठ		पृष्ठ
नरहरिदास	६७	बीठू भोमा	२४५
नरोत्तम दास	२१०	ब्रजदासी	२३३
नल्लसिंह	४१	ब्रजलाल	२३६
नागरीदास	१११	भ	
नाथूलाल व्यास	२१४	भगवतीप्रसाद सिंह	२१५
नाभादास	५२	भारतीदान	२४६
नारायणदास	२३६	भोज मिश्र	२३१
निरंजनी पंथ	८६	भोपालदान	२५२
प		भौगोलिक वर्णन	२
परशराम	२४५	म	
पुरुषोत्तम	२४७	महाराज सुजानसिंह	२३२
पुरुषोत्तमदास	२१५	महाराजा अजीतसिंह	२३४
प्रतापबाला	२४५	महाराणा अरिसिंह	२३९
प्रतापकुँवर बाई	१५६	महाराणा उदयसिंह	२२३
प्रियादास	२३१	महाराणा जवानसिंह	१३६
पृथ्वीराज	५७	महाराजा जसवंतसिंह	९२
फ		महाराजा प्रतापसिंह	१२६
फतहकरण	२४८	महाराणा भीमसिंह	२४३
ब		महाराणा मानसिंह	१२८
बख्तावर	२४३	महाराजा राजसिंह	२३५
बख्तावर कविराव	१६१	महाराणा सजनसिंह	२५०
बखना जी	२२५	महारावराजा बुधसिंह	२३०
बाजीद जी	७६	महाराव राजा विष्णु सिंह	१३५
बालकराम	२२७	माधवदास	२२५
बारू जी	२२२	माधोदास (किशनगढ़)	२२८
बांकीदास	१३०	मान कवि	१०७
बिड़द सिंह	१६६	मीरां बाई	४५
बिहारी लाल	६४	मुक्ता देवी	२५८
		मुरलीधर भट्ट	२३६

	पृष्ठ		पृष्ठ
मुरलीधर व्यास	२१५	रायकवि	२३३
मुरारिदान	१६८	रावळ मूलराज	२२४
मुरारिदास	१६७	ल	
मोहनदास	२२८	लजाराज	१८१, १८६
मोहनसिंह	२५७	लोकनाथ	२३०
मंगलराम	८०	व	
मंछाराम	१२८	वल्लभ कवि	२२६
र		विजय माणिक्य	२५७
रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया	२१५	विश्वेश्वरनाथ रेड	१८१, २०४
रजबजी	७२	विष्णुप्रसाद कुँवरि	२४७
रणछोड़ कुँवरि	२५२	वीरभाण	२३५
रणवीरसिंह	२५८	वृन्द कवि	६६
रसिक बिहारी	२३४	वृन्दावनदास	१२०
रसरसि	२३८	श	
राघोदान	२५१	श्यामलदास	३६, १८१, १८३
राघवदास	७६	शिवचन्द्र भरतिया	१८२, २१३
राजस्थानी भाषा	१५	श्र	
राजिया	१३७	श्रीधर	२२१
राजेन्द्रसिंह	२५५	श्रीनाथ	२३८
रामकर्ण	१८१, १९१	स	
रामचरण	८२	समर्थदान	२१३
रामदास	८३	सहजोबाई	८८
रामनारायण दूगड़	१६१	संतदास (जयपुर)	२२६
रामनारायण चौधरी	२१४	संतदास (मेवाड़)	२३६
रमनाथ रत्नू	२१३	सामंतसिंह	२५५
रामनाथ	२५४	सारंगधर	२२०
रामसिंह	१८१, २०९	साईदान	२७
रामस्नेही पंथ	८०	सुंदरकुँवरि बाई	१२४
रामेश्वर ओझा	२१४		

	पृष्ठ		पृष्ठ
सुंदरदास	७३	हरिचरणदास	२३२
सूजो नगराजोत	४३	हरिदास भाट	२३०
सदन	१२२	हरिदास संत	८९
सूर्यकरण	१८१, २०७	हरिनारायण	१८०, १९६
सूर्यमल	२५, १४३	हरिभाऊ उपाध्याय	२१४
सोमनाथ	११६	हरिरामदास	८३
स्वरूपदास	१५४	हुक्मीचंद	२३७
ह		हेमरतन	२३१
हरदान	२५३	झ	
हरबिलास	१८१, २०२	झारसीराम	२४८

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	८	उसका	उनका
१८	१५	मिट्टी ढेले	मिट्टी के ढेले
२४	५	श्रोताओं	श्रोताओं
२५	८	भाखड़ी	भाषड़ी
२७	१०	निश्चिय	निश्चित
२८	२१	तक तक	तब तक
३०	८	ससूकीया	सहूकीया
३०	१४	पाटलइ	पालटइ
३६	४	श्यामलदान	श्यामलदास
४१	५	मेघ	मेछु
४१	१५	इनमें	इसमें
४५	४	होना था	होता था
५६	२२	ताज	लाज
६३	७	सू रतनि	सूरतनि
६३	१७	गोधोख	गोधोख
६४	१५	निहालो	तुहालो
६९	१३	जमान	जमात
७६	२२	गाम्भीर्य	गाम्भीर्य
७७	२३	घिरकै	छिरकै
७८	५	घूल्यो रे	बघूल्यो रे
७८	६	डूल्यो रे	डूल्यो रे
७९	१७	अबनि	सबनि
८२	७	दरियाराव जी	दरियाव जी
८५	६	जति	जाति
८५	१९	पीजनी	पीजने
८६	७	नमक	नामक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९०	४	पड़्या	पड़्या
९३	७	विशिष्ट	विशिष्ट
९४	२६	नौर	और
९६	२८	गाऊँ	गाउँ
९६	२९	नाऊँ	नाउँ
९७	४	पराउँ	पराएँ
९७	११	जी गननु	जीगननु
९७	११	कह्यौ	कह्यौ न
१०८	२६	उज्जैभि	उज्जैनि
११०	१४	करि	कटि
११२	६	बहादुरशाह	बहादुर सिंह
१२०	९	हादुरसिंह	बहादुरसिंह
१२३	८	बाह्हीं	बाहहीं
१२३	८	छाँह्हीं	छाँहहीं
१२३	९	कराह्हीं	कराहहीं
१२४	४	दरा	दए
१२४	४	भरा	भए
१२४	२३	प्रेतृक	पैतृक
१२६	४	सं० १९२१	सं० १८२१
१३४	५	सिए	लिए
१३७	२१	शेखाटीवा	शेखावाटी
१३८	२८	खूट	खूंद
१३८	२८	पैलारी	पैलारी
१७५	२०	घर	घरी
१७८	१७	रोज	राज
१८०	१९	गारव	गौरव
१८२	१८	विज्ञप्तियों	विज्ञप्तियो
२०९	९	रेज्यूकेशन	एज्यूकेशन
२०९	१०	कणिका	किणका
२२४	१४	कुशलला	कुशललाभ

कुछ अनुपम पुस्तकें

१-ईश्वरीय बोध	111)	२४-पतिता की साधना	२)
२-सफलता की कुञ्जी	1)	२५-अवध की नवाबी	२)
३-मनुष्य जीवन की उपयोगिता	11=)	२६-ममली रानी	२)
४-भारत के दशरत	11)	२७-स्त्री और सौंदर्य	३)
५-ब्रह्मचर्य ही जीवन है	111)	२८-पाकविज्ञान	३)
६-हम सौ वर्ष कैसे जीवें	१)	२९-मदिरा	१)
७-वैज्ञानिक कहानियाँ	1)	३०-स० कवितावली रामायण	१11)
८-बाराँ की मर्ची कहानियाँ	11=)	३१-गगनावशेष	11=)
९-आदृतियों	111)	३२-गुप्तजी की काव्यधारा	२1)
१०-पढ़ो और हँसो	11)	३३-सोने की ढाल	२11)
११-मनुष्य शरीर का श्रेष्ठता	1=)	३४-जादू का मुल्क	२11)
१२-फल उनके गुण तथा उपयोग	१1)	३५-कवि प्रसाद की काव्य-साधना	२11)
१३-स्वास्थ्य और व्यायाम	१11)	३६-रत्नद्वार	१11)
१४-धर्म-पथ	111)	३७-बुद्ध और उनके अनुचर	१)
१५-स्वास्थ्य और जलचिकित्सा	१11)	३८-काव्यकलना	१)
१६-बौद्ध कहानियाँ	१)	३९-जागृति का सन्देश	१)
१७-भाग्य निर्माण	१111)	४०-साम्प्रवाद ही क्यों ?	11)
१८-वेदांत धर्म	१1)	४१-क्या करें ?	१)
१९-पौराणिक महापुरुष	111)	४२-विज्ञान के महारथी	१1)
२०-मेरी तिब्बत यात्रा	१11)	४३-आदर्श भोजन	111)
२१-दूध ही अमृत है	१11)	४४-राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा	२11)
२२-अहिंसा व्रत	111)	४५-मुद्रिका	1=)
२३-पुण्य स्मृतियाँ	111)	४६-कोलतार	२)

मैनजर—छात्रहितकारी-पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग ।

